वित्त मन्त्रालय, भारत सरकार
की ओर से
पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
सूचना और प्रसार मन्त्रालय
द्वारा प्रस्तुत

कर जाँच आयोग

१९५३ की पहली अप्रैल को भारत सरकार ने डा० जान मथाई की अध्यक्षता में कर जाँच आयोग की नियुक्ति की, और सर्वश्री वी० एल० मेहता, वी० के० आर० वी० राव, के० आर० के० मेनन, वी० वेंकटप्पिया और वी० के० मदन इसके सदस्य बनाये गये। इस आयोग को ये निर्देश थे—

(१) जनता के विभिन्न वर्गों तथा विभिन्न राज्यो में केन्द्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय कर भाग किस प्रकार से बँटा हुआ है, इसकी जाँच की जाय।

(२) इन बातो को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय, राज्यीय, तथा स्थानीय कर निर्धारण की वर्तमान पद्धति के औचित्य की जाँच की जाय—(क) देश का विकास कार्यक्रम तथा उसके लिए आवश्यक साधन, और (ख) आय तथा धन की विषमता को घटाने के उद्देश्य की सिद्धि।

(३) पूंजी निर्माण तथा उसे कायम रखने और उत्पादक व्यवसाय के विकास की आमदनी पर कर निर्धारण के ढाँचे तथा सतह के परिणामो की जाँच की जाय।

(४) मुद्रास्फीति और मुद्रासकोचमूलक परिस्थितियो को सँभालने में एक आर्थिक औजार के रूप में कर की उपयोगिता की जाँच की जाय!

(५) दूसरे प्रासगिक विषयो पर विचार किया जाए तथा

(६) सिफारिशें पेश की जायें, विशेषकर इन विषयो पर (क) वर्तमान कर पद्धति में आवश्यक है। क्या परिवर्तन किए जायें (ख) कर के नये उपाय क्या हो सकते है ?

अपना काम समाप्त करने में आयोग ने पूरे २० महीने ले लिये, और इसके प्रतिवेदन पर ३० नवम्बर १९५४ को हस्ताक्षर हो गये।

आयोग ने एक ब्योरेवार प्रश्नमाला प्रकाशित की, जिसकी प्रतियाँ केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो, निगमो, नगरपालिकाओ, ग्राम पचायतो, व्यापारी तथा व्यवसायी सस्थाओ को, विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभागो तथा भारत और भारत के बाहर के कुछ ऐसे व्यक्तियो को भेज दी गई, जिनके सम्बन्ध में यह समझा जाता था कि उन्हे आयोग के कार्य में दिलचस्पी होगी। इसके अलावा राज्य सरकारो, केन्द्रीय सरकार के मन्त्रालयो, १६५ चुनी हुई नगरपालिकाओ तथा निगमो, ८३ स्थानीय जिला बोर्डो और ४५३ ग्रामपचायतो को या तो मनमानी नमूना-पद्धति के आधार पर या आयोग द्वारा बताई हुई कसौटियो के आधार पर राज्य सरकारों के द्वारा चुनी हुई सस्थाओ को पूरे प्रश्न भेजे गये। आयोग को ४५७ व्यक्तियो तथा संस्थाओ से अपनी प्रश्नावली का उत्तर मिला। इसके अलावा केन्द्रीय सरकार, राज्य

वित्त मन्त्रालय, भारत सरकार
की ओर से
पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
सूचना और प्रसार मन्त्रालय
द्वारा प्रस्तुत

कर जाँच आयोग

१९५३ की पहली अप्रैल को भारत सरकार ने डा० जान मथाई की अध्यक्षता में कर जांच आयोग की नियुक्ति की, और सर्वश्री वी० एल० मेहता, वी० के० आर० वी० राव, के० आर० के० मेनन, वी० वेंकटप्पिया और वी० के० मदन इसके सदस्य बनाये गये। इस आयोग को ये निर्देश थे—

(१) जनता के विभिन्न वर्गों तथा विभिन्न राज्यो में केन्द्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय कर भाग किस प्रकार से बँटा हुआ है, इसकी जाँच की जाय।

(२) इन बातो को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय, राज्यीय, तथा स्थानीय कर निर्धारण की वर्तमान पद्धति के औचित्य की जाँच की जाय—(क) देश का विकास कार्यक्रम तथा उसके लिए आवश्यक साधन, और (ख) आय तथा धन की विषमता को घटाने के उद्देश्य की सिद्धि।

(३) पूंजी निर्माण तथा उसे कायम रखने और उत्पादक व्यवसाय के विकास की आमदनी पर कर निर्धारण के ढांचे तथा सतह के परिणामो की जाँच की जाय।

(४) मुद्रास्फीति और मुद्रासकोचमूलक परिस्थितियो को सँभालने में एक आर्थिक औजार के रूप में कर की उपयोगिता की जाँच की जाय !

(५) दूसरे प्रासगिक विषयो पर विचार किया जाए तथा

(६) सिफारिशें पेश की जायँ, विशेषकर इन विषयो पर (क) वर्तमान कर पद्धति में आवश्यक है। क्या परिवर्तन किए जायँ (ख) कर के नये उपाय क्या हो सकते हैं ?

अपना काम समाप्त करने में आयोग ने पूरे २० महीने ले लिये, और इसके प्रतिवेदन पर ३० नवम्बर १९५४ को हस्ताक्षर हो गये।

आयोग ने एक ब्योरेवार प्रश्नमाला प्रकाशित की, जिसकी प्रतियाँ केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो, निगमो, नगरपालिकाओ, ग्राम पचायतो, व्यापारी तथा व्यवसायी संस्थाओ को, विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभागो तथा भारत और भारत के बाहर के कुछ ऐसे व्यक्तियो को भेज दी गई, जिनके सम्बन्ध में यह समझा जाता था कि उन्हे आयोग के कार्य में दिलचस्पी होगी। इसके अलावा राज्य सरकारो, केन्द्रीय सरकार के मन्त्रालयो, १६५ चुनी हुई नगरपालिकाओ तथा निगमो, ८३ स्थानीय जिला बोर्डों और ४५३ ग्रामपचायतो को या तो मनमानी नमूना-पद्धति के आधार पर या आयोग द्वारा बताई हुई कसौटियो के आधार पर राज्य सरकारो के द्वारा चुनी हुई संस्थाओ को पूरे प्रश्न भेजे गये। आयोग को ४५७ व्यक्तियो तथा संस्थाओ से अपनी प्रश्नावली का उत्तर मिला। इसके अलावा केन्द्रीय सरकार, राज्य

सरकारो, स्थानीय सस्थाओ तथा ग्रामपचायतो के विभागो से भी उत्तर प्राप्त हुए। करापात तथा पूंजी निर्माण के सम्बन्ध में आयोग ने विशेप पडताल की।

आयोग का प्रतिवेदन ३ जिल्दो में विभक्त है। पहली जिल्द में सपूर्ण कर-पद्धति का विवेचन है, दूसरी तथा तीसरी जिल्दो में क्रमश केन्द्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय करो का विवेचन है। प्रत्येक जिल्द के अन्त में उस जिल्द के उपसहारो तथा सिफारिशो का सक्षिप्त-सार दिया हुआ है।

इस पुस्तक में आयोग के प्रतिवेदन का सक्षिप्त रूप पेश किया गया है। इसे व्यापक तथा विलकुल यथार्थ बनाने के लिए यथासाध्य प्रयत्न किया गया है। फिर भी यह स्मरण रहे कि यह आयोग द्वारा प्रस्तुत नही की गई है, इसलिए किसी तथ्य पर व्यक्त किये हुए मत के सम्बन्ध में प्रतिवेदन ही प्रामाणिक समझा जाय, न कि यह सक्षिप्त पुस्तक।

प्रतिवेदन

जिल्द १

भूमिका

"भारतीय कर सम्वन्धी समस्याओ पर जिस आर्थिक परिवर्तन तथा नीति की पृष्ठ-भूमि में विचार किया गया है" उसे सक्षिप्त रूप से पेश करते हुए आयोग ने वताया है कि १९२५ में, जव अन्तिम वार कर जाँच आयोग न अपना प्रतिवेदन पेश किया था, तव से क्या-क्या मुख्य राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तन हुए है। आयोग ने उनका एक सक्षिप्त लेखा पेश किया है। उस समय अव के पाकिस्तान तथा वर्मा भारत के अन्तर्गत थे, पर देशी राज्य उस समय के व्रिटिश भारत के सार्वजनिक वित्तीय ढाँचे के अन्तर्गत नही थे। उस समय न तो कोई आर्थिक विकास की योजना थी, और न लोककल्याणकारी राष्ट्र के वनाने का प्रयत्न था। रुई और पटसन, ये ही दो मुख्य सगठित उद्योग थे, और देश को वने-वनाये माल की जो कुछ भी जरूरत होती थी, उसकी पूर्त्ति आयात से की जाती थी। केन्द्रीय क्षेत्र में सीमा-शुल्क तथा प्रान्तीय क्षेत्र में भूमि-राजस्व का ही वोलवाला था। नमक-कर, केन्द्रीय राजस्व का एक महत्त्वपूर्ण सावन था, और प्रान्तो में शराव पर उत्पाद-कर, राजस्व के द्वितीय मुख्य साघन थे। शरावबन्दी कही पर नही थी, और न विक्री कर था। आयकर तुलनात्मक रूप से कम दर पर वसूल किया जाता था। महायुद्ध तथा युद्धोत्तर वर्षों में इस विषय में वहुत कुछ परिवर्तन हुए। भारत इस समय स्वतन्त्र है, पर पाकिस्तान और वर्मा के अलग हो जाने के कारण क्षेत्रफल घटा है। भूतपूर्व देशी राज्य, देश के अभिन्न भाग वन चुके है। कई उद्योग-धधो की उत्पत्ति हुई, और विभाजन के साथ साथ देश के आयात व्यवसाय के ढाँचे में वहुत काफी परिवर्तन हुआ, और राजस्व के सावन के रूप मे सीमाशुल्क का महत्त्व घट गया है। आय-कर वहुत अविक विकसित हो गया, नमक-कर समाप्त हो गया, और कई राज्यो में पूर्ण या आशिक रूप से शरावबन्दी के कारण शराव पर उत्पाद-कर से आमदनी का महत्त्व घट गया। राज्यो के लिए विक्री-कर राजस्व एक मुख्य सावन वन गया। युद्ध-कालीन वित्त तथा युद्धोत्तर नीति के कारण मुद्रास्फीति हुई, और दाम वहुत चढ गये, जिससे कि राष्ट्रीय आय तथा सार्वजनिक राजस्व और व्यय मुद्रा की दृष्टि से ४ से ४½ गुना तक वढ गया। लोककल्याणकारी राष्ट्र एक स्वीकृत लक्ष्य वन चुका है। कर वढ चुका है, और देश ने विकास पर वढे हुए व्यय का एक कार्यक्रम स्वीकार कर लिया है। आयोग का कहना है कि "कर-पद्धति ने जितनी सहायता की आशा की जानी चाहिए वह पूरी नही हो रही है, और इस समय सरकारी राजस्वो तथा सरकारी खर्च के वीच एक वड़ी और वढती हुई खाई है।"

कर-पद्धति का विकास तदर्थ आधार पर हुआ था, पर आयोग का यह मत है कि, "इसका विस्तार इतना अधिक हुआ है कि इसके ढाँचे, इसकी बनावट तथा इसकी सतह के बारे में पूर्ण और व्यापक जाँच की जानी चाहिए, जिससे न केवल इसका वैज्ञानिकन हो सके, बल्कि स्वतन्त्र भारत के आर्थिक लक्ष्यो को कार्यान्वित करने के साधन के रूप में इसे पहले की अपेक्षा अधिक उपयोगी बनाया जा सके।"

देश के विभाजन तथा भूतपूर्व देशी राज्यो के मिला दिये जाने से वित्तीय प्रवृत्तियो का सही सही ऐतिहासिक विश्लेषण करना कठिन है, पर जहाँ भी सम्भव हुआ है ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की समीक्षा की गई है, जिससे कि आगे क्या किया जाय और कैसे किया जाय इस सम्बन्ध में उचित परिप्रेक्षित प्राप्त हो। केन्द्रीय वित्त की समस्याओ का परीक्षण तथा राजस्वो के वितरण और खर्च पर विचार नही किया गया, क्योकि वित्त आयोग ने इन विषयो पर बहुत व्यापक रूप से विचार किया था। सरकारी खर्च के सम्बन्ध में जो समस्याएँ तथा नीतियाँ हैं, उन पर भी विचार नही किया गया, क्योकि "वे दोनो मिलकर एक बिलकुल ही भिन्न विषय बन जाते हैं, जिसके लिए बहुत सावधानी के साथ अलग जाँच और अध्ययन करने की आवश्यकता है।

कर-पद्धति और सार्वजनिक राजस्व की प्रवृत्तियाँ

कर-पद्धति तथा सार्वजनिक राजस्व की प्रवृत्तियो पर विचार करते हुए आयोग ने सविधान में प्रतिपादित यूनियन और राज्यो की कर-सम्बन्धी शक्ति तथा यूनियन तथा राज्यो के बीच कुछ राजस्वो के वितरण तथा अनुदानो के सम्बन्ध में नियमो का सक्षिप्त वर्णन दिया है। १९३५ के गवर्नमेंट आफ इडिया ऐक्ट में साधनो के वितरण का जो ढाँचा बनाया गया था, वह मुख्यत जैसा का तैसा बना रहा, हाँ वित्त आयोग का प्रवर्तन एक नई विशेषता जरूर है। सविधान के २६३ अनुच्छेद में जिस अन्तर्राज्यीय परिषद् की व्यवस्था है, वह भी वित्तीय नीतियो तथा अन्य मामलो में सहयोग प्राप्त करने का एक बहुत उपयोगी यन्त्र है।

सहायक अनुदानो (ग्राट्स-इन-एड) का, विशेषकर इलाको की साधन-सम्बन्धी पारस्परिक विषमताओ को दूर करने के विषय में अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। राज्यो को दी जानेवाली केन्द्रीय सहायता की रकमो में वृद्धि यह सूचित करती है कि "केन्द्रीय राजस्व के मामले में केन्द्रीय सरकार और राज्यो के स्वार्थ बहुत कुछ एक जैसे है।" किस राज्य को वितरित केन्द्रीय कर का कितना हिस्सा दिया जाय, इसके निर्णय में आबादी को बहुत अधिक महत्त्व देना तथा राष्ट्रीय महत्त्व के व्यापक उद्देश्यो के लिए विशेष अनुदान देने की पद्धति सूचित करती है कि अन्तर-सरकारीय हस्तान्तरणो में पहले जहाँ इस बात पर जोर था कि **कहाँ से** कितनी वसूली हुई, अब वहाँ इस बात पर जोर है कि किस इलाके [illegible] राज्य **को कितनी जरूरत** है।

[illegible] दिखलाया है कि कोई भी कर ऐसा नही है जो [illegible] हो। इसलिए इन मस्याओ को राज्य [illegible] [illegible]ी अधिकारो

पर निर्भर करना पडता है, और राज्य सरकारें स्थानीय सस्थाओ के मामलो पर नियन्त्रण तथा देख-रेख रखती हैं।

सार्वजनिक राजस्वो की प्रवृत्तियाँ

हाल के वर्षों मे सार्वजनिक राजस्व की प्रवृत्तियो का सर्वेक्षण करते हुए आयोग ने यह दिखलाया है कि राजस्व में वृद्धि मुख्यत इस कारण हुई कि रुपयो में लोगो की आमदनी चौमुखी मुद्रास्फीतिमूलक रूप से व्यापकता के साथ बढी है। यद्यपि बिक्री कर की तरह के कई नये करो का विकास हुआ है, फिर भी कुछ राज्यो में शराबबन्दी के कारण राजस्व में नातियथेष्ट हानि हुई है । जिन्स तथा घरेलू उपभोग के द्रव्यो पर जो कर लिये जाते है, उनकी बनावट ऐसी है कि उसी के कारण उन करो से कुल राजस्व का ४५ प्रतिशत वसूल होता है। इसी कारण यह समस्या भी सामने आई कि केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारो की कर-सम्बन्धी नीतियो को एक पक्ति मे लाया जाय। आयकर को महत्त्व प्राप्त हुआ है, साथ ही भूमि राजस्व को पहले जो प्रधान स्थान मिला हुआ था, वह समाप्त हो गया। प्रत्यक्ष और परोक्ष करो मे हाल के वर्षो में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। करों मे कुल आमदनी में प्रत्यक्ष कर को जहाँ १९३८-३९ में १२ प्रतिशत भाग प्राप्त था, वहाँ १९४४-४५ में इसका भाग ४५ प्रतिशत हो गया, पर १९५३-५४ में यह फिर गिरकर २४ प्रतिशत हो गया। केन्द्र तथा राज्यो की आर्थिक पद्धति में करातिरिक्त राजस्वो का एक बहुत महत्त्वपूर्ण भाग रहा, पर आर्थिक पद्धति में उन्हें जो तुलनात्मक स्थिति प्राप्त थी, उसमे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ।

राष्ट्रीय कर-सम्बन्धी प्रयास की नापजोख के रूप में सार्वजनिक राजस्वो की प्रगति पर विचार करते हुए आयोग ने यह उपसहार पेश किया कि "मोटे तौर पर और साथ ही वास्तविक रूप में, गत दो या तीन दशको का औसत लेने पर, ज्ञात होगा कि राष्ट्रीय कर प्रयास में कोई विशेष वृद्धि नही हुई।" राष्ट्रीय आय और सार्वजनिक राजस्व मौद्रिक रूप मे साथ-साथ चलते रहे, पर वास्तविक अर्थो में उनमे से किसी में भी कोई महत्त्वपूर्ण वृद्धि नही हुई, हाँ, देश के विभिन्न वर्गो में उनके बटवारे का रूप बदल चुका है।

गत ३० वर्षो में भारत सरकार के चालू राजस्वो में अर्थपूर्ण परिवर्तन हो चुके है। आयकर बहुत कुछ बढ चुका है, और हाल ही में सम्पत्ति कर का भी आरम्भ हुआ है। अब भी राजस्व के साधनो में सीमाशुल्क को ही सबसे अधिक महत्त्व प्राप्त है, और निर्यात से प्राप्त प्रचुर मुनाफो के युग में निर्यात शुल्को को लचीले मुद्रास्फीति निवारक कर के रूप में विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। यूनियन के कर-सम्बन्धी ढाँचे में केन्द्रीय उत्पाद-करो को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है, और नमक कर समाप्त कर दिया गया है।

राज्यो के राजस्वो की दीर्घकालीन तुलना इस कारण कठिन है कि पहले राज्यो की जो इकाइयाँ थी, अब उनमें यथेष्ट परिवर्तन हुआ है। सच तो यह है कि १९५० के बाद से ही इस प्रकार की तुलना सम्भव है। इस युग में राज्य सरकारो के राजस्व बराबर बढते

के लिए वास्तविक रूप से मिलकर चलने हैं, और केन्द्रीय राजस्वो तथा राज्यीय राजस्वों के बीच जो पुराना झगडा था, वह बहुत कुछ समाप्त हो चुका है। सच बात तो यह है कि वित्त आयोग के कारण अब राज्य सरकारो का केन्द्रीय राजस्व में पहले से अधिक वित्तीय स्वार्थ है, और इस हद तक यह कहना सही होगा कि भारतीय सार्वजनिक वित्त का संयुक्त विवेचन करना पहले मे अधिक युक्तियुक्त हो जाता है।"

सरकारी खर्च की प्रवृत्ति

इसके बाद आयोग ने सार्वजनिक खर्च की प्रवृत्तियो पर विचार किया है। सार्वजनिक खर्च के चरित्र तथा वितरण के कारण कर के आर्थिक परिणाम परिवर्तित हो गये। समाज के विभिन्न वर्गों को सार्वजनिक खर्च मे क्या लाभ होता है, इस सम्बन्ध में निश्चित विचार पेश करना सम्भव नही है। पर इसके साथ ही जनता पर नये तथा उच्चतर भारो को लादने से पहले मौजूदा कर-सम्बन्धी साधनो का अधिक से अधिक असरदार उपयोग होना आवश्यक है। विकास के अतिरिक्त अन्य खर्चों की वृद्धि पर बहुत अधिक नियन्त्रण तथा रोक-थाम की जरूरत है। आयोग का कहना है कि "हम इस सम्बन्ध में निश्चित है कि सरकारी खर्च के सारे प्रश्न पर केन्द्र तथा राज्य सरकारो के द्वारा पूरी तथा अच्छी तरह जाँच होनी चाहिए। हमारा यह भी विचार है कि इस प्रकार की जांच का कार्य ऐसी सस्थाओ के सिपुर्द किया जाय, जो यथेष्ट शक्तिशाली हो।"

अनुत्पादक खर्च से उत्पादक खर्च पर जोर देने के विषय में "कुछ विशेष उपादानो" की ओर ध्यान दिलाते हुए आयोग ने यह दिखलाया है कि १९३८-३९ में जहाँ केन्द्रीय खर्च का ५४ प्रतिशत प्रतिरक्षा पर, और प्रशासकीय सेवाओ पर १३ प्रतिशत लगाया जाता था, वहाँ १९५३-५४ मे यह खर्च क्रमश ४८ प्रतिशत और ९ प्रतिशत हो गया। सामाजिक सेवाओ तथा विकास सेवाओ पर खर्च बढकर क्रमश २ से ५ प्रतिशत और ५ से ९ प्रतिशत हो गया। राज्यो को दिये गये अनुदानो में बहुत वृद्धि हुई, और उत्पादक खर्च कुल मिलाकर ११ प्रतिशत से २० प्रतिशत हो गया, 'इस प्रकार भारत में केन्द्रीय सरकार के खर्च की बनावट तथा चरित्र मे हुए परिवर्तन का स्पष्टीकरण हो जाता है।" इसी प्रकार से क भाग के ९ राज्यो में, जिनमें तुलना सम्भव थी, विकासातिरिक्त मदो पर जहाँ १९३८-३९ में खर्च ५३ प्रतिशत था, वहाँ १९५३-५४ में यह घटकर ४५·५ प्रतिशत, और प्रशासकीय सेवाओ पर यह खर्च ४२ प्रतिशत से २७ प्रतिशत हो गया। सामाजिक सेवाओ पर खर्च २१·५ प्रतिशत से २४ प्रतिशत हो गया और विकास सेवाओ पर होनेवाला खर्च १७ प्रतिशत से बढकर २६ प्रतिशत हो गया। कुल मिलाकर विकास की मदो में खर्च ३९ प्रतिशत से बढकर ५० प्रतिशत हो गया।

केन्द्र तथा राज्यो के खर्च में विविध कारणो से वृद्धि हुई है। मूल्य की सतह पर आम वृद्धि होने के अलावा सरकार के कार्यो का आमतौर पर विस्तार हुआ है। लोकतान्त्रिक सस्थाओ के कारण प्रशासन का खर्च बढ गया। स्वतन्त्रता के फलस्वरूप ऊँचे जाते हुए मूल्य तथा बढी हुई जिम्मेदारी सामने आई, और इस कारण प्रतिरक्षा का खर्च बढ गया। नियमन-सम्बन्धी विभिन्न उपायो के प्रशासन तथा आबादी में वृद्धि के कारण सरकार की जिम्मेदारी

गए हैं, पर साथ ही खर्च भी बहुत बढा है। जिन्स तथा उपभोग द्रव्यों पर लगे कर, आय-कर, केन्द्रीय उत्पाद-कर और भूमि राजस्व से प्राप्त होनेवाले राज्य सरकारो के राजस्व के प्रधान साधन थे। ख भाग के कुछ राज्य सामयिक रूप से अन्तर्राज्यीय चालान शुल्क भी रखे हुए है। राज्य सरकारो के तीन वर्गो में राजस्व की मुख्य मदो में विभिन्नता है। आम बिक्री कर का विस्तार एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विकास है, जो अब एक को छोडकर सभी क भाग और ख भाग के राज्यो तथा ग भाग के कुछ राज्यो में वसूल किया जाता है। क भाग के राज्यों के कुल राजस्वो में भूमि राजस्व का महत्त्व घट गया है। क भाग के राज्यो में सिंचाई कर की आमदनी बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई, पर ख भाग के राज्यो में इससे नाममात्र की ही आय होती हैं। ख भाग के राज्य, क भाग के राज्यो की तुलना में मुख्यत केन्द्रीय अनुदान पर निर्भर करते है। जमीदारी प्रथा के उन्मूलन के कारण कृषि-आयकर से प्राप्त होनेवाला राजस्व आमतौर पर बहुत घट गया है, और भूमि सुधार में प्रगति होने के साथ-साथ यह शायद और भी घट जाए। कई राज्यो में बिक्री-कर राजस्व बढ गया है, पर कुछ राज्यो में यह घट गया है, क्योकि सविधान के अनुच्छेद २८६ (१) के अनुसार कुछ वैधानिक रोक लग गई हैं।

हाल के वर्षो में राज्यो के कर-सम्बन्धी प्रयासो पर विचार करते हुए आयोग ने यह दिखाया है कि जहाँ कई मौजूदा करो में वृद्धि हुई, तथा कुछ राज्यो ने नये कर लगाए तथा सिंचाई कर बढाने जैसे अन्य उपाय किए फिर भी राज्यो के राजस्वो में कोई विशेष फर्क नही आया।

जहाँ तक स्थानीय सस्थाओ का सम्बन्ध है, आवश्यक सूचनाएँ तथा आँकडे प्राप्त करने में कठिनाई होने पर भी आयोग ने स्थानीय सस्थाओ के राजस्व के विकास का एक मोटा तखमीना प्रस्तुत किया है। इन सस्थाओ की एक विशेषता यह रही कि इनके राजस्वो में बहुत धीरे-धीरे वृद्धि हुई। नगरो के निगमो तथा नगरपालिकाओ की मुख्य आमदनी सम्पत्ति कर, चुगी, और अवसान करो से होती रही। जिला बोर्ड मुख्यत स्थानीय कोष उपकर पर निर्भर रहे। स्थानीय सस्थाओ के कुल राजस्व का चौथाई स्थानीय सम्पत्ति करो से प्राप्त होता रहा, पर यह रकम कुल सार्वजनिक राजस्वो का बहुत ही तुच्छ भाग है। भाग ख तथा ग के कई राज्यो में स्थानीय शासन अब भी विकास के प्रारम्भिक सोपान में है। स्थानीय सस्थाओ को चुगी तथा अवसान शुल्को से कुल १० करोड का राजस्व प्राप्त हुआ, जिसमें से चुगी अधिक महत्त्वपूर्ण रही।

केन्द्रीय तथा राज्यीय राजस्वो के तुलनात्मक लचीलेपन में परिवर्तनो पर विचार करते हुए आयोग ने यह बताया है कि जब कि राज्य पहले भूमि-राजस्व और शराब-कर पर अधिक निर्भर करते थे, अब वे उस पर उतना निर्भर नही करते। अब वे बिक्री-कर पर अधिक निर्भर करते हैं, और अब उन्हें यह मालूम हुआ है कि दूसरे करो में बहुत काफी चीलापन है। केन्द्रीय सरकार के राजस्वो के लचीले साधनो में राज्य सरकारो को पहले से अधिक भाग प्राप्त होना है और केन्द्र से उन्हे अब वृहत् अनुदान प्राप्त होते हैं, इससे परिस्थिति बहुत बदल चुकी है। "इस हद तक केन्द्रीय तथा राज्यीय राजस्व राज्य सरकारो के सार्वजनिक वित्त

के लिए वास्तविक रूप से मिलकर चलते है, और केन्द्रोय राजस्यो तथा राज्यीय राजस्वों के बीच जो पुराना झगटा था, वह बहुत कुछ समाप्त हो चुका है। सच वात तो यह है कि वित्त आयोग के कारण अव राज्य सरकारो का केन्द्रीय राजस्व में पहले से अधिक वित्तीय स्वार्थ है, और इस हद तक यह कहना सही होगा कि भारतीय सार्वजनिक वित्त का सयुक्त विवेचन करना पहले से अधिक युक्तियुक्त हो जाता है।"

सरकारी खर्च की प्रवृत्ति

इसके वाद आयोग ने सार्वजनिक खर्च की प्रवृत्तियो पर विचार किया है। सार्वजनिक खर्च के चरित्र तथा वितरण के कारण कर के आर्थिक परिणाम परिवर्तित हो गये। समाज के विभिन्न वर्गों को सार्वजनिक खर्च मे क्या लाभ होता है, इस सम्वन्ध में निश्चित विचार पेश करना सम्भव नही है। पर इसके साथ ही जनता पर नये तथा उच्चतर भारो को लादने से पहले मौजूदा कर-सम्वन्धी साधनो का अधिक से अधिक असरदार उपयोग होना आवश्यक है। विकास के अतिरिक्त अन्य खर्चों की वृद्धि पर बहुत अधिक नियन्त्रण तथा रोक-थाम की जरूरत है। आयोग का कहना है कि "हम इस सम्वन्ध में निश्चित है कि सरकारी खर्च के सारे प्रश्न पर केन्द्र तथा राज्य सरकारो के द्वारा पूरी तथा अच्छी तरह जाँच होनी चाहिए। हमारा यह भी विचार है कि इस प्रकार की जाँच का कार्य ऐसी सस्थाओ के सिपुर्द किया जाय, जो यथेष्ट शक्तिशाली हो।"

अनुत्पादक खर्च ने उत्पादक खर्च पर जोर देने के विषय में "कुछ विशेष उपादानो" की ओर ध्यान दिलाते हुए आयोग ने यह दिखलाया है कि १९३८-३९ में जहाँ केन्द्रीय खर्च का ५४ प्रतिशत प्रतिरक्षा पर, और प्रशासकीय सेवाओ पर १३ प्रतिशत लगाया जाता था, वहाँ १९५३-५४ में यह खर्च क्रमश ४८ प्रतिशत और ९ प्रतिशत हो गया। सामाजिक सेवाओ तथा विकास सेवाओ पर खर्च वढकर क्रमश २ से ५ प्रतिशत और ५ से ९ प्रतिशत हो गया। राज्यों को दिये गये अनुदानो में बहुत वृद्धि हुई, और उत्पादक खर्च कुल मिलाकर ११ प्रतिशत से २० प्रतिशत हो गया, 'इस प्रकार भारत में केन्द्रीय सरकार के खर्च की बनावट तथा चरित्र में हुए परिवर्तन का स्पष्टीकरण हो जाता है।" इसी प्रकार से क भाग के ९ राज्यो मे, जिनमे तुलना सम्भव थी, विकासातिरिक्त मदो पर जहाँ १९३८-३९ में खर्च ५३ प्रतिशत था, वहाँ १९५३-५४ में यह घटकर ४५·५ प्रतिशत, और प्रशासकीय सेवाओ पर यह खर्च ४२ प्रतिशत से २७ प्रतिशत हो गया। सामाजिक सेवाओ पर खर्च २१·५ प्रतिशत से २४ प्रतिशत हो गया और विकास सेवाओ पर होनेवाला खर्च १७ प्रतिशत से वढकर २६ प्रतिशत हो गया। कुल मिलाकर विकास की मदो में खर्च ३९ प्रतिशत से बढकर ५० प्रतिशत हो गया।

केन्द्र तथा राज्यो के खर्च में विविध कारणो से वृद्धि हुई है। मूल्य की सतह पर आम वृद्धि होने के अलावा सरकार के कार्यों का आमतौर पर विस्तार हुआ है। लोकतान्त्रिक संस्थाओ के कारण प्रशासन का खर्च बढ गया। स्वतन्त्रता के फलस्वरूप ऊँचे जाते हुए मूल्य तथा बढी हुई जिम्मेदारी सामने आई, और इस कारण प्रतिरक्षा का खर्च बढ गया। नियमन-सम्वन्धी विभिन्न उपायो के प्रशासन तथा आवादी में वृद्धि के कारण सरकार की जिम्मेदारी

बढ गई, और इसलिए सार्वजनिक खर्च भी बढ़ा। सविधान की व्यवस्थाओ के अनुसार समाज के पिछडे हुए वर्गों के लिए जो कानून बने, उनसे भी खर्च बढा। राज्यो में शिक्षा पर खर्च बराबर बढता गया, जब कि सार्वजनिक स्वास्थ्य और डाक्टरी सहायता पर आनुपातिक खर्च लगभग जहाँ का तहाँ बना रहा।

१९५३-५४ के भारत की सब सरकारो के चालू खर्च का सिंहावलोकन करते हुए आयोग ने यह दिखाया है कि १९५३-५४ में भारत की सरकारो की ओर से किये गये समस्त राजस्व खर्च के प्रत्येक रुपये में से, विकासातिरिक्त कार्यों पर साढे नौ आने, सामाजिक सेवाओ पर ३ आने दो पाई और आर्थिक विकास पर ३ आने ४ पाई खर्च हुआ। प्रत्येक राज्य में इस सम्बन्ध में प्रति व्यक्ति पर औसत खर्च अलग-अलग हुआ। केवल यही नही, क, ख, ग भाग के राज्यो में भी यह खर्च अलग-अलग है। इन विषमताओ के आशिक कारण के रूप में आबादी की घनता तथा दूसरे स्थानीय कारण बताये गये हैं। विकास तथा विकासातिरिक्त खर्च की स्थितियो में तुलनात्मक फर्क है, इसके अलावा विभिन्न राज्य-सरकारो में वैयक्तिक पेशो या कार्यों का आर्थिक महत्त्व भी भिन्न-भिन्न है।

राजस्व खाते में खर्च के अतिरिक्त, विकास कार्यक्रमो के कारण पूंजीखाते में भी खर्च महत्त्वपूर्ण हो गया है। १९३८-३९ में कुल पूंजीवाला खर्च १३४ करोड रुपये था। स्वतन्त्रता के पहले सरकार का देश के आर्थिक विकास में बहुत सीमित भाग होने के कारण पूंजीवाला खर्च तुलनात्मक रूप से कम था। १९५०-५१ में यह सख्या १६६ करोड रुपये और १९५१-५२ में २४३ करोड रुपये तक पहुँच गयी। १९५४-५५ में कुल पूंजी व्यय लगभग ३२० करोड रुपये बताया जाता है। योजना के प्रथम तीन वर्षों में कुल पूंजी व्यय लगभग ६५७ करोड रुपये रहा, इसमें से ५०३ करोड रुपये विकास के कार्यक्रमो पर खर्च हुए।

सरकारी खर्च के आर्थिक परिणामो पर प्रकाश डालते हुए आयोग ने यह बताया कि १९५३-५४ में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो और स्थानीय सस्थाओ का खर्च कुल मिलाकर १,१७० करोड रुपये था और यह राष्ट्रीय आय की सभव सतह का ११ प्रतिशत था। रहा यह कि सरकारी खर्च का आर्थिक विषमताओ को कम करने में क्या प्रभाव हुआ, इस पर यह कहना पडता है कि सिद्धि बहुत सीमित रही, क्योकि कुल राष्ट्रीय आय की तुलना में कुल सरकारी खर्च कम था और सामाजिक कल्याण या कम आयवाले लोगो को सहायता के रूप में बहुत कम धन दिया गया। फिर भी यह मानना पडेगा कि "भारतीय सार्वजनिक खर्च तथा सारी सार्वजनिक वित्त पद्धति की यह एक बहुत बडी विशेषता रही कि भारत के विभिन्न अचलो या इलाको में जो विषमता थी, उसे दूर करने की दिशा में कार्य हुए।" एकरूप राष्ट्रीय कर कानूनो के अनुसार केन्द्रीय कर में वृद्धि तथा वृहत् राष्ट्रीय आवश्यकताओं को देखते हुए केन्द्रीय व्यय का वितरण एक बहुत महत्त्वपूर्ण पुनर्वितरक प्रक्रिया रहा। पिछडे हुए राज्यो को दिये हुए अनुदान तथा वितरणीय राजस्वो के वितरण में आबादी को महत्त्व दिया जाना इस सम्बन्ध में बहुत महत्त्वपूर्ण है। आयोग का कहना है

कि "आंचलिक समीकरण की प्रक्रिया की भी सीमाएँ हैं, पर इसमें सदेह नही कि यह इस देश की सार्वजनिक व्यय प्रणाली की एक बडी विशेपता है।" यह पुनर्वितरण प्रक्रिया न केवल राज्यीय सतह पर काम करती रही, पर राज्यो में भी देहाती और शहरी इलाको के साधनो तथा आवश्यकताओ में विपमताओ को दूर करने का कार्य करती रही। सामाजिक सेवाओ पर बढे हुए खर्च के कारण कर पद्धति की अप्रियता घटने में सहायता मिली, और विकास की मदो में खर्च के बढे हुए महत्त्व के कारण अन्ततोगत्वा लोगो की कर-दान-सम्बन्धी क्षमता बढ गई।

विपमताओ को घटाने मे, भारत में सार्वजनिक खर्च का क्या भाग रहा, इस पर आयोग का कहना है, "हाल के वर्षों मे सार्वजनिक खर्च की बनावट तथा उसकी अन्तर्गत प्रवृत्तियों के कारण विपमताओं में, चाहे वे आर्थिक हो या सामाजिक, कुछ थोडी कमी आई है, और इस हद तक कुल कर-भार बढने के सम्बन्ध में लोगो की प्रतिकूल प्रतिक्रिया घट जायगी। फिर भी यह बता देना चाहिए कि इस दिशा में उचित रूप से आगे बढने के लिए उद्देश्य यह होना चाहिए कि होनेवाले लाभो को इलाकों तथा आय वर्गो की दृष्टि से अधिक से अधिक विस्तृत रूप में बाँटा जाय। अन्त में हम यह कह सकते है कि भारत में सार्वजनिक खर्च-सम्बन्धी कार्यों के पुनर्वितरक परिणामो में तब तक कोई वास्तविक महत्त्वपूर्ण विस्तार नही हो सकता, जब तक कि राष्ट्रीय आय की दृष्टि मे सार्वजनिक राजस्वो और सार्वजनिक खर्च का अनुपात उतना कम रहे, जितना कि अब है।"

करापात

इसके बाद आयोग ने करापात के 'अत्यन्त कठिन तथा दुःसाध्य' विपय पर विचार किया है। अब तक भारत में करापात पर कोई व्यापक जाँच नही की गई थी, यद्यपि समय-समय पर इस सम्बन्ध मे कुछ गैर सरकारी प्रयास हुए थे, जो छोटे इलाको तथा मोटे मोटे वर्गो तक ही सीमित थे। इन जाँचो में करो के औपचारिक आपात पर ही विचार किया गया था। आयोग ने यह तय किया कि औपचारिक करापात के विश्लेपण तक ही जाँच सीमित रखी जाय। "वास्तविक (इफैक्टिव) करापात, जिसका अर्थ यह है कि कर-वाले जिन्स या सेवा की माँग तथा पूर्ति सम्बन्धी बदलती हुई परिस्थितियों को हटाने के बाद करभार का वास्तविक या अन्तिम वितरण स्पष्ट रूप से बहुत ही जटिल है और इसका निर्णय करना कठिन है।" आयोग ने इसका प्रयत्न नही किया, और न उसने सार्वजनिक खर्च से उत्पन्न लाभो की जाँच का ही प्रयास किया।

आबादी के जिन वर्गों को अध्ययन का आधार बनाया गया, उनके सम्बन्ध में आयोग का यह मत है कि वर्गीकरण का मौलिक आधार आय है। समाज के शहरी तथा देहाती हिस्सो पर आधारित एक अन्य वर्गीकरण करापात का एक आधार हो सकता है, क्योंकि इससे उस आर्थिक कार्य-व्यापार की प्रकृति प्रतिफलित होती है, जिसमें इन दो भागो की आबादी लगी हुई है।

केन्द्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय कर कार के एकीभूत होने के अग नही है। सारे देश में केन्द्रीय कर एक ही दर से लगाए जाते है, पर राज्यीय

तथा स्थानीय करो की दरें देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न हैं। करापात में विविधता इस कारण है कि सारे देश में उपभोग तथा खर्च के ढाँचो में तथा कर की दरो में फर्क है। कर की दरें तथा प्राप्तियाँ भी अलग अलग हैं, उनमें जो फर्क है उसकी तुलना उस फर्क से की जा सकती है जो राज्य द्वारा की जानेवाली सामाजिक तथा दूसरी सेवाओं में है। यह मान लेने पर भी कि राज्यो के करापातो में विभिन्नता के अपने कारण है, फिर भी इससे विषय की दिलचस्पी तथा मूल्य नही घटता। राज्यीय तथा केन्द्रीय कर के ढाँचे मिलकर देश की कर-पद्धति का एक भाग बनाते हैं और इस समय इस पद्धति के सब भागो का उद्देश्य विकास कार्यक्रम को आगे बढ़ाना है, जिसका अर्थ यह है कि योजनात्मक विकास की तरह कर-सम्बन्धी प्रयास में भी एकीकरण करने की जरूरत है।

आयोग ने करापात के सम्बन्ध में जो जाँच की, उसमें उसने सारी अर्थव्यवस्था पर छाये हुए पारिवारिक आय-व्यय लेखो की कोई ताजी जाँच नही की, बल्कि जो तथ्य प्राप्त थे, इस सम्बन्ध में उन्ही से काम लिया गया। आयोग को, औद्योगिक मजदूरो के सम्बन्ध में श्री देशपाडे का प्रतिवेदन तथा आर्थिक परामर्शदाता कार्यालय के द्वारा प्रस्तुत केन्द्रीय सरकार के मध्यम वर्गीय सेवको का सर्वेक्षण तथा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय के द्वारा प्रस्तुत उपभोगकर्त्ताओ के खर्च की अनुसूचियाँ प्राप्त थी। यद्यपि इनमें करापात के अध्ययन की दृष्टि से कई कमियाँ थी, क्योकि जाँच करनेवालो ने उपभोगकर्त्ताओ के खर्च-सम्बन्धी जो कुछ तथ्य एकत्र किये थे, वे प्रत्यक्ष बातचीत के तरीके से प्राप्त किये थे, फिर भी आयोग के सामने जो कुछ मसाला था, वह यही था। आयोग ने उपभोगकर्त्ताओ की खर्च सम्बन्धी जिन अनुसूचियो से काम लिया, वे १९५२ की अप्रैल-सितम्बर की अवधि की थी, और ये तथ्य ऐसे काम में लाये गये मानो वे अखिल भारतीय आधार पर खर्च की कुछ सतहो के, साथ ही शहरी तथा देहाती भागो के उपभोग का सही ढाँचा पेश करते हो। इस अध्ययन में जिन करो पर विचार किया गया, वे ये हैं—केन्द्रीय उत्पाद और आयात शुल्क, राज्यीय उत्पादकर, आम विक्री कर, मोटर स्पिरिट पर विक्री कर, प्रमोदकर, अन्तर्राज्यीय पारगमन शुल्क, मोटर गाडियो पर कर, गन्ना उपकर, तथा तम्बाकू विक्री कर। "कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अधिकतर केन्द्रीय तथा राज्यीय परोक्ष करो पर विचार किया गया।" १९५३-५४ में केन्द्रीय तथा राज्यीय सरकारो का कुल परोक्ष कर राजस्व ४४० करोड रुपयो का था, इसमें से आयोग ने ३४९ करोड रुपयो का अर्थात् लगभग ८० प्रतिशत का विश्लेपण किया, और इनमें निर्यात शुल्क, रजिस्ट्री, स्टैम्प, तथा छोटी-मोटी चीजें जैसे विजली शुल्क के सिवा सभी परोक्ष कर आ गये।

आयोग ने कुछ व्योरे में जाकर यह वताया है कि उन्होने इस कार्य के लिए सैमपलिंग या नमूने के तौर जांच करने का कौन सा ढांचा अपनाया। आयोग ने यह भी वताया कि विक्री करो तथा अन्य परोक्ष करो के सम्बन्ध में उन्होने कौन सी मान्यताएँ स्वीकार कीं। इसके साथ

ही करापात का विश्लेषण करने में प्रयुक्त सामग्री तथा उपायों के सीमित होने पर भी जोर दिया गया। आयोग का मत है—"हम फिर भी यह बता दें कि हमने इन तथ्यों को बहुत ही सीमित रूप से इस्तेमाल किया है, और सो भी काफी सावधानी के साथ।"

आयोग का यह अनुमान है कि सारी अर्थव्यवस्था में कुल उपभोगकर्ता-व्यय का ३७ प्रतिशत अभ्यारोपित (इम्प्युटेड) मूल्य के रूप में था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपभोगकर्ता-व्यय का एक बहुत बडा हिस्सा अर्थव्यवस्था के मौद्रिक क्षेत्र से बाहर था, और देहाती क्षेत्र मे तो अमौद्रिक भाग का यह अनुपात और भी अधिक था। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि देहाती भाग के कुल उपभोग का ४५ प्रतिशत गैर नकदी था, जब कि शहरो के खर्च का १० प्रतिशत ही ऐसा था। प्रति व्यक्ति कर के हिसाबो की तुलना से यह ज्ञात हुआ कि देहाती इलाको की तुलना में शहरी इलाको का प्रति व्यक्ति कर का अनुपात सर्वत्र निश्चित रूप से अधिक था। केवल यही नही, कि शहरी इलाको का कर प्रति व्यक्ति अधिक है, बल्कि ज्यो ज्यो शहरी उपादानो में वृद्धि होती है, त्यो त्यो खर्चवाले प्रत्येक वर्ग के लिए कर बढता जाता है। आयोग का यह अनुमान है कि प्रति व्यक्ति के कुल खर्च का ३६ प्रतिशत परोक्ष करो में आ जाता है, और यह कुल नकद व्ययों का ५.७ प्रतिशत है। शहरीपन की वृद्धि होने के साथ साथ खर्च का स्तर बढता है और इसके साथ ही, कुल खर्च के साथ नकद का और नकद खर्च के साथ कर का अनुपात बढता जाता है। इसके बावजूद भी आयोग ने यह मोटा उपसहार निकाला है कि शहरी आबादी मे देहाती आबादी की अधिकता के कारण इस विश्लेषण के अन्तर्गत परोक्ष कर राशि मे देहाती इलाको का दान निरपेक्ष रूप से शहरी इलको की अपेक्षा बहुत अधिक है।

आयोग ने केन्द्रीय उत्पादशुल्को, बिक्रीकरो, भूमिराजस्व तथा आय-कर के आपात के सम्बन्ध मे ब्योरेवार अध्ययन प्रस्तुत किया है। उसके हिसाब के अनुसार नकद खर्च की तुलना में केन्द्रीय उत्पादशुल्को का औसत आपात १५ प्रतिशत है। देहाती और शहरी भागो की तुलना करते हुए यह पाया गया कि यद्यपि खर्च की सारी सतहो पर शहरी इलाको में आपात कुछ अधिक है, पर विषमता अधिक नही है। विशेष ध्यान देने योग्य एक बात यह है कि कुछ आय वर्गो पर उत्पाद शुल्को में कुछ थोडी सी वृद्धि हुई जिसका मुख्य कारण यह था कि कपडे और सिगरेटो पर भिनक तटकर लगे थे। बिक्रीकरो के सम्बन्ध में आयोग का यह मत है कि विभिन्न व्यय वर्गो का आपात शहरी और देहाती भागो में विशेष भिन्न नही है, प्रत्येक वर्ग में यह करीब करीब उतना ही है, तथा कर आनुपातिक है, न कि क्रमश वृद्धिशील रूप में। केन्द्रीय उत्पाद करो की अपेक्षा बिक्रीकर के सम्बन्ध में देहाती और शहरी इलाको मे बहुत अधिक अन्तर है। और "देहाती इलाको में अधिकतर नकद खरीदारियाँ कर बचा जाती है, क्योकि या तो बिखरे हुए स्थानीय सूत्रों से वे चीजें प्राप्त होती हैं, या वे चीजें ऐसी है जिन पर कानूनी रूप से या अमली रूप से कर है ही नही"।

भूमि राजस्व के आपात के अध्ययन के सम्बन्ध में कई विशेष समस्याएँ सामने आई। विभिन्न वर्गो की देहाती आयो के सम्बन्ध में तथ्य तथा आँकड़े प्राप्त नही थे, और

पात का अध्ययन किया है, उसमें कर के मौद्रिक भार के सम्बन्ध में ही तुलनात्मक विवेचन हुआ है। सार्वजनिक तथा विकास-सम्बन्धी खर्चों के कार्यक्रम की दृष्टि से कर की आवश्यक उपयुक्त या आम सतह पर आयोग ने विचार नही किया। करो में फेरबदल की दिशा के सम्बन्ध में आयोग कुछ सुझाव ही पेश कर सकता था। यह स्वय "इस बात का निर्णय नही कर सकता था कि कर प्रणाली द्वारा डाले जानेवाले सामान्य या औसत कर-भार का परिमाण कैसा और कितना हो।"

विकास कार्यक्रम तथा पूँजीविनियोग की प्रवृत्तियाँ

सार्वजनिक क्षेत्र

इसके बाद आयोग ने सार्वजनिक क्षेत्र में विकास-कार्यक्रम तथा पूंजी-विनियोग की प्रवृत्तियो का विवेचन किया है। पचवर्षीय योजना के लक्ष्य सविधान की राज्यीय नीतिसम्बन्धी नियामक सिद्धातो से प्राप्त हुए हैं, विशेष कर वे जिनका राज्य के इन कर्त्तव्यो से सम्बन्ध है —लोगो के रहन-सहन को ऊँचा उठाना, पुष्टि तथा स्वास्थ्य में सुधार, समाज के भौतिक साधनो के नियन्त्रण तथा मिलकियत के सम्बन्ध में समुचित वितरण की व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था को इस प्रकार चलने से रोकना जिससे कि कुछ थोडे से लोगो में धन तथा उत्पादन के साधन केन्द्रित हो जायें, सामाजिक कल्याण के लिए सेवाओ के विस्तार की वाछनीयता, कुटीर शिल्पो की उन्नति, प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओ की व्यवस्था आदि आदि । योजना के लक्ष्यो की परिभाषा इन्ही सिद्धातो के रूप में की गई है। योजना में यह मान लिया गया है कि सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र एक दूसरे से मिलकर चलेंगे, और इस प्रकार की नीति बरती जायगी जिससे दोनो का सफल सह-अस्तित्व बना रहे। योजना में जहाँ उत्पादन की वृद्धि पर जोर दिया गया, वहाँ सामाजिक सेवाओ के विस्तार को इसके बाद ही महत्त्व दिया गया है। विकास के रोजगार-सम्बन्धी पहलुओ, उत्पादन के श्रमप्रगाढ़ तरीको तथा कुटीर शिल्प और छोटे पैमाने के धन्धो पर विशेप महत्त्व दिया गया है। आर्थिक परिवर्तन के सागठनिक पहलुओं के सम्बन्ध में योजना ने सहकारितामूलक विकास को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता पर, विशेपकर प्राथमिक उत्पादन, कुटीर शिल्प, तथा छोटे पैमाने के धन्धो, खेतो की उपज की बिक्री इत्यादि के विशाल और विविध क्षेत्रो पर जोर दिया है।

योजना इस आधार को लेकर चली कि देश के कुल पूंजी-विनियोग की दर में क्रमश. वृद्धि होगी यानी आधारवर्ष (१९५०-५१) में जहाँ लगभग ९ हजार करोड रुपये की राष्ट्रीय आय का ५ प्रतिशत खर्च हो रहा था, वहाँ पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में जब कि राष्ट्रीय

हुए उत्पाद में से बडे तथा बढते हुए भाग को बचत तथा पूंजी-विनियोग की दिशा में ले जाना अभीष्ट है। एक अर्थ में, निजी तथा सार्वजनिक मद मे अधिक पूंजी-विनियोग के कार्यक्रम को सफल करने का भार आयोग को सौंपा गया है। उनका कार्य यह है कि "कर पद्धति को ऐसे ढाला जाय कि सार्वजनिक क्षेत्र मे पूंजी व्यावहारिक रूप से अधिक से अधिक लगाई जा सके, साथ ही साथ वह इस प्रकार से हो कि निजी क्षेत्र का उत्साह भी कायम रहे, और वह अपने पूंजी-विनियोग को और अधिक बढ़ाए।"

सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी निर्माण के लिए करो तथा कर्जो पर निर्भर करना पडता है, जब कि निजी क्षेत्र को निजी बचतो की स्वेच्छाप्रदत्त धनराशि पर निर्भर करना पडता है, यद्यपि यहाँ भी कुछ बात समामेलित क्षेत्र में प्रतिधृत मुनाफ़ो के कर द्वारा वित जुटाए हुए भाग से मिलती-जुलती है। पर पूंजी निर्माण का एक ही परिणाम होगा, चाहे वह सार्वजनिक क्षेत्र में हो और चाहे निजी क्षेत्र में, वह उपभोग के प्रतिमान पर, चाहे थोड़े समय के लिए ही हो, चोट करने के लिए बाध्य है। आर्थिक विकास के द्वारा जो अतिरिक्त आय होगी, उसका एक बहुत बडा हिस्सा कम आयवाले उन वर्गो को प्राप्त होगा, जिनके उपभोग-सम्बन्धी मानदण्ड अयुक्तियुक्त रूप से कम है, फिर भी आर्थिक विकास के लिए वित्त जुटाने की आवश्यकता का तकाजा यह है कि इस वर्ग की अतिरिक्त आय से भी कुछ खीचा जाय। इस प्रकार से एक बहुत कठिन सामाजिक तथा राजनैतिक समस्या उत्पन्न होगी, पर यदि देश को कम बचत, कम आय और कम बचत के दुष्टचक्र से निकालना है, तो इस समस्या का समाधान कर लेना लाजमी है जिसके कारण यह आर्थिक आबद्धता उत्पन्न हुई है। यदि जनता विकास के कार्यक्रम को स्वीकार कर ले, और लोगो में यह विश्वास हो कि विकास के लिए जो कोष एकत्र हो रहा है, उसका अच्छा और मितव्ययिता के साथ उपयोग होगा, तो उस हालत में इसका समाधान आसान हो जायगा। आयोग का कहना है—"आर्थिक विकास की गति के द्रुतीकरण तथा भारत जैसे देश की परिस्थितियो में बचतो और लगाई हुई पूंजी में इच्छा के विरुद्ध वृद्धि, न केवल एक आर्थिक या मुद्राशास्त्र-सम्बन्धी समस्या उत्पन्न करती है, बल्कि इससे एक मानवीय समस्या भी उत्पन्न होती है, और जिसके लिए अधिकतर उन्नत अर्थ व्यवस्थाओ मे भी कही बढकर अच्छे नेतृत्व की आवश्यकता है। हम मुख्यतः इस पहलू पर इसलिए जोर देते है कि सही परिप्रेक्षित तैयार हो, जिसको ध्यान में रखते हुए विकास वित्त की आवश्यकताओ के अनुसार कर-पद्धति मे फेर-बदल-सम्बन्धी हमारी सिफारिशो पर विचार किया जा सके।"

विकास की गति बढाने के लिए जरूरी मौद्रिक भार कुछ हद तक इस प्रकार हल्का हो सकता है कि देहाती इलाको में छिपी हुई बेरोजगारी के रूप में मौजूद वास्तविक बचत की सम्भव शक्ति को गतिशील किया जाय। स्थानीय निर्माण कार्यो के लिए तथा सामूहिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के लिए स्वेच्छापूर्वक दिये गये श्रमदान को गतिशील करके इस दिशा में पग उठाया जा चुका है। पर लगाई हुई पूंजी मे जिस बढती की आवश्यकता है, उसके मुख्य भाग के लिए इस साधन पर निर्भर करना अवास्तविक होगा पर इस सम्बन्ध में सभावनाओ की पडताल करना उचित है। इस वस्तु का जो प्रचुर है

पात का अध्ययन किया है, उसमें कर के मौद्रिक भार के सम्बन्ध मे ही तुलनात्मक विवेचन हुआ है। सार्वजनिक तथा विकास-सम्बन्धी खर्चों के कार्यक्रम की दृष्टि से कर की आवश्यक उपयुक्त या आम सतह पर आयोग ने विचार नही किया। करो में फेरबदल की दिशा के सम्बन्ध में आयोग कुछ सुझाव ही पेश कर सकता था। यह स्वय "इस बात का निर्णय नही कर सकता था कि कर प्रणाली द्वारा डाले जानेवाले सामान्य या औसत कर-भार का परिमाण कैसा और कितना हो।"

विकास कार्यक्रम तथा पूँजीविनियोग की प्रवृत्तियाँ

सार्वजनिक क्षेत्र

इसके वाद आयोग ने सार्वजनिक क्षेत्र में विकास-कार्यक्रम तथा पूँजी-विनियोग की प्रवृत्तियो का विवेचन किया है। पचवर्षीय योजना के लक्ष्य सविधान की राज्यीय नीतिसम्वन्धी नियामक सिद्धातो से प्राप्त हुए हैं, विशेष कर वे जिनका राज्य के इन कर्त्तव्यो से सम्बन्ध है —लोगो के रहन-सहन को ऊँचा उठाना, पुष्टि तथा स्वास्थ्य में सुधार, समाज के भौतिक सावनो के नियन्त्रण तथा मिलकियत के सम्बन्ध में समुचित वितरण की व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था को इस प्रकार चलने से रोकना जिससे कि कुछ थोडे से लोगो में धन तथा उत्पादन के साधन केन्द्रित हो जायें, सामाजिक कल्याण के लिए सेवाओ के विस्तार की वाछनीयता, कुटीर शिल्पो की उन्नति, प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओ की व्यवस्था आदि आदि। योजना के लक्ष्यो की परिभाषा इन्ही सिद्धातो के रूप में की गई है। योजना में यह मान लिया गया है कि सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र एक दूसरे से मिलकर चलेंगे, और इस प्रकार की नीति वरती जायगी जिससे दोनो का सफल सह-अस्तित्व वना रहे। योजना में जहाँ उत्पादन की वृद्धि पर जोर दिया गया, वहाँ सामाजिक सेवाओ के विस्तार को इसके वाद ही महत्त्व दिया गया है। विकास के रोजगार-सम्वन्धी पहलुओ, उत्पादन के श्रमप्रगाढ तरीको तथा कुटीर शिल्प और छोटे पैमाने के घन्वो पर विशेप महत्त्व दिया गया है। आर्थिक परिवर्तन के सागठनिक पहलुओ के सम्वन्ध में योजना ने सहकारितामूलक विकास को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता पर, विशेपकर प्राथमिक उत्पादन, कुटीर शिल्प, तथा छोटे पैमाने के धन्धो, खेतो की उपज की विक्री इत्यादि के विशाल और विविध क्षेत्रो पर जोर दिया है।

योजना इस आवार को लेकर चली कि देश के कुल पूंजी-विनियोग की दर में क्रमश. वृद्धि होगी यानी आवारवर्ष (१९५०-५१) में जहाँ लगभग ९ हजार करोड रुपये की राष्ट्रीय आय का ५ प्रतिशत खर्च हो रहा था, वहाँ पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में जव कि राष्ट्रीय आय निश्चित अपरिवर्तित मूल्यो के आवार पर १० हजार करोड रुपये हो चुकी होगी, वह उसका ७ प्रतिशत होगा। यह आशा की जाती है कि इस वढे हुए पूंजी विनियोग के लिए सावन वहुत अधिक हद तक, योजना को कार्यान्वित करने मे राष्ट्रीय आय में जो वृद्धि होगी, उससे प्राप्त होंगे। द्वितीय तथा वाद के समय में पूंजी-विनियोग कोप के लिए पचवर्षीय योजना को कार्यान्वित करने के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में जो उपान्त (मार्जिनल) वृद्धि होगी, उस पर भरोसा किया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रति व्यक्ति के वढे

हुए उत्पाद में से बडे तथा बढते हुए भाग को बचत तथा पूँजी-विनियोग की दिशा मे ले जाना अभीष्ट है। एक अर्थ में, निजी तथा सार्वजनिक मद मे अधिक पूँजी-विनियोग के कार्यक्रम को सफल करने का भार आयोग को सौंपा गया है। उनका कार्य यह है कि "कर पद्धति को ऐसे ढाला जाय कि सार्वजनिक क्षेत्र में पूँजी व्यावहारिक रूप से अधिक से अधिक लगाई जा सके, साथ ही साथ वह इस प्रकार से हो कि निजी क्षेत्र का उत्साह भी कायम रहे, और वह अपने पूँजी-विनियोग को और अधिक बढाए ।"

सार्वजनिक क्षेत्र में पूँजी निर्माण के लिए करो तथा कर्जो पर निर्भर करना पडता है, जब कि निजी क्षेत्र को निजी बचतो की स्वेच्छाप्रदत्त धनराशि पर निर्भर करना पडता है, यद्यपि यहाँ भी कुछ बात समामेलित क्षेत्र में प्रतिधृत मुनाफ़ो के कर द्वारा वित जुटाए हुए भाग से मिलती-जुलती है। पर पूँजी निर्माण का एक ही परिणाम होगा, चाहे वह सार्वजनिक क्षेत्र में हो और चाहे निजी क्षेत्र में, वह उपभोग के प्रतिमान पर, चाहे थोडे समय के लिए ही हो, चोट करने के लिए बाध्य है। आर्थिक विकास के द्वारा जो अतिरिक्त आय होगी, उसका एक बहुत बडा हिस्सा कम आयवाले उन वर्गो को प्राप्त होगा, जिनके उपभोग-सम्बन्धी मानदण्ड अयुक्तियुक्त रूप से कम है, फिर भी आर्थिक विकास के लिए वित्त जुटाने की आवश्यकता का तकाजा यह है कि इस वर्ग की अतिरिक्त आय से भी कुछ खीचा जाय । इस प्रकार से एक बहुत कठिन सामाजिक तथा राजनैतिक समस्या उत्पन्न होगी, पर यदि देश को कम बचत, कम आय और कम बचत के दुष्टचक्र से निकालना है, तो इस समस्या का समाधान कर लेना लाजमी है जिसके कारण यह आर्थिक आबद्धता उत्पन्न हुई है। यदि जनता विकास के कार्यक्रम को स्वीकार कर ले, और लोगो में यह विश्वास हो कि विकास के लिए जो कोष एकत्र हो रहा है, उसका अच्छा और मितव्ययिता के साथ उपयोग होगा, तो उस हालत में इसका समाधान आसान हो जायगा। आयोग का कहना है—"आर्थिक विकास की गति के द्रुतीकरण तथा भारत जैसे देश की परिस्थितियो में बचतो और लगाई हुई पूँजी में इच्छा के विरुद्ध वृद्धि, न केवल एक आर्थिक या मुद्राशास्त्र-सम्बन्धी समस्या उत्पन्न करती है, बल्कि इससे एक मानवीय समस्या भी उत्पन्न होती है, और जिसके लिए अधिकतर उन्नत अर्थ व्यवस्थाओ से भी कही बढकर अच्छे नेतृत्व की आवश्यकता है। हम मुख्यतः इस पहलू पर इसलिए जोर देते है कि सही परिप्रेक्षित तैयार हो, जिसको ध्यान में रखते हुए विकास वित्त की आवश्यकताओ के अनुसार कर-पद्धति में फेर-बदल-सम्बन्धी हमारी सिफारिशो पर विचार किया जा सके।"

विकास की गति बढाने के लिए जरूरी मौद्रिक भार कुछ हद तक इस प्रकार हल्का हो सकता है कि देहाती इलाको में छिपी हुई बेरोजगारी के रूप में मौजूद वास्तविक बचत की सम्भव शक्ति को गतिशील किया जाय । स्थानीय निर्माण कार्यो के लिए तथा सामूहिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के लिए स्वेच्छापूर्वक दिये गये श्रमदान को गतिशील करके इस दिशा में पग उठाया जा चुका है। पर लगाई हुई पूँजी में जिस बढती की आवश्यकता है, उसके मुख्य भाग के लिए इस साधन पर निर्भर करना अवास्तविक होगा पर इस सम्बन्ध में सभावनाओ की पडताल करना उचित है। उस वस्तु का जो प्रचुर है

यानी श्रम का, अच्छे से अच्छा प्रयोग करना चाहिए, और उद्देश्य यह होना चाहिए कि इसका स्थान पूंजी को न दिया जाय, जो तुलनात्मक रूप से कम है।

इसके वाद आयोग ने १९५१ से लेकर १९५४ तक के तीन सालो में सार्वजनिक क्षेत्र में योजना की प्रगति का विवेचन किया है। योजना की कुल लागत और घरेलू साधनो के वीच लगभग ३५० करोड रुपये की खाई रही। विदेशी सहायता तथा पाउण्ड पावने को लेकर लगभग ७० करोड रुपये का शुद्ध घाटा रहा। १९५४-५५ के लिए केन्द्रीय तथा राज्य मरकारो का सम्मिलित घाटा लगभग २८५ करोड रुपये होगे, ऐसी सम्भावना थी, जवकि विदेशी सहायता के रूप में ४८ करोड रुपये मिलने की सभावना थी। इस प्रकार शेष रोकड उसी हद तक अनावृत रहेगा, जिस हद तक की प्राप्त पाउण्ड पावनो का उपयोग न होगा। १९५५-५६ के लिए केन्द्र तथा राज्यो का योजनात्मक खर्च अवशिष्ट (रेसिडुअल) आधार पर ७९२ करोड रुपये होगा। इस प्रकार से आन्तरिक साधनो में खाई ५०५ करोड रुपये की होगी। फिर भी राजस्व और कर्ज लेने के मामले में सभव उन्नति होने के कारण ऐसा हो सकता है कि शुद्ध घाटा ४७० करोड रुपये का हो जाय। यदि कुल विदेशी सहायता १५० करोड रुपये हुई तो शुद्ध घाटा ३२० करोड रुपये का होगा। यह बता दिया जाय कि मोटे हिसाव पर ही ये अनुमान लगाए गए है, और लक्ष्यो की पूर्ति करने में जिस हद तक कमी हो, उमी हद तक घरेलू सावनो में भी खाई कम होगी।

अगली पचवर्पीय योजना का रूप तथा आकार अभी तक अनिश्चित है, पर विकास के कार्यों के लिए कर-पद्धति के परीक्षण के सम्वन्धमें इन वातो पर विचार जरूरी है, इसलिए कुछ हद तक पहले से अनुमान लगाया जाना अनिवार्य है। मोटे तौर पर द्वितीय योजना पर कुल खर्च ३,५०० करोड रुपये के इर्द-गिर्द मान लिया जा सकता है, और माथ ही यह भी कहा जा सकता है कि १९५५-५६ के अनुमानो के आवार पर द्वितीय योजना के प्रथम वर्प में ६०० करोड रुपयो का खर्च होगा। १९५६-५७ में आन्तरिक सावनो में २८० करोड रुपये की खाई रहेगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। प्रथम पचवर्पीय योजना में पाउण्ड पावने जिस हद तक प्राप्त थे, द्वितीय योजना में वे उतनी हद तक न मिल मकेंगे, और विदेशी सहायता शायद प्रति वर्प ४५ से ५० करोड के औमत पर जारी रहे। इस प्रकार मे यह स्पष्ट है कि प्रथम पचवर्पीय योजना की तुलना में पूंजी निर्माण की दर को घरेलू सावनो पर अधिक निर्भर करना पडेगा। "इसी से यह वात प्रकट हो जाती है कि पूंजी-नियोजन के प्रस्तावित दर के लिए वर्तमान कर स्तहो पर साधनो की कमी है, और इसी से अतिरिक्त कर की ममस्या सामने आती है।" यह सुझाव पेश किया गया है कि यदि अतिरिक्त कर से खाई पूरी न हो, तो घाटे के वित्त से काम लिया जाय। "स्वल्प काल और मो भी तात्कालिक भविष्य के लिए कुछ हद तक घाटे का वजट वनाया जा सकता है। फिर भी वह इतना अधिक नही हो मकता जितना कि वर्तमान सावनो तथा योजनात्मक खर्च के वीच की खाई मे मूचित होता है।" योजना-युग के प्रथम तीन वर्पो में योजना के व्यय के लिए मुद्रास्फीतिमूलक वित्त का कम प्रयोग हुआ। योजना के अन्तिम दो वर्पो में घाटे की वित्त व्यवस्था को कार्यान्वित करने के फलस्वरूप मुद्रास्फीतिमूलक परिणाम दूर हो जायेंगे वशर्ते कि खेती और

उद्योग का उत्पादन कायम रहे, और योजना के वडे कार्यों से अतिरिक्त उपभोग द्रव्यों तथा पूंजी द्रव्यो की प्राप्ति होती रहे। उत्पादन की प्रवृत्तियो की बहुत अनुकूल धारणा लेते हुए यह कहा गया है कि "यह माना जा सकता है कि एक या दो साल के लिए जिस हद तक घाटे के वित्त को कार्यान्वित करने का विचार है उससे अर्थव्यवस्था के सन्तुलन पर कोई आंच न आएगी।"

दीर्घकालीन दृष्टि से घाटे की वित्त व्यवस्था का भारत जैसे देश में वृहत् रूप से परिमाण मे प्रयोग नही हो सकता। औद्योगिक रूप से आगे वढे हुए देशो की तुलना में चीजो और सेवाओं को तैयार करने एव उनकी पूर्ति के वीच अविक समय लग सकता है, तथा उत्पादन में वृद्धि कम हो सकती है। "इसलिए सम्भावना यह है कि औद्योगिक रूप से आगे वढी हुई अर्थव्यवस्थाओं के मुकावले में यहाँ घाटे की अर्थ व्यवस्था से जल्दी ही गभीर मुद्रास्फीतिजनक परिणाम उत्पन्न हो जायें। इसलिये हम इस वात की आवश्यकता पर जोर देते है कि सार्वजनिक विकास के लिए वित्त प्राप्त करने मे और अविक कर लगाने तथा अविक कर्ज लेने के अविकाविक प्रयास किए जाएँ। और घाटे की अर्थव्यवस्था का, विशेषत: प्रथम पचवर्षीय योजना के वाद, प्रयोग कम किया जाय।"

घाटे के वित्त के सम्वन्ध में दिये गये इस मत से ऐसा मालूम हो सकता है कि शायद निजी क्षेत्र की आवश्यकताओ पर ध्यान नही दिया गया है। यदि कर वढाया गया, और लोगो को कर्ज देने के लिए राजी किया गया, तो उससे निजी क्षेत्र के लिए प्राप्त पूंजी मे कमी हो जायगी, दूसरी तरफ कर वढाने के वजाय घाटे के वित्त से काम चलाने पर निजी क्षेत्र में समृद्धि का वातावरण कायम रहेगा। पर इससे अनिवार्य रूप से वास्तविक सम्पत्तियो का अनुपातत निर्माण या उत्पादन क्षमता अविक नही होगी। तजुर्वे से यह ज्ञात हुआ है कि मुद्रास्फीतिमूलक प्रवृत्तियो को नियन्त्रित करना न केवल स्वस्थ विकास के हित में है, वल्कि किसी भी वास्तविक विकास के लिए जरूरी है। इस वात का खतरा है कि सट्टेवाजीमूलक उपादान वढती पर हो जाय, और विकास का नकशा, यहाँ तक कि पूंजी निर्माण भी विगड जाय। "इन सारी वातो ने इस वात को महत्त्व प्राप्त होता है कि कर तथा कर्ज द्वारा केन्द्रीय तथा राज्यीय सरकारो के वजट सम्वन्धी साधनो को वढाने के लिए जवरदस्त कदम उठाये जायें।"

निजी औद्योगिक क्षेत्र

इसके वाद आयोग ने विकास कार्यक्रम तथा निजी क्षेत्र में पूंजी-विनियोग की प्रवृत्तियो पर विचार किया है।

पचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास के लिए जो व्यवस्था की गई थी, वह ७०७ करोड रुपये की थी, जिसमें से ९४ करोड रुपये सार्वजनिक क्षेत्र में और वाकी निजी क्षेत्र के लिए निर्दिष्ट थी। सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिक विकास का अधिकांश केन्द्रीय सरकार की मद मे था, और लोहे तथा इस्पात के एक नये कारखाने के अतिरिक्त यह मुख्यत उन कार्यों को सम्पूर्ण करने के लिए था, जिन्हें सरकार आरम्भ कर चुकी थी। निजी क्षेत्र में भोगद्रव्यो

के धन्धो में बहुत काफी प्रगति हो चुकी है, पर उत्पादक तथा पूंजीवाले द्रव्यो के क्षेत्र में इतनी प्रगति नही हुई। ऐसा कुछ तो इस कारण से हुआ कि आवश्यक प्रारम्भिक कार्य में बहुत समय लगता है, और आंशिक रूप से इस कारण हुआ कि काम पूरा करने में देरी हुई। फिर भी सीमेन्ट-वाला धन्धा एक विशेष अपवाद रहा।

पूंजी निर्माण और उत्पादक उद्यम के रक्षण एव विकास पर आय के कर निर्धारण के ढांचे और स्तर के प्रभावो की परीक्षा के लिए देश में उत्पादक उद्यम की स्थिति और सामान्य दृष्टिकोण तथा पूंजी निर्माण की गति का अध्ययन करना आवश्यक था। आयोग ने उद्योग की निधियो के साधनो और उपयोगो, निर्माणकारी उद्योग के निजी क्षेत्र में कुल और शुद्ध पूंजीनिर्माण, विभिन्न उद्योगो की मुनाफा कमाने की क्षमता और मुनाफो की आवटन सम्बन्धी नीतियो और मूल्य-ह्रास के लिए व्यवस्था करने की उद्योग की प्रणाली तथा औद्योगिक क्षेत्र में पुरानी सम्पत्ति के पुन प्रतिस्थापन करने की पद्धति का अध्ययन किया। यह अध्ययन सार्वजनिक लिमिटेड जायन्ट स्टाक कम्पनियो के लेखा-जोखा-पत्र और लाभ एव हानि के लेखो तथा चुनी हुई कम्पनियो द्वारा सीधे प्रस्तुत की गई सामग्री के तथ्यात्मक आधार पर किया गया। निजी लिमिटेड कम्पनियो के सम्बन्ध में भी आयकर विभाग से सामग्री प्राप्त की गई। रिजर्व बैंक ने सार्वजनिक सीमित जायन्ट स्टाक कम्पनियो के लेखा-जोखा-पत्र और लाभ एव हानि के लेखो का जो विश्लेषण किया था, वह भी उससे उपलब्ध हुआ। लेखा-जोखा-पत्रो से उपलब्ध सूचना की पूरक सामग्री कई सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो से प्राप्त हुई।

१९५१-५२ में समस्त समामेलित क्षेत्र की परिदत्त पूंजी का एक चौथाई से कुछ अधिक निजी कम्पनियो में, परिदत्त पूंजी का लगभग १८ प्रतिशत निर्माणकारी उद्योगो में और परिदत्त पूंजी का ४५ प्रतिशत निर्माणेतर उद्योगो में था। सब मिलाकर निर्माणकारी उद्योगो में, समामेलित क्षेत्र की समस्त परिदत्त पूंजी का ६७ प्रतिशत था। सार्वजनिक कम्पनियो में, परिदत्त पूंजी का ७५ प्रतिशत निर्माणकारी उद्योगो में और २५ प्रतिशत निर्माणेतर उद्योगो में लगा हुआ था, जबकि निजी कम्पनियो के सम्बन्ध में यह अनुपात ४५ से ५५ का था।

४४८ कम्पनियो (४०७ पुरानी और ४१ नई) के सम्बन्ध में किये गये विश्लेषण से पता चला कि समामेलित क्षेत्र में १९४६ से १९५१ तक के पांच वर्षो में कुल पूंजी निर्माण ३५९ करोड रुपये था। इस राशि में, स्थिर सम्पत्ति में वृद्धि, सग्रह तालिका (Inventory Accumulation) में शुद्ध वृद्धि, और पूंजी-विनियोग, उधार और नकद में हुई वृद्धि भी सम्मिलित है। इसमें से स्थिर सम्पत्ति १७९ करोड रुपये, सग्रह तालिका ११७ करोड रुपये, उधार में वृद्धि ५४ करोड रुपये, और आर्थिक साधनो में वृद्धि तथा अप-नियोजन ९ करोड रुपये था।

१९४६ से १९५१ तक की अवधि में ३५९ करोड रुपये के कुल पूंजी निर्माण की वित्त-व्यवस्था इस प्रकार की गई —

	करोड़ रुपये
परिदत्त पूंजी में वृद्धि	८६
सामान्य सचितियाँ (रिजर्व)	२२
मूल्य-ह्रास सचिति	७४
विकास और अन्य सचितियाँ	२८
ऋण ग्रहण	९५
अन्य सावन	५४

पूंजी निर्माण की वित्त-व्यवस्था के लिए निधियो के मुख्य सावन परिदत्त पूंजी और ऋण ग्रहणो में हुई वृद्धियो मे प्राप्त हुए।

उद्योगो के विस्तार की वित्त-व्यवस्था के लिए मुख्य सावन उद्योग की ताजी इक्विटी पूंजी और प्रतिवृत मुनाफे थे। ४९२ कम्पनियो से, जिनमें से ५४ नई थी, प्राप्त सूचना से पता चला कि १९४६-५१ की अवधि में ६९ ३ करोड रुपये प्रतिवृत मुनाफो द्वारा और ५३ करोड रुपये ताजी पूंजी से प्राप्त हुए। इसमें पूंजीकृत सचितियाँ सम्मिलित नही थी। यदि ५४ नई कम्पनियो को सम्मिलित न किया जाता, तो ये सख्यायें क्रमश ६८ ६ करोड रुपये और ३५ ४ करोड रुपये होती। कुल मिलाकर नये अभिदानो की अपेक्षा समामेलित वचत अधिक वडा सावन रही, पुरानी कम्पनियो के सम्वन्ध में समामेलित वचत और भी अविक महत्त्वपूर्ण थी।

प्रतिवृत मुनाफे पूंजीकृत सचितियो में समाविष्ट हुए और उनसे अन्य सचितियों के निर्माण मे भी सहायता मिली। १९४६-५१ में कुछ सचितियाँ (मूल्य-ह्रास और कर को छोडकर) १९४६ में ९६ करोड रुपये से वढकर १९५१ में १४१ करोड रुपये हो गईं। १९५१ के अन्त में मोटे तौर पर आवी राशि सामान्य सचितियो में और १।५ मशीनरी के नवीनीकरण और विकास निधि में थी।

४९२ कम्पनियो में, जिनके सम्वन्व में ज्ञातव्य सामग्री उपलव्य थी, १९४६ से १९५१ तक के ६ वर्षों में परिदत्त पूंजी में हुई वृद्धि ९७ करोड रुपये तथा नये अभिदान ५३ करोड रुपये थे और शेष पूंजीकृत सचितियाँ थी।

जिन चुनी हुई कम्पनियो का सर्वेक्षण किया गया, उनमें मुनाफो के आवटन के अध्ययन से पता चला कि कर की व्यवस्था के लिए कर से पहले मुनाफो का ४३ प्रतिशत रखा गया और समस्त अवधि के लिए मुनाफो का वितरित भाग ३४ प्रतिशत रहा। मूल्य-ह्रास को छोडकर प्रतिवृत मुनाफे कर से पहले, मुनाफो के २२ प्रतिशत थे। यदि समस्त उद्योगो को एक साथ मिलाकर देखा जाय तो सम्पूर्ण अवधि में करों, लाभांशो और प्रतिधृत मुनाफो का अनुपात करीव करीव ४ : ३ . २ का वताया जा सकता है। इस अवधि में कर सम्बन्धी कमियो के कारण मुनाफो के साथ कर के अनुपात मे एक महत्वपूर्ण घटाव दिखाई दिया।

के धन्धो में वहुत काफी प्रगति हो चुकी है, पर उत्पादक तथा पूँजीवाले द्रव्यो के क्षेत्र में इतनी प्रगति नही हुई। ऐसा कुछ तो इस कारण से हुआ कि आवश्यक प्रारम्भिक कार्य में बहुत समय लगता है, और आशिक रूप से इस कारण हुआ कि काम पूरा करने में देरी हुई। फिर भी सीमेन्ट-वाला धन्धा एक विशेष अपवाद रहा।

पूँजी निर्माण और उत्पादक उद्यम के रक्षण एव विकास पर आय के कर निर्धारण के ढाँचे और स्तर के प्रभावो की परीक्षा के लिए देश में उत्पादक उद्यम की स्थिति और सामान्य दृष्टिकोण तथा पूँजी निर्माण की गति का अध्ययन करना आवश्यक था। आयोग ने उद्योग की निधियो के साधनो और उपयोगो, निर्माणकारी उद्योग के निजी क्षेत्र में कुल और शुद्ध पूँजीनिर्माण, विभिन्न उद्योगो की मुनाफा कमाने की क्षमता और मुनाफो की आवटन सम्वन्धी नीतियो और मूल्य-ह्रास के लिए व्यवस्था करने की उद्योग की प्रणाली तथा औद्योगिक क्षेत्र में पुरानी सम्पत्ति के पुन प्रतिस्थापन करने की पद्धति का अध्ययन किया। यह अध्ययन सार्वजनिक लिमिटेड जायन्ट स्टाक कम्पनियो के लेखा-जोखा-पत्र और लाभ एव हानि के लेखो तथा चुनी हुई कम्पनियो द्वारा सीधे प्रस्तुत की गई सामग्री के तथ्यात्मक आधार पर किया गया। निजी लिमिटेड कम्पनियो के सम्बन्ध में भी आयकर विभाग से सामग्री प्राप्त की गई। रिजर्व वैंक ने सार्वजनिक सीमित जायन्ट स्टाक कम्पनियो के लेखा-जोखा-पत्र और लाभ एव हानि के लेखो का जो विश्लेषण किया था, वह भी उससे उपलब्ध हुआ। लेखा-जोखा-पत्रो से उपलब्ध सूचना की पूरक सामग्री कई सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो से प्राप्त हुई।

१९५१-५२ में समस्त समामेलित क्षेत्र की परिदत्त पूंजी का एक चौथाई से कुछ अधिक निजी कम्पनियो में, परिदत्त पूंजी का लगभग १८ प्रतिशत निर्माणकारी उद्योगो में और परिदत्त पूंजी का ४५ प्रतिशत निर्माणेतर उद्योगो मे था। सब मिलाकर निर्माणकारी उद्योगो में, समामेलित क्षेत्र की समस्त परिदत्त पूंजी का ६७ प्रतिशत था। सार्वजनिक कम्पनियो में, परिदत्त पूंजी का ७५ प्रतिशत निर्माणकारी उद्योगो में और २५ प्रतिशत निर्माणेतर उद्योगो में लगा हुआ था, जवकि निजी कम्पनियों के सम्वन्ध में यह अनुपात ४५ से ५५ का था।

४४८ कम्पनियो (४०७ पुरानी और ४१ नई) के सम्वन्ध में किये गये विश्लेषण से पता चला कि समामेलित क्षेत्र में १९४६ से १९५१ तक के पाँच वर्षो में कुल पूंजी निर्माण ३५९ करोड रुपये था। इस राशि में, स्थिर सम्पत्ति में वृद्धि, सग्रह तालिका (Inventory Accumulation) में शुद्ध वृद्धि, और पूँजी-विनियोग, उधार और नकद में हुई वृद्धि भी सम्मिलित है। इसमें से स्थिर सम्पत्ति १७९ करोड रुपये, सग्रह तालिका ११७ करोड रुपये, उधार में वृद्धि ५४ करोड रुपये, और आर्थिक साधनो में वृद्धि तथा अपनियोजन ९ करोड रुपये था।

१९४६ से १९५१ तक की अवधि में ३५९ करोड रुपये के कुल पूंजी निर्माण की वित्त-व्यवस्था इस प्रकार की गई —

	करोड़ रुपये
परिदत्त पूंजी में वृद्धि	८६
सामान्य सचितियाँ (रिजर्व)	२२
मूल्य-ह्रास संचिति	७४
विकास और अन्य सचितियाँ	२८
ऋण ग्रहण	९५
अन्य साधन	५४

पूंजी निर्माण की वित्त-व्यवस्था के लिए निवियो के मुख्य साधन परिदत्त पूंजी और ऋण ग्रहणो मे हुई वृद्धियो से प्राप्त हुए।

उद्योगो के विस्तार की वित्त-व्यवस्था के लिए मुख्य साधन उद्योग की ताजी इक्विटी पूंजी और प्रतिवृत मुनाफे थे। ४९२ कम्पनियो से, जिनमें से ५४ नई थी, प्राप्त सूचना से पता चला कि १९४६-५१ की अवधि में ६९ ३ करोड रुपये प्रतिधृत मुनाफो द्वारा और ५३ करोड रुपये ताजी पूंजी से प्राप्त हुए। इसमें पूंजीकृत सचितियाँ सम्मिलित नही थी। यदि ५४ नई कम्पनियो को सम्मिलित न किया जाता, तो ये सख्यायें क्रमश ६८ ६ करोड रुपये और ३५ ४ करोड रुपये होती। कुल मिलाकर नये अभिदानो की अपेक्षा समामेलित वचत अधिक वडा मावन रही, पुरानी कम्पनियो के सम्बन्ध में समामेलित वचत और भी अधिक महत्त्वपूर्ण थी।

प्रतिधृत मुनाफे पूंजीकृत सचितियो मे समाविष्ट हुए और उनसे अन्य सचितियों के निर्माण में भी सहायता मिली। १९४६-५१ में कुछ सचितियाँ (मूल्य-ह्रास और कर को छोडकर) १९४६ में ९६ करोड रुपये से वढकर १९५१ में १४१ करोड रुपये हो गई। १९५१ के अन्त में मोटे तौर पर आधी राशि सामान्य सचितियो में और १।५ मशीनरी के नवीनीकरण और विकास निधि में थी।

४९२ कम्पनियो में, जिनके सम्वन्ध में ज्ञातव्य सामग्री उपलव्ध थी, १९४६ मे १९५१ तक के ६ वर्षो में परिदत्त पूंजी में हुई वृद्धि ९७ करोड़ रुपये तथा नये अभिदान ५३ करोड़ रुपये थे और शेष पूंजीकृत सचितियाँ थी।

जिन चुनी हुई कम्पनियो का सर्वेक्षण किया गया, उनमे मुनाफो के आवटन के अव्ययन ने पता चला कि कर की व्यवस्था के लिए कर से पहले मुनाफो का ४३ प्रतिशत रखा गया और समस्त अवधि के लिए मुनाफो का वितरित भाग ३४ प्रतिशत रहा। मूल्य-ह्रास को छोड़कर प्रतिवृत मुनाफे कर से पहले, मुनाफो के २२ प्रतिशत थे। यदि समस्त उद्योगो को एक साथ मिलाकर देखा जाय तो सम्पूर्ण अवधि मे करो, लाभाशों और प्रतिवृत मुनाफो का अनुपात करीव करीव ४ . ३ २ का वताया जा सकता है। इस अवधि मे कर सम्वन्धी कमियों के कारण मुनाफो के साथ कर के अनुपात मे एक महत्त्वपूर्ण घटाव दिखाई दिया।

के धन्धो में बहुत काफी प्रगति हो चुकी है, पर उत्पादक तथा पूंजीवाले द्रव्यो के क्षेत्र में इतनी प्रगति नही हुई। ऐसा कुछ तो इस कारण से हुआ कि आवश्यक प्रारम्भिक कार्य में बहुत समय लगता है, और आशिक रूप से इस कारण हुआ कि काम पूरा करने में देरी हुई। फिर भी सीमेन्ट-वाला धन्धा एक विशेष अपवाद रहा।

पूंजी निर्माण और उत्पादक उद्यम के रक्षण एव विकास पर आय के कर निर्धारण के ढांचे और स्तर के प्रभावो की परीक्षा के लिए देश में उत्पादक उद्यम की स्थिति और सामान्य दृष्टिकोण तथा पूंजी निर्माण की गति का अध्ययन करना आवश्यक था। आयोग ने उद्योग की निधियो के साधनो और उपयोगो, निर्माणकारी उद्योग के निजी क्षेत्र में कुल और शुद्ध पूंजीनिर्माण, विभिन्न उद्योगो की मुनाफा कमाने की क्षमता और मुनाफो की आवटन सम्बन्धी नीतियो और मूल्य-ह्रास के लिए व्यवस्था करने की उद्योग की प्रणाली तथा औद्योगिक क्षेत्र में पुरानी सम्पत्ति के पुन प्रतिस्थापन करने की पद्धति का अध्ययन किया। यह अध्ययन सार्वजनिक लिमिटेड जायन्ट स्टाक कम्पनियो के लेखा-जोखा-पत्र और लाभ एव हानि के लेखो तथा चुनी हुई कम्पनियो द्वारा सीधे प्रस्तुत की गई सामग्री के तथ्यात्मक आधार पर किया गया। निजी लिमिटेड कम्पनियो के सम्बन्ध में भी आयकर विभाग से सामग्री प्राप्त की गई। रिजर्व बैंक ने सार्वजनिक सीमित जायन्ट स्टाक कम्पनियो के लेखा-जोखा-पत्र और लाभ एव हानि के लेखो का जो विश्लेषण किया था, वह भी उससे उपलब्ध हुआ। लेखा-जोखा-पत्रो से उपलब्ध सूचना की पूरक सामग्री कई सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो से प्राप्त हुई।

१९५१-५२ में समस्त समामेलित क्षेत्र की परिदत्त पूंजी का एक चौथाई से कुछ अधिक निजी कम्पनियो में, परिदत्त पूंजी का लगभग १८ प्रतिशत निर्माणकारी उद्योगों में और परिदत्त पूंजी का ४५ प्रतिशत निर्माणेतर उद्योगो में था। सब मिलाकर निर्माणकारी उद्योगो में, समामेलित क्षेत्र की समस्त परिदत्त पूंजी का ६७ प्रतिशत था। सार्वजनिक कम्पनियो में, परिदत्त पूंजी का ७५ प्रतिशत निर्माणकारी उद्योगो में और २५ प्रतिशत निर्माणेतर उद्योगो में लगा हुआ था, जबकि निजी कम्पनियो के सम्बन्ध में यह अनुपात ४५ से ५५ का था।

४४८ कम्पनियो (४०७ पुरानी और ४१ नई) के सम्बन्ध में किये गये विश्लेषण से पता चला कि समामेलित क्षेत्र में १९४६ से १९५१ तक के पांच वर्षो में कुल पूंजी निर्माण ३५९ करोड रुपये था। इस राशि में, स्थिर सम्पत्ति में वृद्धि, सग्रह तालिका (Inventory Accumulation) में शुद्ध वृद्धि, और पूंजी-विनियोग, उधार और नकद में हुई वृद्धि भी सम्मिलित है। इसमें से स्थिर सम्पत्ति १७९ करोड रुपये, सग्रह तालिका ११७ करोड रुपये, उधार में वृद्धि ५४ करोड रुपये, और आर्थिक साधनो में वृद्धि तथा अपनियोजन ९ करोड रुपये था।

१९४६ से १९५१ तक की अवधि में ३५९ करोड रुपये के कुल पूंजी निर्माण की वित्त-व्यवस्था इस प्रकार की गई —

करोड रुपये थी। इनके प्रतिकूल १७० करोड रुपये मूल्य ह्रास, व्यवहारवहिर्भूतता (Obsolescence) तथा अन्य अभिदेयो में उपलब्ध होगे, फिर भी २४० करोड रुपये शेष वच जायेंगे जो अन्य साधनो से उपलब्ध होगें। १९५१ से अगले १५ वर्षो के लिए निर्माणकारी क्षेत्र में समस्त सार्वजनिक सीमित कम्पनियो के लिए सभाव्य प्राक्कलन ४२० करोड़ रुपये या २८ करोड रुपये वार्षिक है। इस समस्या का स्वरूप और महत्ता हर उद्योग में अलग-अलग है और प्रत्येक इकाई मे इस समस्या की उग्रता मे भी भेद है। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि उद्योगमात्र के लिए यह समस्या सर्व-सामान्य थी।

निजी सीमित कम्पनियो की आर्थिक स्थिति, विशेषत मुनाफो के आवटन और पूंजी-निर्माण की परीक्षा करने के लिए आयोग ने आयकर विभाग से ४,५८९ कम्पनियो के सम्बन्ध मे सूचना प्राप्त की। यह सूचना १९४५-४६ से १९४८-४९ तक के चार वित्तीय वर्षो के सम्बन्ध में थी। पूंजी-निर्माण और मुनाफो के आवटन सम्बन्धी सामग्री के विस्तृत विश्लेषण के लिए ५०० कम्पनियाँ चुनी गई थी। इन कम्पनियो की परिदत्त पूंजी ७२ करोड रुपये थी जिसमें से ३८ करोड रुपये निर्माणकारी उद्योगो और ३४ करोड रुपये निर्माणेतर उद्योगो मे थे। १९४८-४९ म निर्माणकारी कम्पनियो की कुल स्थिर सम्पत्ति ३२ करोड रुपये और निर्माणेतर कम्पनियो की १० करोड रु० थी। सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो से अलग ढग पर निर्माणकारी कम्पनियो में भी कुल स्थिर सम्पत्ति परिदत्त पूंजी से कम थी, जिससे पता चला कि इन कम्पनियो का मुख्य धन्धा प्राय. निर्माणकारी नही था। निजी लिमिटेड कम्पनियो ने सरकारी प्रतिभूतियो में कम पूंजी लगाई थी, जबकि दूसरी कम्पनियो के शेयरो में काफी पूंजी लगाई गई थी। ऐसा प्रतीत हुआ कि बहुत-सी निजी लिमिटेड कम्पनियाँ वित्त-प्रदान सम्बन्धी कार्यकलाप में लगी हुई थी।

निजी लिमिटेड कम्पनियो के सम्बन्ध में कुल पूंजी-निर्माण और शुद्ध पूंजी-निर्माण के प्राक्कलन उपस्थित करना आयोग के लिए सम्भव न हो सका, क्योकि कुल स्थिर सम्पत्ति और पूंजी नियोजनो के सम्बन्ध मे ही सामग्री उपलब्ध थी। १९४८-४९ को समाप्त तीन वर्षो मे, निर्माणकारी उद्योगो में कुल स्थिर सम्पत्ति निर्माण १२ १ करोड रुपये था, जिनमे से ६ ४ करोड रुपये सयत्र और मशीनरी विषयक था। इस अवधि में निर्माणकारी क्षेत्र में पूंजी-निर्माण के निम्न साधन थे.—

	करोड रुपयो में
नये अभिदान	११ ६
वढे हुए ऋण ग्रहण	१८ ७
मूल्य-ह्रास	५ ०
प्रतिवृत मुनाफे	५ ९

जबकि १९४६ से १९४८ तक के तीन वर्षो में सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो की परिदत्त पूंजी में कुल वृद्धि का लगभग ४० प्रतिशत सचितियो के पूंजीकरण द्वारा था, तब

इन कम्पनियो के वितरित और प्रतिधृत मुनाफ़ो के सापेक्ष आँकडो से ज्ञात हुआ कि वितरित मुनाफो को स्थिर रखने या उनके पूरी तरह से ऊँचे चढ़ने की स्पष्ट प्रवृत्ति रही, जिससे कि व्यापार की स्थितियो में किसी प्रतिकूल हेरफेर का प्रभाव प्रतिधृत मुनाफो पर व्यनुपाती रूप से पडा। इस प्रकार १९४८ से १९४९ तक, जबकि कर से पहले मुनाफे ५८ करोड रुपये से घटकर ३४ करोड रुपये हो गये, तब लाभाश १५ करोड रुपये पर टिके रहे, और प्रतिधृत मुनाफे १६ ३ करोड रुपये से घटकर ४ २ करोड रुपये हो गये।

प्रतिधृत मुनाफो के साथ वितरित मुनाफो का अनुपात प्रत्येक उद्योग में अलग-अलग था, किन्तु समस्त कम्पनियो को मिलाकर कर-भुगतान के वाद वितरण के लिए उपलब्ध शुद्ध मुनाफो की वार्षिक औसत २९ करोड रुपये थी, जिसमें ५८ प्रतिशत वितरित और ४० प्रतिशत प्रतिधृत थी। कर के वाद मुनाफे १९४६ में २७ ८ करोड रुपये से घटकर १९४७ में २४ ४ करोड रुपये ही रह गये, किन्तु वितरित भाग लगभग वही रहा। १९४८ में मुनाफो में काफी वृद्धि हुई, किन्तु वितरित मुनाफो में प्राय कोई परिवर्तन नही हुआ, और सचितियो में पर्याप्त वृद्धि हुई। १९४९ में, जो अच्छा वर्ष नही था, वितरित मुनाफो में कोई परिवर्तन नही हुआ, प्रतिधृत मुनाफो का अश घटकर २२ प्रतिशत हो गया। शुद्ध मुनाफो में वृद्धि होने के साथ प्रतिधृत मुनाफो का अनुपात १९५० और १९५१ में वढ गया। १९५२ में मुनाफो में फिर कमी हुई और प्रतिधृत मुनाफे कर के वाद कुल मुनाफो के ३० प्रतिशत से भी कम थे। उपलव्व आँकडो से पता चला कि कर के परिमाण और दर की अपेक्षा मुनाफो के परिमाण और दर का प्रतिधृत मुनाफो की राशि और मुनाफो के साथ इसके अनुपात पर अविक प्रभाव पडा। मुनाफे में नि सन्देह और भी अधिक हेर-फेर होती रही। १९३८ और १९३९, इन दो वर्षो में ३७२ कम्पनियो के परिणामो से भी इस वात की पुष्टि हुई कि मुनाफो के प्रतिधारण पर कर के परिमाण और दर की अपेक्षा मुनाफे के परिमाण और दर का अविक निश्चयात्मक प्रभाव पडा।

इसके वाद आयोग ने पुन प्रतिस्थापन की समस्या पर विचार किया। १९४६ से १९५१ तक की समस्त अवधि में मैनेजिंग एजेण्टो का औसत पारिश्रमिक मुनाफो का लगभग १४ प्रतिशत था। इससे जो एक महत्त्वपूर्ण वात प्रकट हुई, वह यह थी कि लाभाशो के रूप में भागीदारो को जो कुछ मिला, उसका आवा मैनेजिंग एजेण्टो को प्राप्त हुआ। निर्माणकारी कम्पनियो ने मूल्य ह्रास के लिए जो व्यवस्था की, उसकी आयकर विभाग द्वारा अनुमत व्यवस्था के साथ तुलना की गई। यह तुलना ३३२ कम्पनियो के सम्वन्व में की गई, जिनके वारे में सामग्री उपलव्व थी। कुल मिलाकर आयकर अभिदेय वास्तविक व्यवस्था का डेढ गुना था। लगभग सभी महत्त्वपूर्ण उद्योगो में १९४६ से पहले प्राप्त सम्पत्तियो के सम्वन्व में वास्तविक व्यवस्था और कर प्रयोजनो के लिए दी गई छूट में अन्तर थोडा था। १९४६ के वाद प्राप्त सम्पत्तियो के सम्वन्व में कमी अविक थी और समस्त उद्योगो में फैली हुई थी, हालांकि उद्योगो में महत्त्वपूर्ण विभिन्नतायें थी। मोटे तौर पर, १९४६ से पहले प्राप्त और १९५१ में प्रयुक्त अवमूल्य स्थिर सम्पत्तियो की प्रतिस्थापन लागत अनुमानत ४१०

करोड रुपये थी। इसके प्रतिकूल १७० करोड रुपये मूल्य ह्रास, व्यवहारवहिर्भूतता (Obs-olescence) तथा अन्य अभिदेयो में उपलब्ध होगे, फिर भी २४० करोड रुपये शेप बच जायेंगे जो अन्य साधनो से उपलब्ध होगे। १९५१ से अगले १५ वर्षों के लिए निर्माणकारी क्षेत्र में समस्त सार्वजनिक सीमित कम्पनियो के लिए सभाव्य प्राक्कलन ४२० करोड रुपयें या २८ करोड रुपये वार्षिक है। इस समस्या का स्वरूप और महत्ता हर उद्योग में अलग-अलग है और प्रत्येक इकाई में इस समस्या की उग्रता मे भी भेद है। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि उद्योगमात्र के लिए यह समस्या सर्व-सामान्य थी।

निजी सीमित कम्पनियो की आर्थिक स्थिति, विशेपत. मुनाफो के आवटन और पूंजी-निर्माण की परीक्षा करने के लिए आयोग ने आयकर विभाग से ४,५८९ कम्पनियो के सम्बन्ध मे सूचना प्राप्त की। यह सूचना १९४५-४६ से १९४८-४९ तक के चार वित्तीय वर्षों के सम्बन्ध में थी। पूंजी-निर्माण और मुनाफो के आवटन सम्बन्धी सामग्री के विस्तृत विश्लेपण के लिए ५०० कम्पनियाँ चुनी गई थी। इन कम्पनियो की परिदत्त पूंजी ७२ करोड रुपये थी जिसमें से ३८ करोड रुपये निर्माणकारी उद्योगो और ३४ करोड रुपये निर्माणेतर उद्योगो मे थे। १९४८-४९ म निर्माणकारी कम्पनियो की कुल स्थिर सम्पत्ति ३२ करोड रुपये और निर्माणेतर कम्पनियो की १० करोड़ रु० थी। सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो से अलग ढग पर निर्माणकारी कम्पनियो मे भी कुल स्थिर सम्पत्ति परिदत्त पूंजी से कम थी, जिससे पता चला कि इन कम्पनियो का मुख्य धन्धा प्राय निर्माणकारी नही था। निजी लिमिटेड कम्पनियो ने सरकारी प्रतिभूतियो में कम पूंजी लगाई थी, जबकि दूसरी कम्पनियो के शेयरो में काफी पूंजी लगाई गई थी। ऐसा प्रतीत हुआ कि वहुत-सी निजी लिमिटेड कम्पनियाँ वित्त-प्रदान सम्वन्धी कार्यकलाप में लगी हुई थी।

निजी लिमिटेड कम्पनियो के सम्बन्ध में कुल पूंजी-निर्माण और शुद्ध पूंजी-निर्माण के प्राक्कलन उपस्थित करना आयोग के लिए सम्भव न हो सका, क्योकि कुल स्थिर सम्पत्ति और पूंजी नियोजनो के सम्बन्ध में ही सामग्री उपलब्ध थी। १९४८-४९ को समाप्त तीन वर्षो मे, निर्माणकारी उद्योगो मे कुल स्थिर सम्पत्ति निर्माण १२ १ करोड रुपये था, जिसमे से ६ ४ करोड रुपये सयंत्र और मशीनरी विषयक था। इस अवधि मे निर्माणकारी क्षेत्र में पूंजी-निर्माण के निम्न साधन थे :—

	करोड रुपयो मे
नये अभिदान	११·६
बढे हुए ऋण ग्रहण	१८ ७
मूल्य-ह्रास	५ ०
प्रतिधृत मुनाफे	५·९

जबकि १९४६ से १९४८ तक के तीन वर्षो में सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो की परिदत्त पूंजी में कुल वृद्धि का लगभग ४० प्रतिशत संचितियो के पूंजीकरण द्वारा था, तब

वोनस प्रदान निजी लिमिटेड कम्पनियो में हुई वृद्धि के एक चौथाई से भी कम थे। निजी लिमिटेड कम्पनियो के वित्तो के सम्बन्ध में आन्तरिक साधनो का कम महत्त्वपूर्ण भाग रहा।

अर्थव्यवस्था में पूंजी-विनियोग और बचत

समस्त अर्थव्यवस्था में पूंजी-विनियोग और बचत के सम्बन्ध में विचार करते हुए आयोग ने कुछ प्राक्कलन उपस्थित किये जो "अत्यधिक अस्थायी हैं, और आवश्यक प्रारम्भिक सामग्री न मिल सकने के कारण, जो अशत, वैज्ञानिक प्राक्कलन न होकर सूचनाओ पर आधारित अनुमान मात्र ही है।" १९५३-५४ में सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी-विनियोग अनुमानत ३०५ करोड रुपये और उद्योग के समामेलित क्षेत्र में लगभग ५५ करोड रुपये था। शहरी मकान-सम्पत्ति से प्राप्त अनुमानित शुद्ध किराये के आधार पर राष्ट्रीय आय समिति ने हिसाव लगाया है कि १९५३-५४ में शहरी वासार्थ भवन निर्माण पर पूंजी-विनियोग लगभग १२० करोड रुपये था और ग्रामीण परिवारो ने खेती के औजारो तथा भूमि की उन्नति पर जो व्यय किया वह १६० करोड रुपये था। १९५३-५४ में सार्वजनिक क्षेत्र में बचतो का कुल प्राक्कलन २०८ करोड रुपये और निजी क्षेत्र में ३१४ करोड रुपये था। १९५०-५१ में कुल शुद्ध पूंजी नियोजन का अनुमान ५५५ करोड रुपये या राष्ट्रीय आय का ५ ८ प्रतिशत किया गया था। १९५३-५४ के लिए पूंजी नियोजन का प्राक्कलन ७३० करोड रुपये या सम्भाव्य राष्ट्रीय आय का ७ प्रतिशत था। छोटे उद्यम एव वाणिज्य को मिलाकर यह सख्या कुछ अधिक हो जायेगी।

करनीति की रूपरेखा

विचारणीय विपयो की दृष्टि से आयोग द्वारा कर-प्रणाली की परीक्षा करना आवश्यक था। यह परीक्षा इन चार मुख्य पहलुओ के सम्बन्ध में करनी थी —कर प्रणाली का आपात और आय की विपमताओ को कम करने के लिए इसकी उपयुक्तता, देश के विकास कार्यक्रम और इसके लिए आवश्यक साधनो के सम्बन्ध में इसकी उपयुक्तता, पूंजी-निर्माण और उत्पादक उद्यम के रक्षण एव विकास पर आय-कर के प्रभाव, तथा स्फीतिकारी एव अपस्फीतिकारी स्थितियो का सामना करने के लिए कर का उपयोग।

करनीति के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न इस बात से पैदा हुआ कि "कर प्रणाली द्वारा आर्थिक समता प्राप्त करने और उत्पादक उद्यम की निरन्तर प्रगति के लिए आवश्यक पूंजी-नियोजन और वचत अबाध रूप मे होती रहे, इन दो उद्देश्यो के बीच सतुलन स्थापित करने की जरूरत है।" सामान्य आर्थिक और सामाजिक नीति के सम्बन्ध में अधिक उत्पादन तथा और अधिक अच्छा वितरण, ये दोनो ही उद्देश्य बडे महत्त्वपूर्ण हैं। अल्पकालीन दृष्टि से वितरण में सुधार की अपेक्षा उत्पादन में वृद्धि अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हो सकता है। किन्तु आर्थिक और सामाजिक शक्तियां अपने आप चाहे जैसा कार्य करती रहे इस पर अब समता स्थापित करने का प्रश्न नहीं छोडा जा सकता। उच्च वर्गो के अनुकूल जीवनस्तर सम्बन्धी परम्परागत विचारो तथा प्रयत्न और बचत करने के लिए आवश्यक पुरस्कार की आशाओ

या मुनाफे की भावना में भी उचित परिवर्तन होना चाहिए। आयो, सम्पत्ति और अवसरो मे और अधिक समता स्थापित करना आर्थिक विकास और सामाजिक प्रगति का आवश्यक अग होना चाहिए। यह स्पष्ट है कि आयो, अर्जित एव अनर्जित, और सम्पत्ति में विषमता की ऐसी पर्याप्त मात्रा है जिसे दूर किया जा सकता है। ये विषमताएँ अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाओ की विशेषता है, और समता स्थापित करने में तभी पर्याप्त प्रगति हो सकती है जबकि "निश्चित उद्देश्य के साथ विषमता के कुछ आधारभूत साधनो को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया जाये।" यह तभी हो सकता है, जबकि यथार्थरूप से यह जान लिया जाय कि इस दिशा में कर प्रणाली क्या कर सकती है और निजी उत्पादक प्रयत्न और उद्यम पर किसी प्रकार के अनुचित प्रति-कल प्रभाव डाले विना यह प्रक्रिया कहाँ तक जारी रह सकती है। समाज के कमजोर भागो की स्थिति दृढ वनाने मे सार्वजनिक व्यय भी एक महत्त्वपूर्ण पूरक भाग ले सकता है।

इस समय देश में आय या सम्पत्ति में विषमता की मात्रा कितनी है, इसे जानने के लिए कोई विश्वसनीय पैमाना उपलब्ध नही है। फिर भी वहुत अधिक विषमता विद्यमान है। मुद्रास्फीति से इसमें वढोतरी हुई। इसके साथ साथ वहुत से लोगो की वास्तविक आयो मे कमी हुई।

आयकर मे पर्याप्त वृद्धि होने पर भी अर्थव्यवस्था के कुछ हिस्सो में और कुछ आय-श्रेणियो मे विषमता की वृद्धि हुई। इसका आशिक कारण यह है कि कृषि सम्बन्धी आय को सम्मि-लित नही किया गया और वहुत से महत्त्वपूर्ण कर दाताओ ने कर प्रदान नही किया। और अधिक प्रभावशाली रूप से कर लागू करने और विलासोपभोग पर अतिरिक्त कर लगाने तथा धन और सम्पत्ति के कर में विस्तार करने से विषमताओ में कमी करने के सम्भव साधन प्राप्त हो सकते हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि यदि सार्वजनिक राजस्व में कोई पर्याप्त वृद्धि करनी है, तो "वह जनता द्वारा विस्तृत आधार पर कर देकर ही की जा सकती है।"

कर निर्धारण में न्याय्यता के, जिसकी परिभाषा करना या जिसे नाप सकना वडा कठिन है, विषय में विचार करते हुए आयोग ने वताया कि "न्याय्यता एक मायावी सबोध ह, यह अत्यन्त सापेक्ष भी है, विशेषत कर प्रणाली के समस्त रूप से निर्धारण में।" इस पर, समस्त सार्वजनिक वित्त के कार्यो के सम्वन्ध में विचार करना चाहिए, जिसमे करो के आपात के साथ सार्वजनिक व्यय के लाभ भी सम्मिलित हैं। अपने आर्थिक विकास में तेजी चाहनेवाले अर्धविकसित देशो में यह अनिवार्य है कि वहाँ की कर प्रणाली का आधार केवल कर देने की क्षमता ही न हो। आर्थिक विकास के लक्ष्यो को, जो राष्ट्रीय नीतियो के आज्ञापक हैं, उचित अवधि में प्राप्त करने के लिए भी ऐसा होना अनिवार्य है। यद्यपि समस्त कर प्रणाली पर न्याय्यता का मापदण्ड उपयुक्त रूप से लागू नहीं किया जा सकता फिर भी कर प्रणाली के कुछ भागो में असाम्य या अन्याय के विशिष्ट तत्त्व सदा ठीक किये जा सकते है।

विकास कार्यक्रम के लिये उपयुक्त कर प्रणाली का निर्धारण करते हुए इस वात पर जोर देना पड़ेगा कि अर्थव्यवस्था की स्वाभाविक प्रवृत्तियो का प्रतीकार किया जाय और यह तव हो सकता है जव की खपत का नियंत्रण किया जाय और पूंजी-नियोजन तथा वचतो को प्रोत्साहन

वोनस प्रदान निजी लिमिटेड कम्पनियो में हुई वृद्धि के एक चौथाई से भी कम थे। निजी लिमिटेड कम्पनियो के वित्तो के सम्बन्ध में आन्तरिक साधनो का कम महत्त्वपूर्ण भाग।रहा।

अर्थव्यवस्था में पूंजी-विनियोग और बचत

समस्त अर्थव्यवस्था में पूंजी-विनियोग और वचत के सम्बन्ध में विचार करते हुए आयोग ने कुछ प्राक्कलन उपस्थित किये जो "अत्यधिक अस्थायी है, और आवश्यक प्रारम्भिक सामग्री न मिल सकने के कारण, जो अशत, वैज्ञानिक प्राक्कलन न होकर सूचनाओ पर आधारित अनुमान मात्र ही हैं।" १९५३-५४ में सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी-विनियोग अनुमानत ३०५ करोड रुपये और उद्योग के समामेलित क्षेत्र में लगभग ५५ करोड रुपये था। शहरी मकान-सम्पत्ति से प्राप्त अनुमानित शुद्ध किराये के आधार पर राष्ट्रीय आय समिति ने हिसाव लगाया है कि १९५३-५४ में शहरी वासार्थ भवन निर्माण पर पूंजी-विनियोग लगभग १२० करोड रुपये था और ग्रामीण परिवारो ने खेती के औजारो तथा भूमि की उन्नति पर जो व्यय किया वह १६० करोड रुपये था। १९५३-५४ में सार्वजनिक क्षेत्र में बचतो का कुल प्राक्कलन २०८ करोड रुपये और निजी क्षेत्र में ३१४ करोड रुपये था। १९५०-५१ में कुल शुद्ध पूंजी नियोजन का अनुमान ५५५ करोड रुपये या राष्ट्रीय आय का ५ ८ प्रतिशत किया गया था। १९५३-५४ के लिए पूंजी नियोजन का प्राक्कलन ७३० करोड रुपये या सम्भाव्य राष्ट्रीय आय का ७ प्रतिशत था। छोटे उद्यम एव वाणिज्य को मिलाकर यह सख्या कुछ अधिक हो जायेगी।

करनीति की रूपरेखा

विचारणीय विपयो की दृष्टि से आयोग द्वारा कर-प्रणाली की परीक्षा करना आवश्यक था। यह परीक्षा इन चार मुख्य पहलुओ के सम्बन्ध में करनी थी —कर प्रणाली का आपात और आय की विपमताओ को कम करने के लिए इसकी उपयुक्तता, देश के विकास कार्यक्रम और इसके लिए आवश्यक साधनो के सम्बन्ध में इसकी उपयुक्तता, पूंजी-निर्माण और उत्पादक उद्यम के रक्षण एव विकास पर आय-कर के प्रभाव, तथा स्फीतिकारी एव अपस्फीतिकारी स्थितियो का सामना करने के लिए कर का उपयोग।

करनीति के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न इस वात से पैदा हुआ कि "कर प्रण द्वारा आर्थिक समता प्राप्त करने और उत्पादक उद्यम की निरन्तर प्रगति के लिए आव पूंजी-नियोजन और वचत अवाव रूप से होती रहे, इन दो उद्देश्यो के वीच सतुलन स करने की जरूरत है।" सामान्य आर्थिक और सामाजिक नीति के सम्बन्ध में अधिक तथा और अधिक अच्छा वितरण, ये दोनो ही उद्देश्य वडे महत्त्वपूर्ण हैं। अल्पकालीन वितरण में सुधार की अपेक्षा उत्पादन में वृद्धि अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हो सकता आर्थिक और सामाजिक शक्तियां अपने आप चाहे जैसा कार्य करती रहे इस पर स्थापित करने का प्रश्न नहीं छोडा जा सकता। उच्च वर्गो के अनुकूल जीवन परम्परागत विचारो तथा प्रयत्न और वचत करने के लिए आवश्यक पुरस्कार

आयोग का कहना है कि "ऐसा समझना गलत न होगा कि ऐसी नीतियो से कर योग्य क्षमता घटती है, जिनसे आर्थिक दुरवस्था उत्पन्न हो और जो लोकप्रिय न हो तथा हितकारी और दक्ष प्रशासन से यह क्षमता बढती है"। भारत मे सार्वजनिक व्यय हितकारी व्यय की ओर निरन्तर अग्रसर हुआ है, किन्तु सम्भवत इसमें मितव्ययिता और कार्यकुशलता नही बढी। फिर भी सामाजिक और विकास सेवाओ के प्रति बढते हुए पक्षपात से कर योग्य क्षमता की सीमाएँ बढाने में सहायता मिली है। यह माना जा सकता है कि भारतीय कर पद्धति ने, अपने वर्तमान ढाँचे और दरो के आधार पर देश के कर योग्य साधनो का पूरी तरह से दोहन नही किया। अतिरिक्त साधनो की विस्तृत आवश्यकता को देखते हुए भारतीय करो में कुछ वृद्धि करना सगत होगा।

कर बनाम ऋण-ग्रहण के प्रश्न के बारे में आयोग का कहना है कि चालू और पूंजी व्यय ऐसी श्रेणियो मे नही आते जिनमें इस प्रयोजन के लिये काफी स्पष्टता के साथ भेद किया जा सके। अन्य देशो के अनुभव से पता चला है कि एक महान् विकास कार्यक्रम के लिए वित्त-व्यवस्था करते हुए, स्फीतिकारी सम्भाव्य को सीमित रखा जा सकता है। यह तब हो सकता है जब कि राजस्व लेखे में उचित मात्रा में मुनाफे का बजट बनाया जाय। राजस्व और पूंजी खातो के बीच का भेद स्पष्ट नही है और किसी भी हालत में पूंजी खाता आर्थिक रूप मे उत्पादक योजनाओ तक सीमित नही है। इसलिये ऐसे कार्यक्रमो का कम से कम कुछ भाग कर द्वारा पूरा करना वाछनीय है। ऐसा समझना भ्रामक होगा कि पूंजी व्यय के लिये वित्त-व्यवस्था करने मे कर के उपयोग से वर्तमान सतति पर उन कार्यक्रमो के लिये बोझ पडेगा, जिनका लाभ आगामी सततियाँ उठायेंगी। वस्तुत वर्तमान समय में समूचे समाज को यह भार उठाना पडेगा, चाहे इसके लिये वित्त-व्यवस्था ऋणो द्वारा की जाय या कर द्वारा। किसी भी हालत में यह सुझाव नही दिया गया कि विकास कार्यक्रम के लिये पूर्णत करो द्वारा ही वित्त-व्यवस्था की जाय। मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थितियो में ऐसा करना अवास्तविक होगा। विकास वित्त में ऋणो का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुनाफे के बजट बनाकर विकास के कुछ भाग के लिये वित्त-व्यवस्था करना विकास वित्त का एक उचित रूप है और इससे सार्वजनिक ऋण-ग्रहण की समान राशि की अपेक्षा चालू उपभोग पर अधिक भार नही पडता।

विकास कार्यक्रम के लिये वित्त वहन करने का एक दूसरा उपाय घाटो की अर्थव्यवस्था है। घाटे की अर्थव्यवस्था कहाँ तक की जाय इस सम्बन्ध में इस बात पर विचार करना होगा कि सामान्य आर्थिक स्थिति में स्फीतिकारी दबाव विद्यमान है या नही। ऐसा समझना ठीक न होगा कि घाटे की अर्थव्यवस्था का परिणाम सदा मुद्रास्फीति ही होता है चाहे इसकी मात्रा कुछ भी हो और चाहे किन्ही भी परिस्थितियो में इसका आश्रय लिया जाय। ऐसा कोई भी सूत्र नही है जिससे घाटे की अर्थव्यवस्था की मात्रा निश्चित की जा सके। अन्ततोगत्वा यह तो एक निर्णय का विषय है। वर्तमान परिस्थितियो को और इस समय अर्थव्यवस्था की जो प्रवृत्तियाँ है, उन्हे देखते हुए "घाटे की अर्थव्यवस्था की उचित मात्रा से अर्थ-व्यवस्था को कोई हानि न पहुँचेगी।"

दिया जाय। यदि कर प्रणाली से, जो बचतो के सर्वसमुच्चय पर निर्भर करती है, सार्वजनिक पूंजी-नियोजन के परिमाण में वृद्धि हुई और उससे प्रशासनिक और विकासेतर व्यय न बढा तो जो अतिरिक्त सार्वजनिक पूंजी-नियोजन होगा, उससे निजी पूंजी नियोजन को नही, अपितु खपत को हानि होगी। असल में जिस चीज की आवश्यकता है, वह है उचित रूप से व्यवर्तित कर की योजना, एक ऐसी योजना जिसमें गहराई और विस्तार इन दोनो की पूर्णता हो। इसलिये यह सकेत किया गया है कि "बहुत-सी विलास और अर्धविलास की वस्तुओ पर पर्याप्त मात्रा में अतिरिक्त कर लगाया जाय, और साथ ही जन-उपभोग कि वस्तुओ पर अपेक्षा-कृत कर की दरें कम हों"। सामान्यतया ऐसी कर प्रणाली, जिसमें भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ को पूरा करने और साथ ही विकास कार्यक्रम और उसके लिये आवश्यक साधन जुटाने की क्षमता हो, वही हो सकती है, जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के लिए उपलब्ध पूंजी-नियोजन के साधनो में वृद्धि हो सके किन्तु साथ ही जिससे निजी क्षेत्र में पूंजी विनियोग में न्यूनतम कमी हो और इसलिये, जिसके द्वारा समस्त वर्गों के उपभोग पर अधिकतम व्यवहार्य नियत्रण किया जाय। अधिक आयवाले वर्गो के उपभोग पर, कम आय वाले वर्गों की अपेक्षा नियत्रण नि सन्देह अधिक होना चाहिए।

केवल विलास की वस्तुओ पर कर लगाने से पर्याप्त राजस्व प्राप्त नही होगा, और उपभोग पर पर्याप्त नियत्रण होने के साथ पण्यद्रव्य-कर द्वारा काफी प्राप्तियाँ हो सकें, इसके लिये यह आवश्यक होगा कि उत्पाद और विक्रय कर को, कम आयवाले वर्गो के उपभोग पर, और उन वस्तुओ पर जो नितान्त आवश्यकता की समझी जाती है, लागू किया जाय। कुछ आवश्यक वस्तुओ को कर से मुक्त करना अधिक तर्कसगत नही है। मुद्रास्फीति के विकल्प के रूप में, जिसमे सम्भवत समाज के कमजोर वर्गो के प्रचलित उपभोग स्तरो में और भी अधिक कमी करनी पडे, अत्यावश्यक वस्तुओ पर कर निर्धारण की एक वैज्ञानिक योजना अधिक उचित होगी।

कर की सीमाओ के प्रश्न पर विचार करते हुए आयोग का कहना है कि न्याय्यता की भांति कर योग्य क्षमता भी एक सापेक्ष सबोध है। आर्थिक सीमाएँ राजनीतिक सीमाओ से, जो प्राय जल्दी प्राप्त कर ली जाती हैं, व्यवस्थित होती है। भारतीय कर राजस्व राष्ट्रीय आय के लगभग ७ या ८ प्रतिशत है, और यह अनुपात कई अन्य देशो के, जिनमें दक्षिण पूर्वी एशिया के भी कुछ देश सम्मिलित हैं, अनुपात से कम है। निम्न जीवनस्तर, कम उपभोगस्तर और राष्ट्रीय आय के साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नीचा अनुपात अधिकाश व्यक्तियो के बारे में कर की सीमा नियत करते हैं। अधिक विकसित देशो में ऐसे ही अनुपातो की तुलना के आधार पर यदि कोई ऐसे प्रत्यक्ष परिणाम निकाले जायें कि देश में और अधिक कर लगाने की गुजाइश है तो वे अनुपयुक्त होंगे।

यह कहा जा सकता है कि कर योग्य क्षमता की सीमा का सम्बन्ध उन प्रयोजनो से होता है, जिनके लिए अतिरिक्त करो को खर्च किया जाता है। प्रशासन में कार्यकुशलता और सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता हो जाने से लोग करो में की गई वृद्धि को इच्छापूर्वक वहन कर लेंगे।

आयोग का कहना है कि "ऐसा समझना गलत न होगा कि ऐसी नीतियो से कर योग्य क्षमता घटती है, जिनमे आर्थिक दुरवस्था उत्पन्न हो और जो लोकप्रिय न हो तथा हितकारी और दक्ष प्रशासन से यह क्षमता बढती है"। भारत में सार्वजनिक व्यय हितकारी व्यय की ओर निरन्तर अग्रसर हुआ है, किन्तु सम्भवत इसमे मितव्ययिता और कार्यकुशलता नही बढी। फिर भी सामाजिक और विकास सेवाओ के प्रति बढते हुए पक्षपात से कर योग्य क्षमता की सीमाएँ बढाने में सहायता मिली है। यह माना जा सकता है कि भारतीय कर पद्धति ने, अपने वर्तमान ढाँचे और दरो के आधार पर देश के कर योग्य साधनो का पूरी तरह से दोहन नही किया। अतिरिक्त साधनो की विस्तृत आवश्यकता को देखते हुए भारतीय करो में कुछ वृद्धि करना सगत होगा।

कर बनाम ऋण-ग्रहण के प्रश्न के बारे में आयोग का कहना है कि चालू और पूंजी व्यय ऐसी श्रेणियो में नही आते जिनमे इस प्रयोजन के लिये काफी स्पष्टता के साथ भेद किया जा सके। अन्य देशो के अनुभव से पता चला है कि एक महान् विकास कार्यक्रम के लिए वित्त-व्यवस्था करते हुए, स्फीतिकारी सम्भाव्य को सीमित रखा जा सकता है। यह तब हो सकता है जब कि राजस्व लेखे में उचित मात्रा मे मुनाफे का बजट बनाया जाय। राजस्व और पूंजी खातो के बीच का भेद स्पष्ट नही है और किसी भी हालत मे पूंजी खाता आर्थिक रूप मे उत्पादक योजनाओ तक सीमित नही है। इसलिये ऐसे कार्यक्रमो का कम से कम कुछ भाग कर द्वारा पूरा करना वाछनीय है। ऐसा समझना भ्रामक होगा कि पूंजी व्यय के लिये वित्त-व्यवस्था करने में कर के उपयोग से वर्तमान सतति पर उन कार्यक्रमो के लिये बोझ पडेगा, जिनका लाभ आगामी सततियाँ उठायेंगी। वस्तुत. वर्तमान समय में समूचे समाज को यह भार उठाना पड़ेगा, चाहे इसके लिये वित्त-व्यवस्था ऋणो द्वारा की जाय या कर द्वारा। किसी भी हालत मे यह सुझाव नही दिया गया कि विकास कार्यक्रम के लिये पूर्णत करो द्वारा ही वित्त-व्यवस्था की जाय। मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थितियो में ऐसा करना अवास्तविक होगा। विकास वित्त मे ऋणो का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुनाफे के बजट बनाकर विकास के कुछ भाग के लिये वित्त-व्यवस्था करना विकास वित्त का एक उचित रूप है और इससे सार्वजनिक ऋण-ग्रहण की समान राशि की अपेक्षा चालू उपभोग पर अधिक भार नही पडता।

विकास कार्यक्रम के लिये वित्त वहन करने का एक दूसरा उपाय घाटो की अर्थव्यवस्था है। घाटे की अर्थव्यवस्था कहाँ तक की जाय इस सम्बन्ध मे इस बात पर विचार करना होगा कि सामान्य आर्थिक स्थिति मे स्फीतिकारी दबाव विद्यमान है या नही। ऐसा समझना ठीक न होगा कि घाटे की अर्थव्यवस्था का परिणाम सदा मुद्रास्फीति ही होता है चाहे इसकी मात्रा कुछ भी हो और चाहे किन्ही भी परिस्थितियो में इसका आश्रय लिया जाय। ऐसा कोई भी सूत्र नही है जिससे घाटे की अर्थव्यवस्था की मात्रा निश्चित की जा सके। अन्ततोगत्वा यह तो एक निर्णय का विषय है। वर्तमान परिस्थितियो को और इस समय अर्थव्यवस्था की जो प्रवृत्तियाँ है, उन्हे देखते हुए "घाटे की अर्थव्यवस्था की उचित मात्रा से अर्थ-व्यवस्था को कोई हानि न पहुँचेगी।"

विकास कार्यक्रम के लिये वित्त की व्यवस्था करने के कुछ पूरक साधन भी विद्यमान हैं, जैसे निष्कर राजस्वो का विस्तार, विदेशी वित्तव्यवस्था, कर न देने या कर से बचने की रोकथाम और व्यय में बचत और उसे युक्तियुक्त बनाना। अन्यत्र उपयुक्त स्थानो पर आयोग ने इनका उल्लेख किया है।

निजी क्षेत्र के उद्दीपको पर, विशेषत बचतो और पूंजी-नियोजन पर कर प्रणाली के क्या प्रभाव हैं—इस विषय में विचार करना आवश्यक है। भारतीय कर प्रणाली के आवरण को गहरा और विस्तृत करने की जरूरत है, जिसका अर्थ होगा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार के करो में वृद्धि। यह बात तो ठीक है कि कर वृद्धि से उपभोग स्तर, विशेषत अधिक आयवाले वर्गों के उपभोग स्तर घट जायेंगे। उपभोग स्तरो में अत्यधिक विषमता का अधिकाश मजदूरो पर अनैतिक प्रभाव पडता है और आयोग के विचार में ऐसा मानना सम्भवत अतिशयोक्तिपूर्ण है कि अधिक आयवाले वर्गों की काम करने की इच्छा पर, अधिक कर लगाने से अनुद्दीपक प्रभाव होता है। कर की वर्तमान उच्च दरो के होते हुए भी थोडे और बहुत से लोगो की आयो के निर्वर्तन की विषमता का स्तर भारत में उन बहुत से देशों की अपेक्षा भी अधिक विस्तृत है, जहाँ उच्च आयो पर कर की दरें नीची हैं। प्रति व्यक्ति या प्रति परिवार आय के उचित अपवर्त्य के आधार पर व्यक्तिगत आयो की उच्चतम सीमा निर्धारित होना आवश्यक है और आयोग का यह विचार है कि "कर के बाद शुद्ध व्यक्तिगत आयो पर एक ऐसी उच्चतम सीमा निर्धारित की जाय जो देश में प्रचलित औसत प्रति परिवार आय के लगभग ३० गुणा से अधिक न हो।" इस सुझाव का यह अर्थ नही है कि इसको तत्काल कार्यान्वित किया जा सकता है, किन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुछ समय में धीरे धीरे इसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। इस समस्या के प्रति दृष्टिकोण वास्तविक होना चाहिये और वह विभिन्न दिशाओ में किये जाने वाले एकीकृत प्रयत्नो से सम्बद्ध होना चाहिये। कर प्रणाली में इतना अधिक खिचाव नही आना चाहिये कि जिससे देश की उत्पादक पद्धति ही खतरे में पड जाय या जिससे उसकी विस्तार की सम्भावनाओं को क्षति पहुँचे। बचतो और पूंजी-नियोजनो को बढाने एव औद्योगिक विस्तार को प्रोत्साहित करने के लिए कर प्रणालियो में उचित उद्दीपक होने आवश्यक हैं।

कर प्रणाली के ढांचे पर विचार करते हुए कर पद्धति में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करो का सापेक्ष भाग क्या है, यह प्रश्न प्राय उठाया गया है। सामान्यत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करो में क्या विशेष अनुपात हो, यह बात कोई विशेष महत्त्व की नही। अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिये कर की उच्च दरें और विस्तृत आवरण आवश्यक हैं और प्राप्तियो में वृद्धि प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार के करो में विभक्त होनी चाहिये। आयोग का विचार है कि "कर राजस्वो में जितनी अधिक वृद्धि करनी वाञ्छनीय हो, उतना ही बडा भाग अप्रत्यक्ष करो का ऐसी वृद्धि लाने में होना है।" करातिरिक्त राजस्वो में, जो कुछ रूप में अप्रत्यक्ष करो के समान है, इसी प्रकार की वृद्धि होनी चाहिये।

आयोग के सामने यह बात रखी गई कि राज्य क्षेत्र में विभिन्न करो की दरो में प्रणाली की

एकरूपता स्थापित करना वाछनीय है। इस वारे में आयोग का रवैया यहहै कि एकरूपता लाने के लिये केवल उतने ही कम से कम प्रयत्न किये जाने चाहियें कि जितने साधनो के उत्तमोत्तम आवटन की सुरक्षा के लिये आवश्यक हो और जिनसे व्यापार एवं व्यवसाय सम्बन्धी कार्य-कलाप अलाभकारी दिशा में प्रवाहित न हो और आर्थिक मामलो मे राज्यो की आवश्यक स्वायत्तता भी कम न हो।

विशिष्ट कार्यों के लिए उपकर लगाने के प्रश्न पर आयोग ने यह मत प्रकट किया कि उनके लगाने मे कोई आपत्ति नही है यदि वे, जिस वस्तु पर उपकर लगाया गया है, उसके मूल्य का वहुत ही थोडा भाग हो और उनसे जो आय हो वह "ऐसे कार्यों में लगाई जाय जिनका कर-दाताओ की उसी सस्था के हितो से या उद्योग से अथवा सम्बद्ध वस्तु के उत्पादन या विक्रय व्यवस्था से सम्वन्ध हो।" विशेष करो से होनेवाली आयो को विशिष्ट कार्यो के लिये पृथक् रूप से निश्चित करने के वडे प्रश्न के वारे मे आयोग का विचार है कि "करो से उपलब्ध समस्त प्राप्तियो को एक सामान्य निधि में मिला देना और सर्व समुच्चय से विशिष्ट प्राधिकरण द्वारा समस्त व्यय के लिये निधियो का आवंटन उत्कृष्ट आर्थिक प्रवन्ध के लिये लाभकारी है।" कुछ परिस्थितियो में विशिष्ट उपकरो या पृथक् रूप से रक्षित करो के उपयोग के लिए लाभदायक क्षेत्र विद्यमान है। करो के साथ लाभो के सम्वन्ध से इस प्रकार का पृथक् रक्षण स्पष्टत युक्ति सगत हो जाता है। अल्पकाल तक, महँगी योजनाओ की लागत निकाल लेने के लिये पुलो पर लगे पथकरो का उपयोग इसका एक उदाहरण है। करो को मिलाने और आयो के उपयोग का मुख्य क्षेत्र उन दिशाओ मे है जहाँ इस सम्वद्ध लाभ के कारण मनोवैज्ञानिक रूप से करो का भार कम प्रतीत होता है। किन्तु उद्योग के एक भाग पर इसलिये भार डालना कि उसके दूसरे भाग को लाभ हो यह कोई उपयुक्त पद्धति मालूम नही होती क्योकि इससे सार्वजनिक वित्तो के एकीकृत प्रशासन में कमी होती है। सडक वनाने और उनके विकास के लिये मोटर गाडियो पर लगे करो को पृथक रक्षित करने की प्रथा का अन्य देशो मे विस्तृत रूप से प्रयोग किया गया है। सभी क्षेत्रो में, जिनमें सड़कें भी सम्मिलित है, विकास कार्यक्रम का विस्तार होने पर ऐसी आशा नही की जा सकती कि मोटर गाडियो या पेट्रोल पर लगे करो की प्राप्तियो के पृथक् रक्षण से सडक विकास के वढने में वहुत अधिक सहायता मिलेगी। केन्द्रीय सडक निधि केवल पृथक् रक्षण का तरीका ही नही है। यह किसी केन्द्रीय शुल्क से होनेवाली आयो के कुछ भाग को करयुक्त वस्तु के उपभोग के आधार पर राज्यो मे विभक्त करने का तरीका भी है। जिस राज्य को इस प्रकार आयें मिलती है वहाँ उन्हे भी किसी विशिष्ट उपयोग के लिये पृथक् रक्षित कर दिया जाता है। यह तरीका राज्य और स्थानीय सम्वन्धो के क्षेत्र में उपयोगी हो सकता है किन्तु इसकी आवश्यक वात पृथक् रक्षण नही है। यह वस्तुत स्थानीय संस्थाओ को और अधिक साधन देने का एक तरीका है और इससे, सडक विकास के कार्यक्रमो को हाथ में लेने में स्थानीय सस्थाओ को और अधिक विश्वास प्राप्त होता है।

इसके वाद आयोग ने भारत में, भूतकाल मे मुद्रास्फीतिकारी एव मुद्रास्फीतिनिवारक

गतियो के वास्तविक इतिहास तथा उनके पैदा करने में आन्तरिक तथा वाह्य कारणो का क्या भाग रहा, इसका विश्लेषण किया। आयोग ने इस बात पर जोर दिया कि विचारणीय विषयो की दृष्टि से ऐसी स्थितियो के सम्बन्ध में कर का क्या भाग है, इसकी जाँच पडताल करने से एक काल्पनिक प्रश्न सामने आता है। साधारणतया दो तरीके ऐसे हैं जिनसे उचित परिवर्तन किये जा सकते हैं—एक ऐसा कर का ढाँचा निकाला जाय जो स्वत ही आर्थिक उथल-पुथल को दूर कर दे या विशेप परिस्थितियो का सामना करने के लिए परिवर्तन किये जायें। आर्थिक उतार-चढावो का सामना करने के लिये कर प्रणाली की अपनी शक्ति को वढ़ाना सम्भव है। किन्तु यह तभी हो सकता है जव कि प्रगतिशील प्रत्यक्ष करो का सहारा लिया जाय और यथा-मूल्य वस्तु करो का और अविक उपयोग किया जाय। इस प्रकार के करो का उपयोग प्रशासनिक कार्य-कुशलता एव सुविधा की आवश्यकताओ के अनुसार होना चाहिये। इस प्रकार अन्य बातो से कर प्रणाली की आर्थिक उतार-चढावो का सामना करने की क्षमता सीमित हो सकती है। इसलिये प्रश्न यह है कि कर प्रणाली का जो एक सामान्य रूप है उसमें, एक निश्चित स्फीतिकारी या अपस्फीति-कारी प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर किस प्रकार परिवर्तन किया जाय।

सामान्यतया निजी व्यय के लिये उपलब्ध राष्ट्रीय आय की मात्रा कम करके कर प्रणाली द्वारा स्फीतिकारी काल के प्रभाव दूर किये जा सकते हैं। यह मात्रा मुनाफे के बजट बनाने की नीति द्वारा कम की जा सकती है और घाटे के बजट द्वारा इस मात्रा को वढ़ाकर अपस्फीतिकारी काल को दूर किया जा सकता है। वाह्य प्रभावो से पैदा होनेवाली स्फीतिकारी उथल-पुथल के प्रभावो को निर्यात-शुल्क लगाकर रोकना एक स्वीकृत तरीका है और वाह्य प्रभावो के कारण आन्तरिक मूल्यो में होनेवाली कमी को निर्यात शुल्क हटाकर तथा आन्तरिक वस्तुकर में काफी कमी करके दूर किया जा सकता है। राजकोपीय दृष्टि से उन्नत देशो में भी करो में कमी करने की अपेक्षा सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करके ही अवसाद विरोघी उपाय किये जाते हैं। भारत में अपस्फीति के प्रभावो को दूर करने में कर प्रणाली से वहुत कम सहायता मिल सकती है। भारतीय अर्थव्यवस्था की रचनात्मक दृढताओ और अन्य विशेपताओ को देखते हुए घाटे की अर्थव्यवस्था से युक्त सार्वजनिक व्यय की भी केवल सीमित उपयोगिता है। फिर भी कर की अपेक्षा सार्वजनिक व्यय द्वारा ही अपस्फीति काल के प्रभावो को दूर करने के लिये प्रभावशाली कार्रवाई की जा मकती है।

मुद्रास्फीति कालो में ही करो का एक महत्त्वपूर्ण निवारक भाग हो सकता है। अनुभव मे पता चला कि कर प्रणाली द्वारा आय का काफी भाग निजी व्यय मे मफलतापूर्वक अलग किया जा सकता है। वडी अतिरिक्त आयो पर प्रत्यक्ष रूप से जो कर लगाये जाते है, सामान्य क्रय शक्ति में वृद्धि पर जो कर लगाये जाते हैं और मामान्य तथा विलासोपभोग की वस्तुओं पर जो अतिरिक्त लाभ-कर और वस्तु-कर लगाये जाते हैं, इन सवका मुद्रास्फीति विरोधी नीति में एक महत्त्वपूर्ण भाग है। किन्तु जव मुद्रास्फीति किमी एक निश्चित स्तर मे आगे पहुँच जाती है, तव कर द्वारा आंशिक उपचार भी नही हो पाता। ऐसी हालतो में एक असरदार तरीका यह है कि सार्वजनिक खर्च में वृद्धि रोक दी जाये, इसे कम से कम कर दिया जायेया वहुत जोरदार

मौद्रिक राक, सच तो यह ह कि मौद्रिक पूर्ति तथा तरल सम्पत्तियो पर एक तरह की पूंजी मवधी कटौती लगा दी जाए। भारतीय कर पद्धति के अन्तर्गत आय-कर तथा जिन्स-कर में मुद्रास्फीतिमूलक परिस्थितियो पर रोकथाम करने के महत्त्वपूर्ण उपाय मौजूद है। यदि मन्दी आ जाए जिसकी कोई सम्भावना ज्ञात नही होती, तो कर मे कमी करने से कुछ विशेप अन्तर नही आयेगा। ऐसी हालत में राजकोपीय उपचार यह होगा कि मार्वजनिक खर्च वढाया जाए और इसके लिए वित्त घाटे के वजट द्वारा तव तक जुटाया जाए जव तक कि अर्थ व्यवस्था ठीक न हो जाए।

सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के लिए अतिरिक्त साधनो को किन मुख्य दिशाओ से प्राप्त किया जाए, इस वात पर सुझाव देते हुए आयोग ने यह कहा है कि आय कर वढाया जाए, जिसका आशिक रूप से प्रतिपेव निगम कर घटा कर किया जाए, तया वचतो और पूंजीविनियोग के मामले में अतिरिक्त सहूलियतें दी जाये, उत्पाद-कर वढाए जाएँ, उपयुक्त मूल्य सम्वन्धी नीतियो को अपनाकर करातिरिक्त राजस्व वढाया जाए, भूमि राजस्व पर मामूली अधिभार लिया जाए, कृपि आय-कर का भू-भागीय विस्तार किया जाय तथा उसकी दर में वृद्धि की जाए, सम्पत्ति कर को विस्तृत किया जाए, स्थानीय सस्थाओ के द्वारा मम्पत्ति के हस्तातरण पर कर लगाया जाए, विक्री कर का विस्तार किया जाए और यथासमय उसकी दरो में वृद्धि की जाए। इमी प्रकार से राज्य के द्वारा चलाये हुए कार्यों से, जैमे सिंचाई तथा विजली की योजनाएँ, वसूली वढाई जाए।

कौन से नए कर लगाये जायें, इस सम्वन्ध में आयोग ने कोई वहुत नयी वाते नही वताईं उमने कोई ऐमा नयाकर नही वताया जो सविवान की सातवी अनुसूची की किमी न किसी सूची के अन्तर्गत न हो। फिर भी आयोग ने कर के कुछ ऐसे नये ढग वताये है, जो भविष्य में काम आ सकते है, पर जिनके मम्वन्ध में यह मिफारिश नही की गई कि वे फौरन ही लगाए जाएँ। उदाहरणस्वरूप आय-कर तथा सम्पत्ति कर के पूरक के रूप में कुल धनराशि पर एक वार्पिक कर लगाया जा सकता है, किन्तु इमकी दर नीची होनी चाहिए पर पूंजी मम्पत्तियो के मूल्याकन तथा निर्धारण में प्रशासनीय पचडे इतने अधिक है कि "फिलहाल इम तरह के कर नही उगाहने चाहिए।" पूंजीगत मुनाफो पर कर लगाना भी एक माधन है। भारत में इम कर को चालू करके देखा गया है, पर इससे विशेप राजस्व की प्राप्ति नहीं हुई। और शायद पूंजी विनियोग पर इसका एक प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक असर पडा, और स्टाको तथा शेयरो की स्वतत्र गति में वाधा पडी। आज भी ये कारण उतने ही वलवान वने हुए है। आयोग ने यह मिफारिश की है कि आय-कर की दरो में वृद्धि की जाय, पर यदि माथ माथ पूंजीगत मुनाफो पर कर लगाया जाय, तो करापवचन का खतरा है क्योंकि लोग उम हालत में उन प्राप्तियो को पूंजीगत मुनाफा कर के दिखायेंगे जिन्हे अन्यथा कर योग्य आय ममझा जाता। इसलिए इम ममय पूंजीगत मुनाफा कर की मिफारिश नही की जा रही है।

जमीन तथा दूमरी मम्पत्ति के मूल्य में अनुपार्जित वृद्धि पर कर लगाना मैद्धान्तिक रूप मे वहुत ही आदर्श कर है, पर इसे अधिक मफलता नही मिली। वास्तविक भूमम्पत्ति से प्राप्त

गतियो के वास्तविक इतिहास तथा उनके पैदा करने में आन्तरिक तथा बाह्य कारणो का क्या भाग रहा, इसका विश्लेषण किया। आयोग ने इस बात पर जोर दिया कि विचारणीय विषयो की दृष्टि से ऐसी स्थितियो के सम्बन्ध में कर का क्या भाग है, इसकी जाँच पड़ताल करने से एक काल्पनिक प्रश्न सामने आता है। साधारणतया दो तरीके ऐसे हैं जिनसे उचित परिवर्तन किये जा सकते हैं—एक ऐसा कर का ढाँचा निकाला जाय जो स्वत ही आर्थिक उथल-पुथल को दूर कर दे या विशेप परिस्थितियो का सामना करने के लिए परिवर्तन किये जायें। आर्थिक उतार-चढावो का सामना करने के लिये कर प्रणाली की अपनी शक्ति को वढ़ाना सम्भव है। किन्तु यह तभी हो सकता है जब कि प्रगतिशील प्रत्यक्ष करो का सहारा लिया जाय और यथा-मूल्य वस्तु करो का और अधिक उपयोग किया जाय। इस प्रकार के करो का उपयोग प्रशासनिक कार्य-कुशलता एव सुविधा की आवश्यकताओ के अनुसार होना चाहिये। इस प्रकार अन्य बातो से कर प्रणाली की आर्थिक उतार-चढावो का सामना करने की क्षमता सीमित हो सकती है। इसलिये प्रश्न यह है कि कर प्रणाली का जो एक सामान्य रूप है उसमें, एक निश्चित स्फीतिकारी या अपस्फीति-कारी प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर किस प्रकार परिवर्तन किया जाय।

सामान्यतया निजी व्यय के लिये उपलब्ध राष्ट्रीय आय की मात्रा कम करके कर प्रणाली द्वारा स्फीतिकारी काल के प्रभाव दूर किये जा सकते हैं। यह मात्रा मुनाफे के बजट बनाने की नीति द्वारा कम की जा सकती है और घाटे के बजट द्वारा इस मात्रा को वढ़ाकर अपस्फीतिकारी काल को दूर किया जा सकता है। वाह्य प्रभावो से पैदा होनेवाली स्फीतिकारी उथल-पुथल के प्रभावो को निर्यात-शुल्क लगाकर रोकना एक स्वीकृत तरीका है और वाह्य प्रभावो के कारण आन्तरिक मूल्यो में होनेवाली कमी को निर्यात शुल्क हटाकर तथा आन्तरिक वस्तुकर में काफी कमी करके दूर किया जा सकता है। राजकोपीय दृष्टि से उन्नत देशो में भी करो में कमी करने की अपेक्षा सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करके ही अवसाद विरोधी उपाय किये जाते हैं। भारत में अपस्फीति के प्रभावो को दूर करने में कर प्रणाली से बहुत कम सहायता मिल सकती है। भारतीय अर्थव्यवस्था की रचनात्मक दृढताओ और अन्य विशेपताओ को देखते हुए घाटे की अर्थव्यवस्था मे युक्त सार्वजनिक व्यय की भी केवल सीमित उपयोगिता है। फिर भी कर की अपेक्षा सार्वजनिक व्यय द्वारा ही अपस्फीति काल के प्रभावो को दूर करने के लिये प्रभावशाली कार्रवाई की जा सकती है।

मुद्रास्फीति कालो में ही करो का एक महत्वपूर्ण निवारक भाग हो सकता है। अनुभव मे पता चला कि कर प्रणाली द्वारा आय का काफी भाग निजी व्यय मे सफलतापूर्वक अलग किया जा सकता है। बड़ी अतिरिक्त आयो पर प्रत्यक्ष रूप मे जो कर लगाये जाते हैं, सामान्य क्रय शक्ति में वृद्धि पर जो कर लगाये जाते है और सामान्य तथा विलासोपभोग की वस्तुओ पर जो अतिरिक्त लाभ-कर और वस्तु-कर लगाये जाते हैं, इन सबका मुद्रास्फीति विरोधी नीति में एक महत्त्वपूर्ण भाग है। किन्तु जब मुद्रास्फीति किसी एक निश्चित स्तर से आगे पहुँच जाती है, तब कर द्वारा आशिक उपचार भी नही हो पाता। ऐसी हालतो में एक असरदार तरीका यह है कि सार्वजनिक खर्च में वृद्धि रोक दी जाये, इसे कम से कम कर दिया जायेया बहुत जोरदार

मौद्रिक रोक, सच तो यह है कि मौद्रिक पूर्ति तथा तरल सम्पत्तियो पर एक तरह की पूँजी सबधी कटौती लगा दी जाए। भारतीय कर पद्धति के अन्तर्गत आय-कर तथा जिन्स-कर में मुद्रास्फीतिमूलक परिस्थितियो पर रोकथाम करने के महत्त्वपूर्ण उपाय मौजूद है। यदि मन्दी आ जाए जिसकी कोई सम्भावना ज्ञात नही होती, तो कर में कमी करने से कुछ विशेष अन्तर नही आयेगा। ऐसी हालत में राजकोषीय उपचार यह होगा कि सार्वजनिक खर्चे बढाया जाए और इसके लिए वित्त घाटे के बजट द्वारा तब तक जुटाया जाए जब तक कि अर्थ व्यवस्था ठीक न हो जाए।

सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के लिए अतिरिक्त साधनो को किन मुख्य दिशाओ से प्राप्त किया जाए, इस बात पर सुझाव देते हुए आयोग ने यह कहा है कि आय कर बढाया जाए, जिसका आशिक रूप से प्रतिषेध निगम कर घटा कर किया जाए, तथा बचतो और पूँजीविनियोग के मामले में अतिरिक्त सहूलियतें दी जाये, उत्पाद-कर बढाए जाएँ, उपयुक्त मूल्य सम्बन्धी नीतियो को अपनाकर करातिरिक्त राजस्व बढाया जाए, भूमि राजस्व पर मामूली अधिभार लिया जाए, कृषि आय-कर का भू-भागीय विस्तार किया जाय तथा उसकी दर में वृद्धि की जाए, सम्पत्ति कर को विस्तृत किया जाए, स्थानीय सस्थाओ के द्वारा सम्पत्ति के हस्तातरण पर कर लगाया जाए, बिक्री कर का विस्तार किया जाए और यथासमय उसकी दरो मे वृद्धि की जाए। इसी प्रकार से राज्य के द्वारा चलाये हुए कार्यों से, जैसे सिंचाई तथा बिजली की योजनाएँ, वसूली बढ़ाई जाए।

कौन से नए कर लगाये जायें, इस सम्बन्ध में आयोग ने कोई बहुत नयी बातें नही बताई उसने कोई ऐसा नयाकर नही बताया जो सविधान की सातवी अनुसूची की किसी न किसी सूची के अन्तर्गत न हो। फिर भी आयोग ने कर के कुछ ऐसे नये ढग बताये है, जो भविष्य में काम आ सकते है, पर जिनके सम्बन्ध में यह सिफारिश नही की गई कि वे फौरन ही लगाए जाएँ। उदाहरणस्वरूप आय-कर तथा सम्पत्ति कर के पूरक के रूप में कुल धनराशि पर एक वार्षिक कर लगाया जा सकता है, किन्तु इसकी दर नीची होनी चाहिए पर पूँजी सम्पत्तियो के मूल्याकन तथा निर्धारण में प्रशासनीय पचडे इतने अधिक है कि "फिलहाल इस तरह के कर नही उगाहने चाहिए।" पूँजीगत मुनाफो पर कर लगाना भी एक साधन है। भारत में इस कर को चालू करके देखा गया है, पर इससे विशेष राजस्व की प्राप्ति नही हुई। और शायद पूँजी विनियोग पर इसका एक प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक असर पडा, और स्टाको तथा शेयरो की स्वतत्र गति में बाधा पडी। आज भी ये कारण उतने ही बलवान बने हुए है। आयोग ने यह सिफारिश की है कि आय-कर की दरो में वृद्धि की जाय, पर यदि साथ साथ पूँजीगत मुनाफो पर कर लगाया जाय, तो करापवचन का खतरा है क्योकि लोग उस हालत में उन प्राप्तियो को पूँजीगत मुनाफा कर के दिखायेंगे जिन्हे अन्यथा कर योग्य आय समझा जाता। इसलिए इस समय पूँजीगत मुनाफा कर की सिफारिश नही की जा रही है।

जमीन तथा दूसरी सम्पत्ति के मूल्य में अनुपार्जित वृद्धि पर कर लगाना सैद्धान्तिक रूप से बहुत ही आदर्श कर है, पर इसे अधिक सफलता नही मिली। वास्तविक भूसम्पत्ति से प्राप्त

होनेवाले पूंजीगत मुनाफो पर कुछ राज्य शहरी जमीनों तथा इमारतो पर आनुपातिक भूसम्पत्ति कर के रूप में परोक्ष कर लगाते हैं। वास्तविक शहरी सम्पत्ति के मामलो में सम्पत्ति के हस्तातरण पर कर तथा अन्य सम्पत्ति पर पहले से अधिक वार्षिक कर लगाने से बहुत बडी अनुपार्जित आय की समस्या हल हो जाती है। जमीन या जायदाद के पहले से अच्छी हो जाने के लिए लगा कर तथा खेती-वाली जमीन पर खेती के अतिरिक्त कामो में प्रयोग के कारण जो बढ़ा हुआ कर लगाया जाता है, उसमें सारे पूंजीगत मुनाफे नही आ जाते बल्कि केवल वसूल न किये गये लाभ आ जाते हैं जो विशेष सार्वजनिक उन्नति के कारण उत्पन्न होते हैं। इस सम्बन्ध में अतिरिक्त मुनाफा-कर भी एक विचारणीय कर है। अधिकाश रूप में इसका प्रयोग युद्ध या युद्धोत्तर युग में व्यवसाय के अत्यधिक मुनाफो पर कर लगाने के सुविधाजनक उपाय के रूप में हुआ है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा दूसरे देशो में शाति के समय अतिरिक्त मुनाफा कर के सम्बन्ध में जो तजुर्बे हुए, उनसे यह ज्ञात होता है कि आय-कर के प्रचलित तरीको के मुकाबले में इसमे कोई श्रेष्ठता नही है। पूंजीगत लाभो पर कर की तरह अतिरिक्त मुनाफा कर को अत्यन्त मुद्रास्फीतिमूलक युगों के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। पर इसे कर-पद्धति के एक साधारण उपादान के रूप मे काम में लाने की सिफारिश नही की गई है।

नमक पर उत्पाद कर के विषय में भी विवेचन होना चाहिए। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ ने बराबर इसके विरुद्ध आवाज उठाई है। इसके विरोध को एक राजनैतिक महत्त्व प्राप्त हुआ है, और इसका उच्छेदन भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन का एक मुख्य नारा था। स्वतत्रता मिलने पर यह कर हटा लिया गया, तब से यह कर फिर नही लगाया गया। जिन्स कर के प्रसारित क्षेत्र तथा प्रतिवेदन में केन्द्रीय और राज्यीय क्षेत्र में उपभोग करो के विस्तार सम्बन्धी प्रस्तावो की पृष्ठभूमि में नमक कर लगाने का केवल इसलिए समर्थन नही किया जा सकता कि इसका आपात बहुत थोडा है। नमक शायद ही कभी केवल जीवन-धारण के आधार पर उत्पादित होता हो, जैसे खेती की फसलें उत्पन्न की जाती है, और इसलिए इस पर कर न देने से यह व्यवहार में प्रतिगामी नही हो जाता। इसकी खपत भी लचीली नही है, और इसलिए इसका भार कम आयवाले लोगो पर अधिक पडता है। इस प्रश्न का राजनैतिक पहलू भी अप्रासगिक नही है, जिसे किसी भी हालत में भुला देना अनुचित होगा, इसलिए आयोग की राय मे नमक-कर को फिर से चालू करने की आवश्यकता नही।

कर के मामलो में सयोजन

इसके बाद आयोग ने इस महत्वपूर्ण विषय पर विवेचन किया है कि केन्द्रीय सरकार तथा राज्यो, राज्यों के आपसी कर सम्बन्धी मामलो में किस प्रकार सयोजन हो।

प्रत्यक्ष कर के क्षेत्र का जहाँ तक सम्बन्ध है, भारत में सयोजन का सवाल, सिवा थोडे से सीमित क्षेत्र मे जहाँ खेतीवाली आय के साथ आय-कर का सयोजन करना है, उठता ही नही। जिन्स पर कर के क्षेत्र मे केन्द्रीय सरकार तथा राज्यो में सयोजन और एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की आवश्यकता है। उदाहरण-स्वरूप भिन्न भिन्न राज्यो में बिक्री करो को कार्यान्वित करने के मामले मे किस प्रकार

मयोजन किया जाये, इस पर विचार करने की आवश्यकता है। कर-सम्बन्धी तजुर्बों तथा सूचनाओं का विभिन्न राज्यो में आदान-प्रदान किया जाना बहुत आवश्यक है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे सार्वजनिक वित्त के बढते हुए महत्त्व के साथ कर तथा खर्च की समस्याओ के सम्बन्ध में एक सयोजित राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है। औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में सरकारी धन्धों के वृहत् क्षेत्र में विभिन्न राज्यो तथा केन्द्रीय सरकार के तजुर्बों को एकत्र करना उपयोगी होगा। राज्यो के कर-सम्बन्धी प्रयासों में योजनात्मक विकास की भाँति, सयोजन करना जरूरी है।

इसके लिए आयोग ने यह सिफारिश की है कि सविधान के २६३वे अनुच्छेद के अनुसार अखिल भारतीय कर-परिषद् की स्थापना की जाए, जिससे कर-सम्बन्धी नीतियों, कर-कानूनों तथा कर-प्रशासन के विषय मे राज्यो मे आपस मे, तथा सघ और राज्यों के बीच सयोजन किया जा सके। राज्यो के पारस्परिक झगडो और एक से अधिक राज्य के बीच विचारणीय विषयों को भी इस परिषद् के सामने लाया जाय। आयोग का यह सुझाव है कि इस परिषद् में जो लोग प्रतिनिधि होकर आयें, वे मन्त्री के स्तर के हो, इसके सदस्य वित्त तथा स्थानीय शासन के मन्त्री हो। परिषद् का करशोध ब्यूरो के रूप में एक स्थायी सचिवालय हो, जो वित्त मत्रालय से जुडा हुआ हो। यह दफ्तर निरन्तर सामग्री एकत्र करता रहे, और केन्द्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय करो सम्बन्धी समस्याओ का अध्ययन करता रहे। और उनके सयोजन के सम्बन्ध में कार्य करता रहे। यह दफ्तर कर पद्धति का समग्र रूप से अध्ययन करे, वैदेशिक कर-पद्धतियो के मुख्य विकासो पर देख-रेख रखे, कर सम्बन्धी आँकडो को संयोजित और उन्नत करे, विशेष करों या कर वर्गो के प्रभाव, कर के परिणामो, केन्द्रीय तथा राज्यीय जिन्स-कर कही एक ही मद पर दो बार न लगते हो, इन बातो के सम्बन्ध में विशेष जाँच करे। वित्त आयोग ने यह जो सुझाव रखा है कि एक एक राज्य के वित्तो का धारावाहिक रूप से अध्ययन किया जाये, सो यह सस्था उस काम को भी कर सकती है।

इसके अतिरिक्त आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि विश्वविद्यालयो तथा गैर सरकारी शोध सस्थाओ मे विश्लेषणात्मक कार्यों को बढाने के लिए क्रियात्मक प्रयत्न किये जाये। चुनी हुई शोध-सस्थाओ में सार्वजनिक वित्त एव सार्वजनिक उपयोगिताओ सम्बन्धी विषयो पर छोटे शोध-विभागो को वित्तीय सहारा दिया जाय। यथासमय ये शोध-विभाग, कर-शोध दफ्तर तथा चुने हुए अधिकारियों के सहयोग से कर अधिकारियो के लिए प्रत्यास्मरण पाठ्यक्रम तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था करें।

करातिरिक्त राजस्व

इसके बाद आयोग ने करातिरिक्त राजस्वों पर विचार किया है। करातिरिक्त राजस्व, देश के, चाहे केन्द्रीय सतह पर हो या राज्यीय पर, सार्वजनिक वित्त का एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। कर और करातिरिक्त राजस्व में अक्सर सीमा रेखा बहुत पतली है, कई बार वह एक दूसरे में विलीन हो जाते है, जैसे बिजली के उपभोग तथा बिजलीवाले कारखानो के लाभों पर कर। प्रशासनीय तथा अन्य विविध प्राप्तियों के अलावा करातिरिक्त राजस्व मे मुख्यतः राज्य

द्वारा चलाये हुए धन्धों के लाभ आ जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से, अधिकाश देशो में कर-पद्धतियो के विकास के कारण राजस्व के करातिरिक्त साधनो में कमी होती गई, पर हाल के वर्षों में बढते हुए समाजीकरण या आर्थिक धन्धो मे राज्य के अधिक भाग लेने से करातिरिक्त राजस्वों के अनुकूल कुछ हवा बदली है। जिन देशो की अर्थव्यवस्था समूहवादी है, उनमें सार्वजनिक राजस्वो का बहुत बडा भाग, जैसा कि रूस में होता है करातिरिक्त साधनो से प्राप्त होना है। ब्रिटेन में सारे ब्रिटिश उद्योग का दसवां भाग राष्ट्रीयकृत उद्योग है। फ्रास में महायुद्ध के बाद मुख्य उद्योगो तथा ऋण-सस्थाओं के राष्ट्रीयकरण की दिशा में तेजी से प्रगति हुई है, और फ्रेंच सरकार ने कई तरह के मिश्रित धन्धो मे भाग लिया है। यहाँ यह बता देना चाहिए कि युद्धोत्तर वर्षो में वहाँ के सार्वजनिक धन्धो से वहाँ कुछ मामूली घाटा ही रहा है।

लैटिन अमेरिका के कई देशो की राजस्व-पद्धतियो में करातिरिक्त राजस्वों को कुछ महत्त्व प्राप्त है। वैदेशिक विनिमय का कारोबार, शराब तथा तम्बाकू पर एकाधिकार और सरकारी लाटरियो से बहुत काफी राजस्व आता है।

मध्यपूर्व के कई देशों को भी करातिरिक्त साधनो से बहुत काफी राजस्व प्राप्त होता है। ईरान में पैट्रोल की भुगतान तथा अफीम और तम्बाकू पर आर्थिक एकाधिकार से बहुत काफी राजस्व आता है। इसी प्रकार थाई देश मे अफीम, सुरासार, तम्बाकू इत्यादि पर आर्थिक एकाधिकार से बडी रकम प्राप्त होती है। बर्मा की सरकार को चावल और लकडी जैसी चीजो के निर्यात से बहुत अधिक राजस्व मिलते है।

भारत में, सरकार के व्यावसायिक एव औद्योगिक क्षेत्रो में भाग लेने का मुख्य कारण आर्थिक नही है। सार्वजनिक उपयोगिता की चीजें हाथ में ले ली गई है या राष्ट्रीय महत्त्व के कुछ आधारभूत उद्योग अथवा पूंजीगत सामान बनानेवाले उद्योग स्थापित किए गए है। कुछ हद तक नए उद्यम भी चालू किए गए हैं जिनका उद्देश्य यह है कि निजी औद्योगिको को उद्योग के नए क्षेत्रो में कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाए।

केन्द्रीय सरकार के उद्योग

रेलें सबसे बडा राष्ट्रीय उद्योग है। १९४९ में जो रेल सम्मेलन हुआ था, उसमें रेल विभाग के वित्तो और आम बजट के बीच का सम्बन्ध इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ या कि साधारण करदाता को रेल के धन्धो में हिस्सेदार की हैसियत प्राप्त हो गई, जिससे वह लगाई हुई पूंजी पर ४ प्रतिशत लाभाश का अधिकारी हो गया। लाभाश से सूद निकाल कर रेलो मे प्रतिवर्ष लगभग ७ करोड रुपये प्राप्त होते रहे हैं। रेल-विभाग कुल मिलाकर बहुत ही उत्पादक धन्धा रहा है जिससे राष्ट्रीय वित्त को "निरन्तर यद्यपि साधारण सहारा मिलता रहा है।" सार्वजनिक वित्त में सहायता पहुँचाने के अतिरिक्त रेल विभाग ने अपने निजी विकास के लिए भी वित्त का कुछ भाग दिया है।

डाक तथा तार विभाग के वित्त भी केन्द्रीय बजट में विलीन कर दिये गये। हाल के वर्षों में आम राजस्व-विभाग को इस विभाग का दान बराबर घटता रहा है, वह मुख्यत काम करने का खर्च बढने के कारण हुआ है। ऐसा समझा जाता है कि डाक सम्बन्धी सुविधाओ के बढ़ने मे खर्च बढा है।

अफीम के उत्पादन तथा वितरण पर केन्द्रीय सरकार का एकाधिकार है, पर इस मद मे जो आय होती है, वह बराबर घटती रही है, और वह जल्दी ही घट कर बहुत थोडी रह जायगी।

मुद्राचलन तथा टकसाल से जो राजस्व प्राप्त होता है, वह मुख्यत रिजर्व बैंक के अतिरिक्त लाभो के रूप में, विशेप कर इस बैंक मे जो सरकारी ऋण की बहुत वडी रकम है, उसके सूद तथा सिक्को के टकन के लाभो से प्राप्त होता है।

केन्द्रीय सरकार ने दूसरे व्यापारी धन्धो में जो पूंजी लगा रखी थी वह १९५१ के एक अप्रैल को ३४ करोड ५२ लाख तथा १९५३-५४ के अन्त में ५९ करोड ५८ लाख थी। इनमे कई प्रकार के उद्योग आ गये है। कई धन्धे तो ऐसे हैं जो अभी-अभी चलाये गये है, इसलिए उनके सम्बन्ध मे यह कहना कठिन है कि उनसे वित्तीय तथा अन्य परिणाम क्या निकले। इस-लिए यह बताना सम्भव नही है कि भविष्य मे सार्वजनिक राजस्व में उनका क्या दान होगा।

राज्य-सरकारो के धन्धे

राज्यो में करातिरिक्त राजस्व मुख्यत जगलात तथा सिचाईवाली पुरानी मदो से प्राप्त होते है। व्यापारी धन्धो में बिजलीवाले धन्धे तथा सडक-परिवहन योजनाएँ सबसे महत्त्वपूर्ण है। कुछ राज्यो में कई औद्योगिक धन्धे भी चला रखे है।

राज्यो मे बिजली उत्पादन तथा वितरण की पद्धति पर सार्वजनिक मिल्कियत की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है। बहुत से राज्यो में यह देखा जा रहा है कि बिजली-सम्बन्धी योजनाओ में कुछ बचत नही हो रही है।

पेप्सू और कुछ 'ग' भाग के राज्यो के अतिरिक्त सभी राज्यो मे सड़क-परिवहन योज-नाएँ चालू है। इन योजनाओ के हिसाब सर्वत्र एक ढग पर नही रखे जाते। अब तक राज्य ने अपना परिवहन-धधा मुसाफिरो के यातायात तक ही सीमित रखा है, केवल दो या तीन राज्यो ने माल परिवहन का काम उठाया है। अभी हाल में ही योजना आयोग ने राज्य सरकारो को यह हिदायत दी है कि वह द्वितीय पचवर्षीय योजना के युग में माल-परिवहन का धधा न उठावे।

कुछ राज्य, विशेपकर मैसूर, तिरुवाकुर-कोचीन, हैदराबाद, मद्रास और मध्य प्रदेश उद्योग-धधो की स्थापना में क्रियाशील रहे, पर केवल मैसूर और तिरुवाकुर कोचीन को ही इन उद्योगो से अपने राजस्व में अच्छी रकम मिलने में सहायता मिली। सार्वजनिक धधो की पूंजी का एक बड़ा भाग सूद पर लिये गये कर्जो से प्राप्त होता है, इसलिए ऐसे धधो की सूद देने की जिम्मेदारी साधारणतया बहुत बडी होती है। इसी कारण निजी धधो के मुकाबले में उनकी शुद्ध आय कम होती है।

करातिरिक्त राजस्व भारतीय अर्थव्यवस्था में, विशेपकर, युद्धोत्तर तथा स्वतत्रता के बाद के युग मे अधिक महत्त्वपूर्ण होते जा रहे है। कई धधे ऐसे है जो अभी नये ही है और अधूरे हैं। इसलिए सार्वजनिक राजस्व में उनका क्या भाग होगा, यानी उसमें उनसे कितनी बढ़ती होगी, इस पर अभी कोई राय नही दी जा सकती।

करातिरिक्त राजस्व

समस्याएँ और नीति-सम्बन्धी विचार

राजस्व अधिक से अधिक बढने की दृष्टि से मूल्य-सम्बन्धी नीतियो पर विचार करना कुछ महत्त्वपूर्ण है इसमें सन्देह नहीं। रेल-विभाग किराए की वसूली के बारे में जिस नीति का अनुसरण करता है, उसका आधार "आवश्यक रूप से यही नही है कि यातायात की वस्तु या व्यक्ति किस हद तक भार सह सकता है, बल्कि रेलो के अपने कार्यसचालन की लागत, और आवश्यक विकास को देखते हुए," तथा इस बात का खयाल रखते हुए कि खेती, उद्योग-धधा, व्यापार और आम जनता के हितो की दृष्टि से जो उचित है। प्रत्येक उद्योग की मूल्य-सम्बन्धी नीति भिन्न है, पर आमतौर पर सरकार ने यह सिद्धान्त मान लिया है कि सरकारी कारखाने जहाँ तक हो सके व्यापारी सिद्धातो को देखते हुए मूल्य निर्दिष्ट करें। बिजली की दर-सम्बन्धी नीतियाँ सर्वत्र एक सी नही है, पर आम नीति यह रही है कि टैरिफ इस प्रकार से निर्दिष्ट हो जिसमें प्रतिशोधन योग्य सारी लागत आ जाय, और जिसमे बिजली के उत्पादन, उसके दूर प्रेषण तथा वितरण, और कारखाना चालू रखने का व्यय एव सूद तथा अवमूल्यनवाला खर्च निकल आवे। औद्योगिक खपत के लिए जो टैरिफ है, वह साधारणतया घरेलू खपत के टैरिफ से कम है। सडक-परिहन सेवाओ मे अधिकाश राज्यो की नीति यह रही है कि किराये तथा महसूल इस तरह निर्दिष्ट किये जायँ कि उन्हे चालू रखने, अवमूल्यन तथा सूद का खर्च निकल आये और सरकार के लिए कुछ मामूली मुनाफा छूट जाये।

राज्य सरकारो की व्यापारिक तथा औद्योगिक सस्थाओ की मूल्य-सम्बन्धी नीति हर समय विशुद्ध व्यापारिक सिद्धान्तो पर ही आधारित रहती हो ऐसी बात नही।

रेल की दरों तथा महसूलो के प्रश्न पर विचार करते हुए आयोग ने किरायो की आम सतह के परिचालक सिद्धान्तो से उन सिद्धान्तो को भिन्न कर दिया है जो महसूलो के परिचालक है, क्योंकि उनके मतानुसार "महसूलो का आर्थिक विकास से अधिक सीधा सम्बन्ध है।" आयोग इस बात को मानता है कि कुल मिलाकर महसूल की दरें इस प्रकार निर्दिष्ट होनी चाहिएँ कि लागत तथा आवश्यक विकास के खर्च के अतिरिक्त कोई मुनाफा न छूटे। रेल तथा अन्य सम्बद्ध मत्रालयो और योजना आयोग की एक समिति बनाई जाये, जो औद्योगिक तथा आर्थिक विकास के हितों और रेल विकास के लिए आवश्यक साधनो को देखते हुए महसूल की दरों सम्बन्धी उपयुक्त नीति का निर्णय करे।

जहाँ तक रेल के किरायो का सम्बन्ध है, आयोग सैद्धान्तिक रूप से इस सम्बन्ध में कोई आपत्तिजनक बात नहीं देखता कि भ्रमण पर कर लगाया जाय, यद्यपि साथ ही उसका कहना है कि राज्य की एकाविकारमूलक शक्ति का इस प्रकार इस्तेमाल नही करना चाहिए कि केवल मुनाफे अधिक से अधिक करने के लिए किरायो का निर्णय हो। जापान, तुर्की, स्पेन तथा सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कुछ राज्यो में भ्रमण के कुछ रूपो पर कर वसूल किया जाता है। भ्रमण पर कर लगाना इस समय चालू बहुत से करो से किसी प्रकार अधिक प्रतिक्रियात्मक नही कहा जा सकता है, और जब राजस्व प्राप्त करने के उपाय

के रूप में अगली बार रेल के किरायो और दरो पर पुनर्विचार हो, तो इस मद पर विचार किया जा सकता है।

रेल के किरायो और महसूलों पर कर के सम्बन्ध मे आयोग इस बात पर सहमत नहीं है कि इसका संविधान मे रखा जाना कोई दकियानूसी बात है और भविष्य में इसका कोई सम्भव प्रयोग नही हो सकता। पर अभी वे ऐसे कर के लगाने की सिफारिश नही करते जिसका लाभ राज्यो को होगा, रेल-विभाग को नही।

डाक-पद्धति के सम्बन्ध में आयोग का कहना है कि यह "व्यापक रूप से मान लिया गया है कि यह सार्वजनिक धधा है जिसमें सेवा ही कसौटी है न कि राजस्व की सफलता।" इसकी दरे ऐसी होनी चाहिए जैसी कि अब है, यानी उनसे खर्च निकल आये या बहुत ही मामूली लाभ हो।

दूसरे सार्वजनिक धधो की मूल्य-सम्बन्धी नीतियो पर विचार करते हुए धधो मे दो भाग किये जा सकते है, एक तो वे धधे जो प्रतियोगितामूलक क्षेत्र मे काम करते है, और दूसरे वे जो एकाधिकारमूलक या अर्ध-एकाधिकारमूलक परिस्थितियो में काम करते है। जो धधे प्रथम श्रेणी मे आते है, उनके लिए सार्वजनिक लाभ के नाम पर कोई ऐसी नीति अनुसरण करने का प्रश्न नही उठता जिससे कि वे अधिक लाभवाली मूल्य-नीति से हटकर काम करें। रहे दूसरी श्रेणी के धधे, सो वे इस ढग पर काम करें कि उनके उत्पादन का खर्च निकल आवे; अवमूल्यन की उपयुक्त व्यवस्था हो और पूंजी पर युक्तिसगत आय हो। जहाँ तक हो सके राजकीय सहायता देकर मूल्यो को घटाने की नीति से बचना चाहिए। जब जिन्स तथा ऐसी सेवाओ पर कर लगाये जाते है, जो उसी प्रकार से आधारभूत या आवश्यकीय है जैसे सरकारी धधो की तैयार वस्तुएँ, तो राज्य को "यह नही समझना चाहिए कि वह उपयुक्त मूल्य-नीति के द्वारा एकाधिकारमूलक या अर्धएकाधिकारमूलक शक्तियो के जरिये अधिकतर राजस्व वसूल करने से बचे।"

आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे राज्य को अपने उपक्रमण तथा उद्यम द्वारा एक बहुत क्रान्तिकारी भाग लेना है, और योजना के द्वितीय पर्याय मे सार्वजनिक धधो मे यह आशा की जाती है कि इससे भी अधिक व्यापक रूप से कार्य करें। "किसी आगे बढे हुए देश के लिए 'न मुनाफा न घाटा' वाली नीति सार्वजनिक उपयोगिता की वस्तुओ के लिए उपयुक्त हो सकती है, और शायद यहाँ के कुछ सार्वजनिक धधो के प्रारम्भिक सोपानो में यही सर्वोत्तम हो, पर हम सार्वजनिक धधो के दीर्घकालीन लक्ष्य के रूप में या भारत में अधिकाश राजकीय धधो के लिए स्थायी नीति के रूप में इसी नीति की सिफारिश नही करते।"

विभागीय रूप से व्यवस्थित औद्योगिक या व्यापारी कम्पनियो को इस आधार पर आय-कर से मुक्त रखने पर आपत्ति की गई है कि इससे प्रतियोगितामूलक क्षमता में कृत्रिम रूप से वृद्धि होती है या इससे कार्यसंचालन के परिणामो को बेहतर रोशनी मे दिखाया जाता है। इन तर्कों में कुछ जोर अवश्य है, पर वर्तमान परिस्थिति में किसी प्रकार के परिवर्तन की सिफारिश नही की गई है। विभागीय धधो के वित्त पर व्यापक नियन्त्रण है,

और उस विशेष धधे की जरूरतो तथा तथ्यो के व्योरेवार तथा सावधानीपूर्ण विवेचन पर ही यह तय किया जाता है कि वह धधा आम राजस्व में क्या दान दे। उनके मुनाफो पर आय-कर लगाना अनावश्यक और कुल मिलाकर कम सतोपजनक कहा जा सकता है। सरकारी धधे अधिकाश क्षेत्र में एकाधिकारमूलक परिस्थितियो में काम करते हैं, इसलिए निजी धधे के साथ उनकी समानता स्थापित करने का प्रश्न नही उठता। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में इस प्रकार के धधे सरकार के मामूली कार्यों के अग समझे जा सकते हैं। यदि सरकार के कार्यों के सम्वन्ध में क्रान्तिकारी तथा गतिशील विचार लिया जाये, तो उनके कार्यों का विस्तार होना स्वाभाविक है। राज्य के क्षेत्र में जो राजकीय धधे निजी धधो के साथ प्रतियोगिता में काम कर रहे हैं, उनसे अधिक मुनाफे की सम्भावना नही हो सकती, और कुल मिलाकर राज्य सरकारों के व्यापारी तथा अन्य व्यवसाय-सम्वन्धी कार्यो पर कर लगाने के सम्बन्ध में इस समय कानून वनाने की कोई जरूरत नही मालूम होती। पर सारे सार्वजनिक धन्धो द्वारा उपयुक्त और सही हिसाव रखना, हिसाव की जाँच कराना तथा वित्तीय प्रतिवेदन उपस्थित करनाअनिवार्य है। सव सरकारी धधो में, जिनमें विभागीय रूपसे चलाये हुए धधे भी आ जाते हैं, इस वात की अनुविहित व्यवस्था भी होनी चाहिए कि वे सही व्यावसायिक प्रतिमानो के अनुसार हिसाब-किताव रखें। आयोग का कहना है—"हमारा सुझाव यह है कि कम्प्ट्रोलर और आडीटर जनरल सार्वजनिक धधो के विभिन्न वर्गो के लिए उपयुक्त प्रतिमानीभूत स्वरूप विकसित करने की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करे।" सार्वजनिक धधों के कार्य की वार्पिक रिपोर्ट, बजट तथा साथ ही साथ परीक्षित हिसाव विधान-मडल के सामने रखे जायें, तथा युक्तिसगत शीघ्रता के साथ प्रकाशित हो। यह कई दृष्टियो से, जिसमें अ र्थिक दृष्टि भी आती है, जरूरी है कि सरकारी धधो के कार्यो पर, विशेषकर एक ऐसे देश में जहाँ सरकारी नीति यह है कि अर्थ-व्यवस्था के सार्वजनिक भाग को विकसित तथा विस्तृत किया जाये, आलोकप्राप्त जनमत की तेज रोशनी डाली जाय। हाल के वर्पों में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के साथ सरकारी धधो की व्यवस्था, परिचालन तथा नियन्त्रण के सही तरीके निकालने का प्रश्न सामने आया है। सगठन तथा व्यवस्था के सही तरीकों की तलाश अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है, और आयोग ने इस प्रश्न पर उतना अधिक विचार नही किया है कि सगठन के उन विभिन्न स्वरूपो का सही मूल्याकन किया जा सके जो सार्वजनिक धधो को चलाने के लिए स्वीकृत हुए हैं।

कुछ वाहर के देशो के तजुर्वे पर यह सुझाव दिया गया है कि अतिरिक्त राजस्व के लिए कुछ चुनी हुई जिन्सो के व्यापार में राज्य भाग ले सकता है। कुछ समय पहले एक कमेटी ने इस विषय पर विचार किया था। इस प्रकार से राज्य के द्वारा किये गये व्यापार में राजस्व की दृष्टि से थोडे अर्से में ही बहुत अधिक लाभ की आशा नही की जा सकती। व्यापार में राज्य के भाग लेने से साथ ही साथ यह भी प्रश्न उठता है कि सरकार के पास इस समय जो कर्मचारीवर्ग है, वह कहाँ तक इस कार्य के लिए उपयुक्त तथा यथेष्ट हैं। राज्य के द्वारा व्यापार के विस्तार के लिए सवमे उपयुक्त समय वही है, जब आमतौर पर

दाम ऊपर की ओर जा रहे हो। इसलिए वर्तमान समय इस क्षेत्र मे और अधिक पग बढाने के उपयुक्त नही मालूम होता।

कई देशो में आर्थिक एकाधिकार का राजस्व बढाने में उपयोग किया गया है और तम्वाकू, दियासलाई तथा नमक जैसी चीजे इस उद्देश्य से चुनी गई है। उत्पादन का केन्द्रीकरण, उत्पादित द्रव्य का स्तरस्थिरीकरण, शोध के सम्वन्ध मे अधिक सुविधाएँ, योजनात्मक उत्पादन, वितरण की लागत में वचत, इन वातो से इस प्रकार के एकाधिकार को लाभ पहुँचता है। इसके विपरीत विशेषज्ञ कर्मचारी वर्ग का अभाव, माल की किस्म के घटिया होने की सभावना तथा प्रवन्ध में फजूलखर्ची एकाधिकार की सफलता में वाधक होती है। पर उत्पाद-शुल्को के विकल्प के रूप में आर्थिक एकाधिकार से राजस्व मे वृद्धि की सम्भावनाएँ हो सकती है। आयोग की सिफारिश यह है कि शीघ्र से शीघ्र आर्थिक एकाधिकार स्थापित करने की सम्भावनाओ पर एक विशेषज्ञ समिति द्वारा जाँच कराई जाये, जिससे यह पता लगे कि इससे कहाँ तक सार्वजनिक राजस्व वढ सकता है, वेकारी घट सकती है तथा योजनात्मक विकास की दृष्टि से इसकी आम सम्भावनाएँ क्या है?

मे प्राप्त आय की कूताई पिछले वर्ष की आय के आधार पर होती थी। १९१८ में आय के सब तरह के साधनों के लिए निर्धारण का वर्ष ही आधार हो गया। १९२२ में यह तरीका इस प्रकार और भी सरल कर दिया गया कि प्रत्येक वर्ष के कर निर्धारण का आधार पिछले वर्ष की आय माना जाने लगा। बाद को करदाता को यह सुविधा दी गई कि वह अपनी आय के विभिन्न जरियो के लिए विभिन्न वर्षो को "पिछला वर्ष" करके दिखा सकता है। आरम्भ से ही शुद्ध आय पर ही आयकर लिया जाता रहा है। पर १९१८ तक शुद्ध आय के हिसाब लगाने के लिए कोई विशेष व्यवस्था नही थी, और इस सम्बन्ध में निष्पादक अनुदेशों से ही नियमन होता था। १९१८ मे कानून में इस सम्बन्ध में विशिष्ट व्यवस्था की गई कि किस हद तक और किन मामलो में व्यापारी छूट मिल सकती है।

अवमूल्यन सम्बन्धी व्यवस्था में भी समय समय पर परिवर्तन होता रहा। १८८६ के आयकर अधिनियम मे अवमूल्यन के लिए छूट के सम्बन्ध में कोई विशेष व्यवस्था नही थी, और निष्पादक आदेशो से, जो न तो एक रूप होते थे और न व्यापक, इसका नियमन होता था। १९१८ के अधिनियम में सरल रेखा के तरीके से एक अवमूल्यन सम्बन्धी व्यवस्था रखी गई। पहली बार १९२२ में अवमूल्यन सम्बन्धी दरो को एक अनुविहित स्वरूप प्राप्त हुआ। १९३९ मे इन दरो पर पुन: विचार किया गया, जबकि सरल रेखावाले तरीके के स्थान पर लिखे हुए (रिटन डाउन) वाला तरीका प्रवर्तित किया गया। १९४०-४१ वाले निर्धारण वर्ष से कानून का और प्रसारण किया गया तथा विशेष छूटों की व्यवस्था की गई।

१९२२ के पहले हानियो को आय के बनाम नही दिखाया जा सकता था पर १९२२ के आयकर अधिनियम ने यह व्यवस्था कर दी कि यदि एक-सूत्र से आय के बनाम हानि हुई है तो उसे उसी वर्ष में दूसरे सूत्र से आय के बनाम दिखाया जा सकेगा। १९३९ में अप्रचूशित हानियो को ६ साल तक आगे दिखाने की तथा उसी व्यापार में मुनाफो के बनाम दिखाने की छूट दी गई। १९५३ में सट्टेबाजीमूलक कार्य-कलाप से जो हानियाँ हुई, उन्हें केवल उसी व्यापार के मुनाफो के विरुद्ध दिखाने की अनुमति दी गई।

विशेष परिस्थितियो में कर के सम्बन्ध मे कमी तथा छूट और ऋण दिए गए। कभी तो कर की दर का आधार ही घटा दिया गया, और कभी ऐसी बाते कर दी गई जिससे कि कर की दर नरम हो जाये। महत्त्वपूर्ण करमुक्तियों में धार्मिक तथा धर्मार्थ ट्रस्टो और स्थानीय सस्थाओं की आय का उल्लेख किया जा सकता है, जिनकी व्यावसायिक आयो पर विशेष दर से आयकर लिया जाता था।

सही अर्थो मे भारतीय आयकर में श्रमभाजन १९१६ में प्रवर्तित किया गया जब आयो को विभिन्न कोष्ठको में बाँटकर उन पर कर की विभिन्न आठ दरें निश्चत की गई। १९३९ के पहले आयकर क्रम दर से तथा अधिकर खंड दर (स्लैब) से लगाया जाता था। पर १९३९ मे स्टेप दर को बदल कर खंड दर कर दिया गया। इसके बाद और भी अधिक श्रमभाजन इस तरह किया गया कि १५०० रुपये तक की आय को आयकरमुक्त

जिल्द २

केन्द्रीय कर

प्रतिवेदन की दूसरी जिल्द मे आयोग ने केन्द्रीय करो पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। पहले प्रत्यक्ष करो पर फिर परोक्ष करो पर विचार किया गया है।

आय-कर

आधुनिक रूप में आयकर पहले-पहल १८६० ई० में लगाया गया था। इस कर का अन्तिम रूप १८८६ में निश्चित हुआ, और इसका प्रथम विधिवत् कानून उसी साल बना।

पिछले लगभग ७० सालो मे कर के ढांचे मे कई परिवर्तन हुए। बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियाँ, अतिरिक्त राजस्वो की आवश्यकता, अदालतो के निर्णय, तथा विभिन्न जांच समितियो की सिफारिशो ने अपने अपने ढग से इस कर के ढाँचे के निर्माण में हाथ बटाया है। भारतीय परिस्थितियों में खप जाने की प्रक्रिया मे यहाँ के आयकर में कुछ अपनी विशेषताएँ उत्पन्न हो गई है।

पहले किसी ऐसी आय पर ही कर लगता था, जो किसी भारतवासी को भारत में होती हो या प्राप्त हो। भारत में न रहनेवाले व्यक्ति की उस आय पर भी कर लगता था जो उसे भारत मे रहनेवाले अपने एर्जेट द्वारा प्राप्त होती हो। १९३३ की पहली अप्रैल से विदेशी आय पर कर लगाने के आधार को विस्तृत करके सब साधनो से प्राप्त होनेवाली आय पर कर लगा दिया गया। १९३९ में पहली बार "निवासी" "अनिवासी" तथा "साधारण रूप से अनिवासी" शब्दो की कानूनी व्याख्या की गई। इस प्रकार से एक निवासी की सारी आय, वह चाहे भारत में होती हो या ारत से बाहर, कर-योग्य करार दी गई।

कानून में कई तरह की आय करमुक्त या कर-योग्य करार दी गई। प्रथम वर्ग में खेतीवाली आय आ जाती है जो १८८६ से करमुक्त रही। कम्पनियो के द्वारा कुछ ढग के ऐसे वितरण जिन्हे अदालतो ने पूंजीवाली श्रेणी का करार दिया था कानून के अनुसार कर योग्य बना दिये गये। खेतीवाली आय के सम्बन्ध में हमारे यहाँ अब तक जो व्यवहार रहा, वह भारतीय आय-कर-पद्धति की एक विशेषता है।

आय के सम्बन्ध में जो विशेषता आमतौर पर मान ली गई है वह यह है कि वह किसी हद तक नियमित रूप से प्राप्त होनी चाहिए। १९१८ में कुछ अनावर्तक तथा आकस्मिक आय पर भी आयकर लागू कर दिया गया। १९४६ में जो पूंजी-मुनाफा-कर प्रवर्तित हुआ, उसमें भी कुछ फेर बदल के साथ नियमितता की धारणा सामने रखी गई।

१९१८ तक वेतनो तथा प्रतिभूतियो पर सूद का निधारण, निर्धारणवाले वर्ष की आय के आधार पर किया जाता था, जब कि कम्पनियो के मुनाफे तथा दूसरे साधनो

से प्राप्त आय की कूताई पिछले वर्ष की आय के आधार पर होती थी। १९१८ में आय के सब तरह के साधनो के लिए निर्धारण का वर्ष ही आधार हो गया। १९२२ में यह तरीका इस प्रकार और भी सरल कर दिया गया कि प्रत्येक वर्ष के कर निर्धारण का आधार पिछले वर्ष की आय माना जाने लगा। बाद को करदाता को यह सुविधा दी गई कि वह अपनी आय के विभिन्न जरियो के लिए विभिन्न वर्षो को "पिछला वर्ष" करके दिखा सकता है। आरम्भ से ही शुद्ध आय पर ही आयकर लिया जाता रहा है। पर १९१८ तक शुद्ध आय के हिसाव लगाने के लिए कोई विशेष व्यवस्था नही थी, और इस सम्बन्ध में निष्पादक अनुदेशों से ही नियमन होता था। १९१८ में कानून मे इस सम्बन्ध मे विशिष्ट व्यवस्था की गई कि किस हद तक और किन मामलो में व्यापारी छूट मिल सकती है।

अवमूल्यन सम्बन्धी व्यवस्था मे भी समय समय पर परिवर्तन होता रहा। १८८६ के आयकर अधिनियम मे अवमूल्यन के लिए छूट के सम्बन्ध में कोई विशेष व्यवस्था नही थी, और निष्पादक आदेशो से, जो न तो एक रूप होते थे और न व्यापक, इसका नियमन होता था। १९१८ के अधिनियम में सरल रेखा के तरीके से एक अवमूल्यन सम्बन्धी व्यवस्था रखी गई। पहली बार १९२२ मे अवमूल्यन सम्बन्धी दरो को एक अनुविहित स्वरूप प्राप्त हुआ। १९३९ मे इन दरो पर पुन विचार किया गया, जबकि सरल रेखावाले तरीके के स्थान पर लिखे हुए (रिटन डाउन) वाला तरीका प्रवर्तित किया गया। १९४०-४१ वाले निर्धारण वर्ष से कानून का और प्रसारण किया गया तथा विशेष छूटो की व्यवस्था की गई।

१९२२ के पहले हानियो को आय के वनाम नही दिखाया जा सकता था पर १९२२ के आयकर अधिनियम ने यह व्यवस्था कर दी कि यदि एक-सूत्र से आय के वनाम हानि हुई है तो उसे उसी वर्ष में दूसरे सूत्र से आय के वनाम दिखाया जा सकेगा। १९३९ में अप्रचूणित हानियो को ६ साल तक आगे दिखाने की तथा उसी व्यापार में मुनाफो के वनाम दिखाने की छूट दी गई। १९५३ में सट्टेवाजीमूलक कार्य-कलाप से जो हानियाँ हुईं, उन्हे केवल उसी व्यापार के मुनाफो के विरुद्ध दिखाने की अनुमति दी गई।

विशेष परिस्थितियो में कर के सम्बन्ध में कमी तथा छूट और ऋण दिए गए। कभी तो कर की दर का आधार ही घटा दिया गया, और कभी ऐसी वातें कर दी गईं जिनसे कि कर की दर नरम हो जाये। महत्त्वपूर्ण करमुक्तियो में धार्मिक तथा धर्मार्थ ट्रस्टो और स्थानीय संस्थाओ की आय का उल्लेख किया जा सकता है, जिनकी व्यावसायिक आयो पर विशेष दर से आयकर लिया जाता था।

सही अर्थों में भारतीय आयकर में क्रमभाजन १९१६ मे प्रवर्तित किया गया जब आयो को विभिन्न कोष्ठको में बांटकर उन पर कर की विभिन्न आठ दरें निश्चित की गईं। १९३९ के पहले आयकर क्रम दर से तथा अधिकर स्लैड दर (स्लैब) से लगाया जाता था। पर १९३९ में स्टेप दर को वदल कर स्लैड दर कर दिया गया। इसके बाद और भी अधिक क्रमभाजन इस तरह किया गया कि १५०० रुपये तक की आय को आयकरमुक्त

बना दिया गया, तथा इसके बाद की आयो को क्रमश वृद्धिशील आयकर तथा अधिकर के योग्य करार दिया गया। १९३९ से आयकर के खड अपरिवर्तित रहे हैं और अधिकर के खड तमय समय पर बदले जाते रहे।

१९२२ और १९४७ के बीच, सिवा उन सालो के जब कि सीमाएँ घटा दी गई थी, २००० रुपये से नीचे की कुल आमदनीवाले लोग कर से बरी थे। १९४७ से कर मुक्ति की सीमा को धीरे धीरे बढाकर व्यक्तियो के लिए ४२०० रुपये और हिन्दू अविभक्त परिवारो के लिए, जो कुछ शर्तें पूरी करते हों, इस सख्या की दुगनी कर दी गयी।

१८८६ से, कोई व्यक्ति अपने जीवन बीमा या अपनी स्त्री के जीवन बीमा के लिए जो किस्तें देता है, उन्हें करमुक्त समझा जाता है। निर्वाहनिधि (प्राविडेंड फन्ड) के लिए निर्वाह-निधि अधिनियम के अनुसार जो भी अशदान दिये जाते हैं, वे १९१८ में करमुक्त कर दिये गये। इस सम्बन्ध में करमुक्ति की कुल सीमा कुल आय की १/६ मान ली गयी, और १९३९ में इस करमुक्ति की मौद्रिक सीमा ६००० रुपये मान ली गई। करमुक्ति का स्वरूप यह था कि कुल आय पर जो औसत कर की दर लागू थी, उसके अनुसार आयकर पर छूट दी जाती थी न कि अधिकर पर।

१९४५ में उपार्जित तथा अनुपार्जित आय में फर्क कर दिया गया और वह तब से चलता रहा, हाँ समय समय पर करमुक्ति की रकम में परिवर्तन होते रहे। १९४८ में, स्वीकृत धार्मिक और धर्मार्थ सस्थाओ को दिये हुए दानो के सम्बन्ध में कुछ हदो के अन्दर छूट दी जाने लगी।

भारतीय कर-पद्धति में परिवार के अधिदेयों के स्थान की एक करमुक्त खड के द्वारा पूर्ति करने की चेष्टा की गई, जो सब करदाताओ के लिए उपलब्ध था।

१९२८ से पहले अनिवासियो के लिए कर की दरें अनिवासी की उस आय पर निर्भर थी जो भारत में कर योग्य थी। १९२८ में कानून का इस प्रकार से सशोधन कर दिया गया कि अनिवासियो को कम्पनी के लाभाशो पर जो रिफड तथा सिक्यूरिटियो पर जो सूद मिलता था, उसे बन्द कर दिया गया। पर इस सम्बन्ध में उन अनिवासियो को अपवाद मान लिया गया, जो ब्रिटिश प्रजा थे या किसी भारतीय देशी रियासत की प्रजा थे। १९३९ में इस विशेष व्यवहार के अन्तर्निहित सिद्धान्त को अनिवासियो की सारी आय पर कर लगाने के लिए विस्तृत कर दिया गया। फिर भी अनिवासी ब्रिटिश प्रजा और भारतीय रियासतो की प्रजा तथा दूसरे अनिवासियो के बीच एक फर्क रखा गया। १९५१ में यह फर्क समाप्त कर दिया गया।

कर लगाने की दृष्टि से कम्पनियो को सदा ही विशिष्ट सस्थाओ के रूप में माना जाता रहा है। १८८६ में कम्पनियो के शुद्ध मुनाफो पर समान दर से कर लगता था, पर १९१६ में इसमें क्रमिकता प्रवर्तित की गई। १९३९ में एक खास परिवर्तन इस सम्बन्ध में यह कर दिया गया कि अधिकर की करमुक्ति सम्बन्धी सीमा को बिलकुल हटा दिया गया। पर १९४८ में छोटी कम्पनियो के अनुकूल भेदकरण का सिद्धान्त लागू कर दिया गया। १३३९ में कम्प-

नियो के हिस्सेदारों के कर-निर्धारण में लाभाशो पर कर लगाने के तरीके में परिवर्तन कर दिया गया। लाभाशो की कुल रकम पर वैयक्तिक आय पर लागू दर लगा दी गई और कम्पनी के द्वारा दिये गये आनुपातिक आयकर के लिए उधार देने की अनुमति दी गई।

कम्पनियो की आय पर कर-निर्धारण की एक विशेषता यह थी कि कुछ ऐसे नियम बनाये गये जिनके अनुसार कम्पनियो के ऐसे मुनाफो के एक विशेष भाग को, जिसमें जनता का कोई विशेष स्वार्थ नही था, बाँटना जरूरी हो गया। यह व्यवस्था पहले-पहल १९३० में की गई और १९३९ मे यह निश्चित किया गया कि कर निकाल कर मुनाफो का कम मे कम ६० प्रतिशत अनिवार्य रूप से बांट दिया जायें।

१९१८ के पहले जीवन बीमा कम्पनियो के मुनाफो के निर्णय के लिए कोई विशेष नियम नही था। पहले पहल १९१८ तथा १९२२ के अधिनियमो के अनुसार अनुविहित नियम बनाये गए, और १९३९ के आयकर सशोधन अधिनियम के अनुसार कर निर्धारण का तरीका ही सम्पूर्ण रूप मे बदल दिया गया।

१९१९ मे पहले पहल अतिरिक्त मुनाफा शुल्क लगाया गया, पर केवल एक साल तक जारी रहा। द्वितीय विश्व-महायुद्ध मे इसका प्रयोग अधिक विस्तार के साथ हुआ। पहले पहल इसकी दर प्रमाप मुनाफो के अतिरिक्त मुनाफो पर ५० प्रतिशत रखी गयी थी पर बाद को इसे बढाकर ६६$\frac{2}{3}$ प्रतिशत कर दिया गया। १९४२ मे एक जमावाली योजना चालू की गई, और वह १९४३ की पहली जनवरी से अनिवार्य कर दी गई।

१९४६ मे जब अतिरिक्त मुनाफा कर हटा लिया गया, तो उसकी जगह पर एक सरलतर व्यापार मुनाफा कर उन मुनाफो पर मुद्रास्फीति निरोधक उपाय के रूप मे लगाया गया जो १९४६ के १ अप्रैल तथा १९४९ के ३१ मार्च के बीच प्राप्त किये गये थे। १९४९ मे यह समाप्त कर दिया गया, और तब से इसे पुनर्जीवित करने का कोई प्रस्ताव नही आया।

आयकर राजस्व के अत्यन्त लचीले साधनो मे मे एक है, और इसका कुछ अश राज्य-सरकारो में बांट दिया जाता है। १९१९ के पहले आयकर एक बँटी हुई मद थी, तब से इसे सम्पूर्ण रूप से केन्द्रीय मद मे डाल दिया गया। प्रक्रामण-नियम के अधीन प्रान्तो को एक सीमित भाग दिया गया था। १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार कर से वसूल की गई शुद्ध रकम का एक हिस्सा प्रान्तो को दिया जाता था, और यह अनुपात एक आर्डर-इन-कौंसिल द्वारा निर्दिष्ट होता था। सविधान के अनुसार आयकर एक विभक्त मद के रूप में जारी रहा, और वित्त आयोग की सिफारिशो पर विचार करने के बाद इसके वितरण का सूत्र निर्णीत हुआ।

आयकर एकत्र करने के लिए प्रशासनीय सगठन राज्यो के राजस्व प्रशासन के भाग के रूप मे विकसित हुआ है। १९२२ में एक अलग केन्द्रीय विभाग खोला गया जो आंचलिक आधार पर नियुक्त आयकर आयुक्तो के जरिये से काम करता था, और उनके काम में निरीक्षक उप-आयुक्त तथा अन्य आयकर कर्मचारी हाथ बटाते थे। अपील के लिए भी प्रशासन मे बराबर व्यवस्था का होना एक विशेषता थी। १९३९ में अपील सम्बन्धी सगठन

बिलकुल बदल दिया गया। आयकर अधिकारियों की आज्ञाओ के विरुद्ध अपील की सुनाई के लिए अपील सुननेवाले उप-आयुक्तो का एक अलग ही कर्मचारी वर्ग बना दिया गया। तथ्य सम्बन्धी प्रश्नो पर इसके फैसले अन्तिम थे, पर कानून के प्रश्नो पर उच्च अदालत में अपील की जा सकती थी।

भारतीय करपद्धति में आरम्भ से ही वेतन तथा सिक्योरिटियो पर सूद मिलने के स्थान ही से कर घटा देने का सिद्धान्त चालू था। सग्रह तथा प्राप्ति की प्रणाली बराबर वैसी ही रही। अभी हाल ही में एक नई बात यह हुई कि पेशगी कर के भुगतान की एक योजना चालू की गई फिर भी बहुत सा कर वसूल करना अभी तक बाकी पडा है। १९४८ में आयकर पड-ताल आयोग ने आयकर कानून की पूर्णता पर कर अपवचन तथा कर परिहरण की दृष्टि से विचार किया और अपना प्रतिवेदन पेश किया। इस आयोग की कुछ सिफारिशो को १९५३ कानून का रूप दिया गया पर कुछ को अभी कार्यान्वित करना बाकी है।

भारतीय आयकर पद्धति की एक ताजी विशेषता यह है कि उसमें पूंजी-निर्माण और आर्थिक विकास के लिए उद्दीपको को सम्मिलित किया गया। उदाहरणस्वरूप यह बातें बताई जा सकती है—कम्पनियो के अवितरित मुनाफो पर छूट, कुछ हालतो में कुछ नई कम्पनियो के मुनाफो को कर से मुक्ति, और इसी प्रकार कुछ हालतो में दूसरी कम्पनियो में किसी कम्पनी के जो हिस्से होते हैं, उनसे उसे जो लाभाश मिलता है, उस पर उसे निगम कर के भुगतान से मुक्ति।

१८८६-८७ में आयकर से १ करोड ३७ लाख रुपये की शुद्ध वसूली हुई थी, वह बढकर १९४४-४५ में १९१ करोड रुपये हो गयी। कर देने के आधार का विस्तार, १९३९ मे खड दरों का प्रवर्तन, द्वितीय महायुद्ध में दरो की अत्यधिक वृद्धि, साथ ही साथ करयोग्य आयो की वृद्धि, जो आशिक रूप से मुद्रास्फीति तथा आशिक रूप से आर्थिक विकास के कारण हुई—ये कुछ कारण हैं जिनसे पता लगता है कि आयकर में इतने रुपये क्यो वसूल हुए। १९०४-०५ में जहाँ आयकर देनेवाले व्यक्तियो तथा सस्थाओ की सख्या २,४३,००० थी, वहाँ १९५२-५३ के अन्त में ९ लाख हो गई। १८८६-८७ में कुल जितनी आय पर कर लिया गया था, वह ३३ करोड रुपये थी, पर १९४६-४७ में वह ४८३ करोड रुपये तक पहुँच गई। १९४८-४९ और १९५२-५३ के बीच कर योग्य आय ५७१ करोड रुपये से बढकर ७१० करोड रुपये हो गई। अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों में कर युक्त आय के बटवारे के आँकडो पर विचार करने से ज्ञात हुआ है कि सगठन का कम्पनीवाला तरीका महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है, स्वामित्वाधिकार वाले व्यवसाय का महत्त्व जारी है तथा व्यवसाय के क्षेत्र में व्यापारी सस्थाओ की प्रधानता है जिसका अर्थ यह है कि उत्पादक तथा औद्योगिक विकास पिछडा हुआ है।

इसके बाद आयोग ने आय पर कर के विभिन्न पहलुओ पर, उनकी समस्याओ, आवश्यक परिवर्तनो, करापवचन को दूर करने तथा प्रशासकीय सगठन को सुधारने के विषय में विस्तार से विचार किया। प्रत्येक पहलू पर ब्योरे से विचार किया गया। उन्नति के लिए विभिन्न सुझावो का परीक्षण किया गया, और सिफारिशें की गई हैं। प्रतिवेदन के अलग-अलग

अध्यायों मे करयोग्यता के आधार, करयोग्य आय, अवमूल्यन सम्बन्धी छूटें, खान उद्योग पर कर, विकास कार्य के उद्दीपक, करयोग्य विशेष इकाइयाँ तथा प्राप्तियाँ, आय कर की दर का ढाँचा, कर अपवचन तथा कर परिहरण और प्रशासकीय सगठन पर विचार किया गया है।

करयोग्यता का आधार

कर देने के आधार के सम्बन्ध मे आयोग ने यह सिफारिश की है कि वैदेशिक आय के विप्रेषणो पर कुछ छूट देना आवश्यक है। उनका सुझाव यह है कि व्यक्तियों की "निवासी परन्तु साधारणत अनिवासी" श्रेणी को लुप्त कर दिया जाय बशर्ते कि साथ ही साथ निवास की परिभाषा मे उपयुक्त परिवर्तन किया जाय। उनका यह भी सुझाव है कि विदेशी टेकनीशियन जिस वित्तीय वर्ष में भारत में आएँ, उसमे उनकी आय सम्पूर्ण रूप से आयकर से मुक्त रहे बशर्ते कि यहाँ रहने का कुल अरसा ३६५ दिनो मे अधिक न हो, आयकर कानून इस प्रकार मे सशोधित किया जाय कि जो भारतीय नागरिक सयुक्तराष्ट्र या उससे मिले-जुले अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो मे काम करते हो, उनकी आय पर आयकर लागू हो, आयकर अधिनियम की धारा ४ ए(सी) में कम्पनियो की निवासिता का निर्णय करते हुए आय की जो कसौटी है, वह समाप्त कर दी जाय, राजस्व के केन्द्रीय बोर्ड को सकटग्रस्त मामलो मे यह अधिकार दिया जाए कि वह किसी ऐसे व्यक्ति के, जो पहले अनिवासी था जो बाद को भारत मे रहने को आया, द्वारा प्राप्त वैदेशिक मुनाफो के विप्रेषण पर कर-मुक्ति की अवधि बढ़ा सके। आयोग की यह भी सिफारिश है कि २ सितम्बर १९५१ के तथा ३१ मार्च १९४६ के बीच निवासियो के द्वारा भारत मे बाहर से भेजी हुई रकमो को जैसी छूट प्राप्त है, वैसी अनिर्दिष्ट काल तक कायम रहे। उसका यह भी सुझाव है कि भारत मे होनेवाले मुनाफो सम्बन्धी नियमो को किन्हीं रूपों में स्पष्ट कर देना चाहिए, और भारत के बाहर तैयार किये हुए माल के, जिसकी बिक्री भारत में होती है, बेचने तथा अन्य कार्यो के बीच मुनाफे के वितरण सम्बन्धी सिद्धान्त आयकर अधिनियम के अन्तर्गत कर देने चाहिएँ जैसा कि आस्ट्रेलिया मे है। जहाँ तक कि दोहरे आय कर से मुक्ति की बात है, आयोग का यह मत है कि दूसरे देशो के साथ हिन्द-पाकिस्तान समझौते के आधार पर समझौते हो जायँ, बशर्ते कि सयुक्तराष्ट्र के वित्तीय आयोग के आदर्श अभिसमय में ऐसे सशोधन कर दिये जायँ जिनसे कि भारत के आर्थिक विकास के तुलनात्मक सोपान का खयाल रखा जाय। जब तक कि इस प्रकार के समझौते नही हो जाते, आयोग का यह मत है कि वर्तमान एकागी छूट का आधार जारी रखा जाय।

कर योग्य आय

आयोग ने करयोग्य आय पर कई सिफारिशें की है। आयकर कानून में आय की परिभाषा करना व्यावहारिक नहीं था, और इन मामले में, जैसे अब तक मामलो के कानून से पथप्रदर्शन होता था, वैसा जारी रहे। कुछ प्राप्तियाँ जैसे, रेहन पर प्रिमियम, पेटेंट अधिकारो तथा कापीराइटों की बिक्री से प्राप्त राशियाँ, मैनेजिंग एजेन्सी के समझौतो या इसी तरह के व्यावसायिक समझौतों की समाप्ति पर जो क्षतिपूर्ति प्राप्त हो तथा रोजगार की हानि की क्षतिपूर्ति की रकमो

पर भी कुछ हालतो में कर लेना चाहिए। आयकर अधिनियम मे अनावर्तक तथा आकस्मिक आयो पर जो नियम है, उन्हे वदलने की जरूरत नही, पर कई तरह की आकस्मिक आय, जैसे वर्ग पहेली, लाटरी आदि के पुरस्कार पर समान दर से एक अलग कर लगना चाहिए। मालिक अपने कर्मचारी को मुफ्त सेवा आदि के रूप में जो लाभ देता है, उसके मूल्य पर भी कर लगना चाहिए, क्योकि यदि कर्मचारी को मालिक से यह लाभ न मिलता तो उसे उसके लिए रुपया खर्च करना पडता, पर इस प्रकार के लाभ पर तभी कर लगाया जाय जब किसी कर्मचारी की कुल आय २४००० रुपये वार्षिक से अधिक हो या वह किसी कम्पनी का डायरेक्टर हो। खेतीवाली आय और गैर खेती वाली आय में फर्क समाप्त कर देना चाहिए। जव तक ऐसा नही होता, तब तक दुग्वशाला तथा मुर्गी पालन से होनेवाली आय को व्यवसायिक सस्थाएँ समझना चाहिए। और फलोपभोग बधक से होनेवाली आय पर भी भारतीय आय कर अधिनियम के अनुसार कर लगना चाहिए। अनियमित तथा वहुत घट-बढवाली आय के साथ विशेप व्यवहार की वात पर विचार करते हुए आयोग ने इस वात पर जोर दिया है कि कर योग्यता में कुछ फर्क तो करना ही पडेगा क्योकि वार्षिक आय के हिसाव पर ही कर लिया जाता है। इसलिए ऐसी आय के वारे में कानून में कोई आम नियम नही वन सकता, और हर एक मामले के गुण-दोप के अनुसार विशेप व्यवहार करना चाहिए। आयोग को इस प्रकार की जो आयें वतलायी गयी उनमें इन आयो के लिए विशेप व्यवहार के लिए सिफारिश की गई—(१) एक ही चित्र के निर्माता की आय (२) वैंको के द्वारा चलाये हुए दीर्घकालीन नकदी सर्टिफिकटो पर सूद (३) निधियो तथा चिट (chit) कोषो से आय। आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि फिल्म जाँच कमेटी ने वितरको के द्वारा किए गए भुगतान के निक्रामण के विषय में जो सुझाव दिया है उसको कार्यान्वित किया जाय।

महाजनो द्वारा वसूल न किये हुए कर्ज, जिनके लिए कोई दावा नही किया गया ऐसी मजदूरियां तथा शेष रकमें, अवमूल्यनीय सम्पत्ति की बिक्री से प्राप्त फाल्तू धन, वीमा कम्पनी से किसी इमारत के नष्ट होने या उसकी हानि के कारण प्राप्त क्षतिपूर्ति जैसी प्राप्तियो के सम्वन्ध में आयोग ने कुछ सिफारिशें की है। इसके वाद आयोग ने पण्य स्कध के मूल्याकन के विभिन्न तरीको, व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक अपकर्षों तथा आयकर में हानियो के सम्वन्ध में विचार किया है। आयोग पण्य स्कध के मूल्याकन के सम्वन्ध मे किसी वहुत कडे सूत्र की व्यवस्था पसद नही करता। उसका सुझाव यह है कि उपयुक्त सरक्षण रखे जायँ, पर पण्य स्कध का मूल्याकन उसी ढग से किया जाय जिस ढग से कर-दाता वरावर करता है। व्यापार-सम्बन्धी छूटो पर विचार में इस समय विधि मे प्रचलित वह सिद्धान्त अन्तर्भुक्त है जो स्वीकार्य व्ययो तथा गवाहो के द्वारा रायजनी के लिए भेजे हुए खर्चों की मदो के सम्बन्ध में लागू है। आयोग की यह भी सिफारिश है कि आयकर अधिकारियो को यह अधिकार विधि में एक सशोधन द्वारा दिया जाना चाहिए कि वे नौकरी में नियुक्त मालिको के रिश्तेदारो को दिये जानेवाले वेतन के सम्बन्ध में पूछताछ कर सकें। पेटेंट किये हुए अधिकारो तथा कापीराइटो की प्राप्ति का मूल्य, रेहनो की किस्तें, एक साल से अधिक समय के लिए प्राप्त रेहन के सम्वन्ध में मुकदमे का खर्च तथा दूसरे खर्चों को भी स्वीकार्य

कटौतियाँ मान लेने की सिफारिश की गई है। आयोग के द्वारा विचार किये गए अन्य विषयो में आयकर अपीलो के खर्च का विषय भी था, जिसके सम्बन्ध मे यह राय हुई कि आयकर मुकदमो तथा अपीलो के सभी सोपानो में कुछ परिस्थितियों में वह स्वीकार्य होना चाहिए। इसी प्रकार भ्रमण के खर्च, डूबे हुए कर्ज, मरम्मत आदि के खर्च पर भी विचार किया गया। इसी तरह आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि यदि किसी विश्वविद्यालय या कालेज या किसी संस्था को जो ऐसी रकम दी जाए जिसे निर्दिष्ट अधिकारी की स्वीकृति प्राप्त है, और जो करदाता द्वारा किये जानेवाले व्यवसाय से संबद्ध आँकडो तथा सामाजिक विज्ञानो के सम्बन्ध मे शोध के लिए दी जाए, तो उसकी कटौती भी स्वीकार्य मद मे डाली जा सकेगी। इस उद्देश्य के लिए निर्दिष्ट अधिकारी योजना आयोग को ही होना चाहिए।

जहाँ तक घाटो का सम्बन्ध है आयोग ने औसत लगाने, घाटे के हिसाब को पीछे ले जाने तथा आगे ले जाने की पद्धतियो के तुलनात्मक गुण-दोषो पर विचार किया है, और यह सिफारिश की है कि कुछ परिवर्तनो के साथ घाटो को आगे के हिसाब मे ले जाने का मौजूदा तरीका वर्तमान परिस्थिति में, जब कि नये-नये कारखाने योजनात्मक विकास के फलस्वरूप खुलते जा रहे हैं सबसे उपयुक्त है। आयोग ने जिन परिवर्तनो का सुझाव रखा है, वे ये हैं : इस समय जैसे ६ साल के लिए घाटे के हिसाब को आगे ले जाया जा सकता है, उसके बदले वह अनिश्चित काल तक आगे ले जाया जा सके, आगे के हिसाब मे ले जाये गये घाटे इस समय केवल उसी व्यवसाय मे होनेवाली आय के साथ सन्तुलित किए जा सकते हैं, पर आगे से वह किसी भी व्यवसाय से होनेवाली आय के साथ सन्तुलित किए जा सके, आगे ले जाये गये घाटे एक साल के लिए व्यवसाय के अलावा आयो के भी विरुद्ध दिखाए जा सकें, घाटा पीछे की ओर तभी ले जाया जा सके जब करदाता के नियंत्रण के बाहर की परिस्थितियो के कारण व्यवसाय बन्द कर दिया जाय।

जिन लोगो पर 'वेतन' की आय के कारण कर लगे है, उन्हे उस रकम की छूट मिलनी चाहिए जो अपने कार्य के लिए अध्ययन तथा सामग्री एकत्र करने में उन्होंने पुस्तको तथा पत्र-पत्रिकाओ पर खर्च की हो। यह रियायत प्रतिवर्ष पाँच सौ रुपये की अधिकतम सीमा तक की जाय।

यह भी सिफारिश की गई है कि आय कर अधिनियम की आठवीं तथा बारहवीं धारा मे उपयुक्त संशोधन करके सिक्योरिटियो पर तथा लाभांशो पर सूद एकत्र करने के लिए जो खर्च आये, वह भी छूट के लिए स्वीकार्य समझा जाय।

अवमूल्यन सम्बन्धी छूटे

आयोग ने पुनर्मूल्यांकन के सिद्धान्त की उपयुक्तता को स्वीकार करने मे कठिनाई अनुभव की। लम्बे अर्से तक मूल्यों की सतह लगातार स्थिर बनी रहे, यह आशा अवास्तविक है, और आर्थिक इतिहास से मेल नही खाती, मौद्रिक अर्थ-व्यवस्था में मूल्यो मे परिवर्तनो के कारण लाभ या हानियाँका खतरा अन्तर्निहित है। आयोग का कहना है—"यह न भूला जाय कि अन्तिम

दर्जे तक किसी सम्पत्ति के भौतिक अवमूल्यन से प्रतिस्थापन होता हो, यह आवश्यक नही है, इसके विपरीत कई वार यह दूसरी बातो, जैसे टेक्नोलोजिकल परिवर्तन, प्रतियोगिता की तीव्रता, पूंजी की प्राप्ति, सामूहिक कर की दरें तथा आम औद्योगिक परिस्थिति के परिणामस्वरूप होता है।" इसके अलावा विभिन्न प्रकार के तथा विभिन्न समय के व्यवसायो की सम्पत्तियों के पुनर्मूल्याकन के लिए वरावर होनेवाले मूल्य-सम्वन्धी परिवर्तनो को कार्यकारी ढग से लागू करने में वहुत वडी कठिनाइयाँ हैं। ऐसी परिस्थितियो में आयोग ने न केवल सैद्धान्तिक रूप से गलत होने के कारण वल्कि अव्यावहारिकता के कारण भी पुनर्मूल्याकन या निरन्तर पुनर्मूल्याकन के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया। फिर भी आयोग ने यह माना है कि यद्यपि सम्पत्तियो के मूल्य में इतनी वढती नही हुई कि उसके कारण भारत की व्यावसायिक इकाइयो का पुनर्मूल्याकन उचित हो, फिर भी सवद्ध सम्पत्तियो के मौलिक खर्च की तुलना में प्रतिस्थापन खर्च में वहुत अधिक वृद्धि हुई है। अवमूल्यन-सम्वन्धी अधिक छूट देना या अन्य प्रकार से कर में छूट देना प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक अतिरिक्त निधियाँ प्राप्त करने के तरीको में से एक है। लाभाशो की घोपणा में सयम से काम लेना तथा मुनाफे की रकम को वचा लेना और उसे फिर से पूंजी के रूप में लगाना एक दूसरा तरीका है। आयोग ने यह सुझाव दिया है "एक और तरीका यह है कि राज्य के द्वारा चलाई हुई वित्तीय सस्था से रियायती दर पर कर्ज वित्त प्राप्त किया जाय।" आयोग का यह कहना है कि चाहे कारण कुछ भी हो, यदि उद्योग धन्धो की शक्ति में इतनी कमी आ जाय कि वह उत्पादन के वर्तमान सतह पर कायम न रह सके, और वह भी इस कारण कि वह पुरानी-धुरानी सम्पत्तियो को प्रथापित न कर सके, तो यह एक वहुत वडी राष्ट्रीय समस्या होगी। "जो व्यवसाय चालू है, उनके लिए जरूरी प्रतिस्थापन के लिए वित्त न जुटा पाने के कारण यदि उनकी उत्पादन क्षमता घट जाए तो नये व्यवसायो में पूंजीविनियोग करना, चाहे वे सार्वजनिक क्षेत्र में हो चाहे निजी क्षेत्र में, वहुत ही गलत नीति होगी।" इस समय जो रियायतें चालू हैं, उन पर विचार करते हुए आयोग ने इस वात की ओर ध्यान दिलाया है कि १९४६–५१ के युग में जो विशेष, प्रारम्भिक, और अतिरिक्त अवमूल्यन सम्वन्धी छूटो की पद्धति थी, उसके कारण वडा लाभ हुआ। यह सच है कि उन छूटो से कर-सम्वन्धी कोई स्थायी छूट नही मिली। सच तो यह है कि वे सरकार द्वारा दिये गये एक करमुक्त कर्ज के रूप में थे, पर उनके कारण प्रतिस्थापन तथा व्यवसाय के विस्तार के लिए आन्तरिक साधनो से उद्योग-धन्धो को धन राशि प्राप्त होने में सहायता मिली। इस प्रकार से १९४६ में मौजूद २९३ माल उत्पादन करनेवाली कम्पनियो के सम्वन्ध में आय कर विभाग ने १९४७-५२ के वीच में जो ७७ करोड रुपयो का कुल अवमूल्यन दिया, उसमें से ५५ करोड रुपये की छूट ऐसी सम्पत्तियो के सम्बन्ध में थी, जो १९४६ में या उसके वाद प्राप्त की गई थी। १८ करोड की प्रारम्भिक छूट और इससे कुछ कम के अवमूल्यन से यह परिणाम निकला। फिर भी यह कहना सही होगा कि न तो सब उद्योगो के लिए और न किसी उद्योग की सव इकाइयो के लिए इससे प्रतिस्थापन की समस्या का समाधान हुआ।

इस प्रकार से उदाहरणार्थ सूती कपडे, पटसन, लोहा और इस्पात के उद्योगो पर कुछ

ध्यान विशेष देने की जरूरत थी। छोटी कम्पनियो की भी समस्या थी जो शायद यथेष्ट आन्तरिक कोष एकत्र न कर सकी, और इसी के साथ ही उनके लिए खुले बाजार से वित्त प्राप्त करना बहुत कठिन हो गया। इन परिस्थितियों में विशेष उद्योगों तथा इकाइयो को सहायता देने के लिए दूसरी व्यवस्थाएँ होनी चाहिए, यद्यपि इनमे से कुछ उनकी अपनी वर्तमान मुसीबत के लिए शायद जिम्मेदार है, और उन्हें शायद अनिवार्य रूप से उन तरीको से बचाना पडे, जिनके कारण उन पर यह मुसीबत आ पडी। आयोग को यह बताया गया कि नवनिर्मित औद्योगिक विकास निगम के साधनों के उपयोग की व्यवस्था हो रही है, जिससे सूती कपडो और पटसन के उद्योगो को अपने प्रतिस्थापन के कार्य मे सहायता मिले। लोहा और इस्पात के उद्योगो के प्रतिस्थापन के कार्यक्रम के लिए वित्त जुटाने के उद्देश्य से टाटा लोहा तथा इस्पात कम्पनी को १० करोड रुपये का कर्ज दिया जा रहा है। इस्पात और लोहे के मूल्य को निर्दिष्ट करने में अवमूल्यन के लिए अतिरिक्त व्यवस्था करने पर भी विचार किया गया। राज्य के द्वारा चलाये हुए वित्तीय निगमो के जरिये से मामूली सूद पर कर्ज देने का तरीका ऐसी बहुत-सी कम्पनियो की विशेष जरूरतों के लिए बहुत सही मालूम होता है। इसके अलावा आयोग की यह राय है कि क्रमश १९४६ और १९४९ मे चलाई हुई प्रारम्भिक तथा अतिरिक्त अवमूल्यन छूटो की पद्धति और भी पाँच साल तक चालू रहे जिसके बाद उद्योग-धंधों में प्रतिस्थापन की समस्या पर पुन विचार किया जाय।

पाँच साल के बाद बाजार मूल्य के आधार पर यान्त्र तथा संयत्र पर अवमूल्यन छूट का पुनर्गणन बन्द कर देना चाहिए। यान्त्र तथा संयत्र पर जो प्रारम्भिक अवमूल्यन छूट दी जाती है, वह इस समय पूरे दाम का २० प्रतिशत है, उसे बढाकर २५ प्रतिशत कर दिया जाय। और सम्पत्ति के घटाये हुए मूल्य के निर्णय में इस पर विचार करना चाहिए। जिन उद्योग-धन्धों को विकास-छूट दी जाती है, जैसा कि आयोग नें अन्यत्र सुझाव दिया है, उन्हें प्रारम्भिक अवमूल्यन छूट नही देनी चाहिए। जहाँ भारतीय आयकर अधिनियम किसी उद्योग के लिए निर्दिष्ट अवमूल्यन का तरीका उस उद्योग-धन्धे पर लागू विशेष कानूनो में निर्दिष्ट तरीके से अलग हो, वहाँ उन विशेष कानूनो का तरीका ही आयकर के हिसाब के लिए भी लागू रहे। राजस्व-सम्बन्धी केन्द्रीय बोर्ड अवमूल्यन के लिए सम्पत्तियो को वर्गीकृत करनेवाली अनुसूची का व्यापक विवेचन करे, जिससे कि सबसे आधुनिक प्रौद्योगिक विकास और दर-सम्बन्धी अनुसूची का पूर्ण परीक्षण हो। इस समय यह जो प्रथा प्रचलित है कि जितने महीनों तक वह कोई सम्पत्ति उपयोग मे आती है, उसी अनुपात से अवमूल्यन स्वीकृत होता है, ऐसा करना बन्द कर देना चाहिए। इस कानून को इस प्रकार से संशोधित किया जाय कि बैलेन्स करनेवाले छूट-सम्बन्धी नियम मेज-कुर्सी आदि सामान पर भी लागू हों, और कुछ हालतो में घटाये हुए मूल्य पर किसी सम्पत्ति की बिक्री से प्राप्त धन-राशि जितनी अधिक हो, उसे कर-निर्धारण की दृष्टि से नही गिनना चाहिए। आयोग ने अवमूल्यन के स्वतन्त्र तरीके को ग्रहण करने की सिफारिश नहीं की है।

खान उद्योगों पर कर

खान उद्योगो पर कर लगाने के जटिल विषय पर आयोग ने कई ऐसी सिफारिशें की है,

जिनका उद्देश्य इस धन्धे को बढाना तथा प्रोत्साहन देना है। इन सिफारिशो में से कुछ ये है — रायल्टी को, उन क्षेत्रो में भी जहाँ उसे मुनाफो का विनियोजन माना जाए उस राशि तक स्वीकार्य खर्च माना जाय, जिसका खनिज-पदार्थ-रियायती-नियमो में निर्धारण किया गया है, खान आदि की खोज के सम्बन्ध मे असफल प्रयत्नो पर जो खर्च हो उसे भी उस साल राजस्व के खर्च के रूप मे मान लिया जाय जिस साल वह खर्च हुआ था, खनिज पदार्थ प्राप्त करने के लिए या खनिज पदार्थ निकालने का अधिकार प्राप्त करने के लिए जो पूंजीगत खर्च हो, खोज तथा खान पर जो खर्च आवे, खानो के विकास के लिए जो व्यय हो, और यदि करदाता चाहे तो खनिज पदार्थ की खोज और खनन के लिए जो यान्त्र तथा सयत्र और मकान काम में आवें, उनका दाम मुनाफो के विरुद्ध दिखाया जा सकें, मूर्त्त सम्पत्तियो पर जो खर्च हो, उस सम्वन्ध में अव-मूल्यन छूट मिलनी चाहिए और अमूर्त्त सम्पत्तियो पर जो खर्च आवे उसे चुकता (अमोरटाइज) करके दिखा देने की अनुमति देनी चाहिए। इन रियायतो का दुरुपयोग रोकने के लिए सरकार व्यूरो आफ माइन्स की सलाह से प्रत्येक उद्योग के लिए अधिक से अधिक सीमा निर्धारित करने की वाछनीयता पर विचार करे, जिसके आगे खोज और खनन पर खर्च स्वीकृत नही होना चाहिए। खोज और खनन पर जो असफल खर्च आवे, उसे उस मुनाफे के विरुद्ध ही दिखाने की अनुमति दी जानी चाहिए जो दूसरे खान सम्बन्धी धन्धो से प्राप्त हो, और ये रियायतें, केवल उन्ही खनिज पदार्थो पर लागू हो, जो अतल्पास्तृत 'नानवेडेड' किस्म के हो और जो वहुत गहराई में हो और जिनके मूल्य निर्यात वाजार में वहुत घटते वढते हो। इन रियायतो को जारी रखने के विपय में समय समय पर पुन-र्विचार किया जाय, और यह देखा जाये कि जिस उद्देश्य से यह रियायतें की गई है, वे प्राप्त हो रहे हैं या नही।

खान उद्योगो को कर-सम्बन्धी प्रोत्साहन मिलने का कारण है, पर यह प्रोत्साहन चुने हुए खनिज पदार्थो तक ही सीमित होना चाहिए। रियायतें अविकसित या ऐसे खनिज पदार्थो के साथ की जानी चाहिए, जो अभी विकास के प्रारम्भिक सोपानो मे हैं, और जिनका विकास आर्थिक या सामरिक कारणो से आवश्यक समझा जाय। ये रियायतें उन कम्पनियो तक सीमित रक्खी जाय, जो खनिज पदार्थो को निर्यात के पहले तैयार या अर्ध तैयार माल में परिणत करना स्वीकार करे। निम्नकोटि की कच्ची धातुओ के निष्कासन कार्य को भी आयकर-सम्वन्धी छूट देकर प्रोत्साहित किया जाय, जिसकी मात्रा प्रतिवर्ष निकाले हुए आर्थिक स्तर से निम्नकोटि की कच्ची धातु के परिमाण पर निर्भर हो। इन प्रोत्साहनो को किस रूप में दिया जाय, इस सम्वन्ध में कोई आम नियम नही वन सकता और प्रत्येक खनिज पदार्थ की विशेप परिस्थितियो तथा हालतो के आधार पर विशेप व्यवहार आवश्यक होगा। आयोग यह सव होते हुए भी आरेचन (डिप्लीशन) सम्बन्धी छूट देने के पक्ष में नही है, चाहे वह खोज मूल्य पर आधारित हो या कुल या शुद्ध मुनाफो के प्रतिशत पर आधारित हो, और वह इसलिए कि आयोग ने खानोद्योग द्वारा किये हुए पूंजी-सम्वन्धी खर्च के एक वडे भाग को चुकता कर के दिखाने की सिफारिश पहले ही कर दी है। फिर भी उन्होने ऊपर की शर्तो के

साथ यह सिफारिश की है कि खानोद्योग को विकास सम्बन्धी छूट मिलनी चाहिए जिसकी सिफारिश उन्होंने आमतौर पर सब उद्योगो को प्रोत्साहन देने के लिए की है।

उत्पादक धन्धो के विकास को प्रोत्साहन

इसके बाद आयोग ने विकास के लिए प्रोत्साहनो की व्यवस्था पर विचार किया है। सब कम्पनियो को इस समय उनके अवितरित मुनाफो पर प्रति रुपये एक आना की जो छूट मिलती है, वह जारी रहे, और इसके अलावा कुछ चुने हुए धन्धो के लिए एक विकास-छूट और कुछ शर्तों के साथ (विशेष राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योग-धन्धो के लिए) एक "करवाली छुट्टी का दिन" होना चाहिए। विकास-छूट का रूप यह होना चाहिए कि प्रतिष्ठापन के साल मे राजस्व पर नयी स्थायी सम्पत्ति के मूल्यो की २५ प्रतिशत छूट दी जाये, चाहे वह पुन: प्रतिष्ठापन के लिए हो या कारखाना विस्तार के लिए हो। यह छूट चुने हुए धन्धो में नयी तथा मौजूदा, सभी कम्पनियो पर लागू हो। यह छूट, वर्तमान प्रारम्भिक अवमूल्यन-छूट के स्थान पर हो। अतिरिक्त अवमूल्यन-छूट जिस प्रकार अब है, जारी रहे। छूट के लिए स्वीकार्य उद्योगो का चुनाव राष्ट्रीय विकास मे उनके महत्त्व तथा उनके विकास को पुस्ता करने के लिए विशेष प्रोत्साहन देने की आवश्यकता को देखते हुए हो, पर वास्तविक चुनाव किसी ऐसी उपयुक्त सस्था के द्वारा हो, जैसे योजना-आयोग। अधिकारियो की एक विशेषज्ञ समिति ऐसे उपयुक्त उपाय निकाले, जिससे इस रियायत का दुरुपयोग न हो सके। यह छूट जिस यत्र और मशीनरी के बारे में दी जाय उसकी बिक्री ऐसे व्यक्तियों या सस्थाओ को न की जाए, जिनकी व्यावसायिक आय भारतीय आयकर के अधीन नही है। और उसका उपयोग भी उस उद्देश्य के अलावा किसी और उद्देश्य से न किया जाये जिसके लिए वह प्राप्त की गई है। विशेष राष्ट्रीय महत्त्व वाले चुने हुए जिन धन्धो को "कर सम्बन्धी छुट्टी का दिन" देने की बात कही गई है, उन्हें उस साल से जब उनका उत्पादन शुरु हुआ हो, ६ साल तक के लिए रियायत दी जाये। और भी ५ सालो के लिए साधारण अवमूल्यन का दुगुना ऐसी कम्पनियो के लिए स्वीकार किया जाये। किसी उद्योग को या तो विकास-छूट का लाभ मिलेगा या प्रस्तावित कर-छूट मिलेगी। इनमे से जो अधिक हो, वही मिलेगा, पर दोनो नही। कम्पनियो की छूटवाली आय से जो लाभांश बाँटे जायें, वे हिस्सेदारो के हाथो मे आयकर-मुक्त होकर पहुँचे, और कम्पनियो को चाहिए कि वे "करवाली छुट्टी" की अवधि मे अपनी आय का नियमित लेखा पेश करती रहें। जिन थोड़े से चुने हुए उत्पादको को द्रव्यो तथा पूंजीगत सामान के धन्धों को "करवाली छुट्टी के दिन" का लाभ दिया जाये, उनका चुनाव सरकार द्वारा बनाई हुई किसी उपयुक्त सस्था, जैसे योजना आयोग, के द्वारा किया जाये, और इन रियायतो का क्या असर रहा, इस पर ५ वर्ष के अन्त में विचार किया जाये और उसके परिणाम संसद के सामने पेश किये जाए।

विशेष संस्थाओं पर कर और प्राप्तियाँ

आयोग ने दूसरी बातो के साथ यह सिफारिश की है कि धार्मिक तथा धर्मार्थ ट्रस्टों को आय को कर-मुक्ति देने के सम्बन्ध में जो अधिकार है, उसे बढ़ाकर ऐसे ट्रस्टो को भी उसमें

प्रमेट लेना चाहिए जो १ अप्रैल, १९५२ के वाद स्थापित हुए हो; विभिन्न राज्यो म वम्वई सार्वजनिक ट्रस्ट्स अधिनियम, १९५० के ढग पर कानून वनने चाहिएँ; सहकारी वीमा व्यवसाय के मुनाफो को वर्तमान समय में जो कर-मुक्ति दी जाती है, वह वन्द कर दी जाए; जो कम्पनियाँ आम वीमा-व्यवसाय कर रही है उन्हे यह अनुमति दी जानी चाहिए कि वे अपने वार्पिक प्रीमियम का ५ प्रतिशत प्रतिवर्प करमुक्त रूप से रिजर्व में जोड दें, जव तक कि रिजर्व विशेष सीमाओ तक न पहुँच जाये, यह सीमा विभिन्न वीमा वर्गो के लिए अलग-अलग हो, व्यापार तथा पेशेवाली सस्थाओ के साथ उनकी आय पर कर के सम्वन्व में स्थायी वन्दोवस्त हो जाना चाहिए, मौजूदा समय में सहकारी समितियो को जो कर सम्वन्वी रियायतें हैं, वे जारी रहनी चाहिए। सिक्यूरिटियो पर सूद तथा सहकारी समितियो के द्वारा प्राप्त सम्पत्ति से हुई आय, किसी सहकारी समिति द्वारा दूसरी समितियो में पूंजी-नियोजन से प्राप्त आय, गोदामो और माल-खानो के किराये से सहकारी समितियो को जो आय हो, उसके सम्बन्ध में कुछ नई रियायतें मिलनी चाहिए। इन रियायतो पर १० वर्प के अन्त में विचार हो, कर्मचारियो द्वारा अपने कार्य करते हुए पूर्णरूप से या आवश्यक रूप से किये गये खर्च की पूर्ति के लिए जो भत्ते दिए जाते हैं वे वास्तविक खर्च की हद तक मुक्त होने चाहिए; सभी हालतो में जो मनोरजन तथा आतिथ्य सम्वन्धी भत्ते नकद रूप में दिये जाने हैं उन पर कर्मचारी के हाथो कर लगाया जाये। जो दूसरे सुझाव रखे गये हैं वे ये है—ट्रस्टियो या अभिभावकों पर कर लगाने के कानून में या जीवन-वीमा-व्यवसाय के मुनाफो पर कर लगाने के तरीके में किसी प्रकार के परिवर्तन की जरूरत नही है, हिन्दू अविभक्त परिवार के कर सम्वन्धी विषयो में इस समय किसी प्रकार का अधिक परिवर्तन करना उचित न होगा, विशेषकर जवकि हिन्दू कोड विल ससद के सामने है, पर कुछ छूट देने के लिए जिन अविभक्त हिन्दू परिवारो में चार या चार से अधिक सदस्य हैं, उन्हे आयकर की साधारण करमुक्ति की सीमा से तिगुनी छूट दी जाए, करमुक्त वेतन देने के तरीके को प्रोत्साहन न दिया जाए, सपत्ति से आय के मामले में मरम्मत और किराया आदि एकत्र करने की मद में जो छूट देने की व्यवस्था है, उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। जिस मकान में मालिक खुद रहता है, उसके किराये को वार्पिक किराये के आधे तक या १,८०० रुपये तक, जो भी कम हो, वहाँ तक वार्षिक मूल्य में सम्मिलित नही करना चाहिए। रहने के मकान के सम्बन्ध में अवमूल्यन-छूट देने का कोई कारण नही है, और इस समय नये वने हुए मकानो की आय को दो साल के लिए कर से जो छूट दी जाती है, उसे वन्द कर दिया जाए।

आयकर की दर का ढाँचा

आयोग ने पहले निगम कर के अलावा आयकर की दर के ढाँचे पर विचार किया है। दरों के ढाँचे में १९३८-३९ के वाद वहुत परिवर्तन हुआ। जैसा कि पहले वताया जा चुका है, वैयक्तिक आयकर को 'स्टेप' आवार से हटाकर १९३९ में खड आधार पर कर दिया गया। १९३९-४० से १९४५-४६ की अवधि में आयकर तथा अतिरिक्त कर की आधारभूत दर

अपरिवर्तित रही, युद्धकालीन वृद्धिया अविभारो के जरिए से कार्यान्वित की गईं। १९४६-४७ में अविभारो को आधारभूत दरो के साथ विलीन कर दिया गया, अतिरिक्त कर खंडों की संख्या ८ से बढकर १२ हो गई, साथ ही डेढ लाख रुपये से अधिक अतिरिक्त कर की दरो पर बहुत अधिक वृद्धि हुई। उपार्जित आयवाला फर्क भी उसी साल प्रवर्तित हुआ।

१९४७-४८ में करमुक्ति-सीमा २,५०० रुपये तक पहुँच गई, १५,००० रु० तक प्रभावकारी दरें घटा दी गईं, और २५,००० रु० के बाद की दरें बढा दी गईं। डेढ लाख रुपये से अधिक आय पर खडो को छोटा कर रुपये में १५ आने ६ पाई वाली अधिकतम दर लागू कर दी गई। आमतौर पर १९४७-४८ की दर के ढांचे में १९४५-४६ के मुकाबले में अधिक क्रम-वृद्धि हुई। १९५०-५१ तक १९४७-४८ की तुलना में प्रभावकारी दरो का निम्नगामी सतुलन रहा। पर ज्यों-ज्यो आय का दर्जा बढता गया, विशेषकर ८५ हजार रुपये के ऊपर यह कमी और अधिक हो गई। उस साल तक अतिरिक्त कर खडो की सख्या फिर से घटाकर आठ कर दी गई, और १ लाख ५० हजार रुपये से अधिक आय पर अधिकतम आयकर तथा अतिरिक्त कर १२ आने ६ पाई प्रति रुपया हो गया। १९५०-५१ में आयकर की अधिकतम दर घटाकर चार आने कर दी गई।

दूसरे देशो की तुलना में भारत में प्रारम्भिक मार्जिनल दरें कम है, पर क्रमवृद्धि अधिक है। मार्जिनल दरें १० हजार रुपये पर बहुत से देशो की तुलना में बहुत कम है, तथा १५ हजार और २५ हजार रुपये पर कुछ देशो की अपेक्षा कम है। इस सतह से बाद में तेजी से वृद्धि होती है, और ४० हजार रुपये तक पहुँचने पर हमारी दर दुनिया की सबसे ऊँची दरो तक पहुँच जाती है। ७० हजार रुपये तथा उसके ऊपर की भारतीय दर केवल इग्लैंड से कम है।

भारत में किसी व्यक्ति की आय पर तब तक आयकर नहीं लगता, जब तक कि उसकी आय प्रति व्यक्ति की राष्ट्रीय आय की १५ गुनी नही हो जाती, और जब किसी की आय प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय की ५०० गुनी से अधिक हो जाती है, तब उस पर अधिक से अधिक दर लागू होती है। दूसरे कई देशो मे ये गुणक इससे कही कम है। सारी आबादी की तुलना में आयकर देनेवालो की सख्या भी तुलनात्मक रूप से बहुत कम यानी एक से लेकर डेढ प्रतिशत तक है। आयोग का कहना है कि यदि प्रत्यक्ष कर की आम सतह मे वृद्धि हो, तो उसने "आम आयकरदाताओ तथा साधारण जनता के बीच में जो बडी विषमता है, उसके दूर होने में सहायता मिलनी चाहिए।" राष्ट्रीय आर्थिक लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए "कर की दरों को ऊपर की ओर ले जाना तथा आयकर यन्त्र का अधिक उपयोग" आवश्यक है।

आय के सोपानो की दृष्टि से आय-करदाताओ के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि करदाताओ की सख्या आयकर और अतिरिक्त कर, इन दोनो के निम्नतर खडो में केंद्रित है। कर की विषमता को दूर करने के लिए यह वाछनीय है कि आयकर तथा अतिरिक्त कर के ढांचे में अधिकतर खड चालू किये जाएँ।

क्रमवृद्धि के विस्तार तथा जिस सतह पर कर-मुक्ति की सीमा निश्चित की जाए; इस बारे में विचार करते हुए आयोग ने कहा है कि कम से कम आयवाले लोगो पर काफी हद तक प्रत्यक्ष कर भार बढाना उचित न होगा, पर समाज की प्रति व्यक्ति आय को देखते

हुए कर योग्य आय की सीमा को तीन हजार रुपये तक ले आना विल्कुल अयुक्तिसगत न होगा। आयोग इस सम्बन्ध में सन्तुष्ट है कि प्रशासनीय कारण इतने तगडे नही हैं कि वे करमुक्ति-सीमा को कम करने के विरुद्ध पडें। आयोग का यह विचार है कि कर-सबधी उद्देश्यो को देखते हुए दरो की, यहाँ तक कि अधिकतम दरो की, अनुसूची में वृद्धि आवश्यक है, पर ऊँचे से ऊँचे कोष्ठको के सबध में वृद्धि की गुजाइश उच्चतर मझले कोष्ठको की तुलना में कम है। वर्तमान परिस्थितियो में आयोग की राय है कि १ लाख ५० हजार से ऊपर की आयो पर रुपये में १३ आने ६ पाई की अधिकतम मार्जिनल दर या अधिक से अधिक ८५ प्रतिशत कर लगाया जा सकता है।

पारिवारिक छूटो के विषय में आयोग ने यह मत व्यक्त किया है कि किसी प्रकार के फर्क की स्वीकृति प्रत्यक्ष कर पद्धति में अधिकतर समता लाने की दिशा में एक पग होगा। तीन वर्षो के अन्दर पारिवारिक छूटों की एक नियमित पद्धति लागू कर दी जाए, और प्रारम्भिक रूप से विवाहित करदाताओ के लिए करमुक्त खड १,५०० रुपये से वढाकर २,००० रु० और अविवाहित लोगों के लिए घटाकर १,००० रु० कर दिया जाए। आयकर पद्धति में पारिवारिक छूटो के चालू करने सबधी वृहत्तर सुधार को इस कारण न रोक दिया जाए कि चूँकि हिन्दू अविभक्त परिवार से किस प्रकार वर्ता जाए, इस सबध में कोई विल्कुल तर्कसगत उपाय नही निकल पाया।

पारिवारिक छूटो की योजना के समर्थन से यह समस्या भी उत्पन्न होती है कि परिवार को कर निर्धारण की एक इकाई के रूप में लिया जाए। प्रभावकारी प्रशासन के लिए यह न्यायपूर्ण और आवश्यक है कि न केवल पति और पत्नी की आय को बल्कि समस्त परिवार की आय को जोडा जाए, और ऐसा कम से कम पारिवारिक छूटो की पद्धति को प्रवर्तित करने के साथ-साथ किया जाए।

उपार्जित आय पर छूट के सबध में आयोग यह अनुभव करता है कि भिन्न व्यवहार के पक्ष में जो बातें है, उनका महत्त्व त्यो-त्यों घटता जाता है, ज्यो-ज्यो आय के दर्जे में ऊपर की ओर जाया जाता है। यह वाछनीय है कि एक सीमा बाध दी जाए, जिसके बाद कोई छूट न मिले। इसलिए उपार्जित आय पर छूट देने की एक विशेष सीमा, उदाहरण के तौर पर २४ हजार रुपये की सीमा के नीचे बांधी जाए, और उसमें इस राशि के आस-पास की आयो का भी सतुलन किया जा सके।

नीचे दी गई तालिकाओ में आयोग की सिफारिशो के साथ-साथ दर के चार निदर्शनात्मक ढाचो का स्वरूप वताया गया है —

आयकर तथा अतिरिक्त कर का निदर्शनात्मक ढाँचा

आयकर की दरें

क——प्रत्येक व्यक्ति, अविभक्त हिन्दू परिवार, अपजीबद्ध कम्पनी तथा व्यक्तियो के अन्य सगठन पर लागू।

		उदा० १	उदा० २	उदा० ३	उदा० ४
		प्रतिशत	प्रतिशत	प्रति रुपया	
				आ० पा०	आ० पा०
कुल आय के प्रथम ५,००० रु० पर	(१)	५	६	०–९	१–०
,, ,, के अगले २,५०० रु० पर		१०	१२	१–९	२–०
,, ,, के अगले २,५०० रु० पर		१५	१६	२–६	२–९
,, ,, के अगले ५,००० रु० पर		२२·५	२२	३–६	३–६
कुल आय के शेष पर		२५	२६	४–०	४–०
—प्रत्येक कपनी पर लागू समस्त कुल आय पर		२५	२६	४–०	४–०

अतिरिक्त कर की दरे

	उदा० १	उदा० २	उदा० ३	उदा० ४
कुल आय के प्रथम २०,००० रु० पर	—	—	—	—
कुल आय के अगले ५,००० रु० पर	१२ ५	१२	२–०	२–०
,, ,, ,, ,, ५,००० रु० पर	२०	१८	३–०	३–०
,, ,, ,, ,, १०,००० रु० ,,	२५	२४	४–०	४–०
,, ,, ,, ,, १०,००० रु० ,,	३५	३४	५–६	५–०
,, ,, ,, ,, १०,००० रु० ,,	४५	४४	७–०	६–६
,, ,, ,, ,, २०,००० रु० ,,	५०	५०	८–०	७–६
,, ,, ,, ,, २०,००० रु० ,,	५५	५६	८–६	८–६
,, ,, ,, ,, ५०,००० रु० ,,	५७·५	५८	९–०	९–०
कुल आय के शेष पर	६०	६०	९–६	९–६

प्रत्येक हिन्दू अविभक्त परिवार के बारे में, जहां तक उपार्जित आय का सम्बन्ध है वहां तक, ऐनी कुल अ.य पर कोई आयकर नहीं देना पड़ेगा, यदि वह आय छूट घटाने पर ६,००० रु० से अधिक न होनी हो तथा अन्य प्रत्येक के बारे में यदि वह आय ३,००० रु० से अधिक न हो।

(१) अविवाहित व्यक्तियो की कुल आय के प्रथम १००० रु० पर तथा विवाहित व्यक्तियो की कुल आय के प्रथम २००० रु० पर कोई आयकर नहीं दिया जाएगा।

ऊपर आयकर की जिस ऊँची सतह की सिफारिश की गई है, उसके साथ ही बचतो के लिए विशेष प्रोत्साहन देना आवश्यक ज्ञात होता है। बीमा के प्रीमियमो तथा प्राविडेंट फड्स अधिनियम १९२५ के द्वारा परिचालित प्राविडेंट फडो या निर्वाह निधियो के लिए अशदान देने के सबध में छूट की एक पद्धति है, जो आय के छठे भाग तथा अधिक से अधिक ६,००० रु० तक सीमित है। इस तरह की रियायत "वैयक्तिक बचतो को बढ़ाने के लिए एक बहुत ही उचित साधन है," और छूटवाली अधिकतम रकम की मात्रा को कुल आय के छठे भाग से बढाकर पांचवा भाग अर्थात् हिन्दू अविभक्त परिवारो के लिए अधिक से अधिक १६,००० रु० और अन्य करदाताओं के लिए ८,००० रु० तक कर दिया जाए। मालिक लोगो की तरफ से स्वीकृत निर्वाह निधियो में जो कुछ दिया जाए, उसे उनके कर्मचारियो की कुल आय का भाग न समझा जाए, और प्रत्येक कर्मचारी के वैयक्तिक हिसाब में जो सूद जमा किया जाए उसे कर मुक्त समझा जाए।

ऊपर कर की दरो के ढांचे के सबंध में जो सुझाव दिया गया है, उसमें एक सतह के ऊपर वर्तमान समय के प्रचलित प्रत्यक्ष कर पर बहुत काफी वृद्धि है। इस समय प्रत्यक्ष कर में और अधिक वृद्धि उचित न होगी, पर ऊँची आय वाले कोष्ठको के व्यक्तियो के हाथो में जो विन्यसनीय (डिस्पोजेवल) आय की रकम है, उसे घटाने की कोई तरकीब करनी चाहिए। एक हद तक वैयक्तिक आयकर की दर बढाने से यह लक्ष्य प्राप्त हो सकता है। आयोग का कहना है, "इसके अलावा हम यह सिफारिश करते हैं कि २५,००० रु० से अधिक आय के सबध में अधिभार तथा अनिवार्य जमा मूलक एक योजना अपनाई जाए। वित्त मत्रालय में इस योजना की और अधिक विस्तार के साथ जाच की जाए जिससे कि उद्देश्य सिद्ध हो सके, यानी उपभोग कार्यों के लिए प्राप्त विन्यसनीय आय में कमी हो, पर वचत और पूंजी-विनियोजन के लिए प्राप्त रकमो पर कोई आँच न आये।" इस योजना की मुख्य वातें ये है कि २५,००० रु० से अधिक की सब आयो पर क्रमिक दर से एक विशेष अधिभार वसूल किया जाए, जिससे करदाता को यह अधिकार होगा कि वह ४५ साल के लिए नाममात्र सूद पर सरकार द्वारा स्वीकृत किसी विशेष कार्य के लिए दीर्घकालीन कर्ज प्राप्त कर सके, और २५,००० रु० से अधिक आयवाले करदाताओ से क्रमिक दर पर अनिवार्य रूप से रुपया जमा कराया जाए, जिसका भुगतान २० साल वाद वाडो के रूप में हो, और जिन्हें इसके वाद २५ साल में भुनाया जा सके।

समामेलित आय पर कर

कम्पनियो पर आय-कर और अतिरिक्त कर (सुपर टैक्स) दोनो ही लगते रहे हैं। कम्पनियो पर लगनेवाले अतिरिक्त कर को कार्पोरेशन टैक्स कहा जाता है। बहुत दिनो से चली आनेवाली एक परिपाटी के अनुसार कम्पनियों पर लगाये जाने वाले आय कर की दर को कम्पनियो के अतिरिक्त दूसरी इकाइयो पर लगनेवाले आयकर की अधिकतम दर के समान कर दिया गया था। कम्पनियो पर एकसार दर (Flat Rate) के हिसाब से अतिरिक्त कर भी लगता रहा है। अब तक आयकर पर ५ प्रतिशत अधिभार था, किन्तु अतिरिक्त कर पर नही।

सविधान में 'अतिरिक्त कर', इस शब्द का प्रयोग नही हुआ है, किन्तु आयकर कानून की धारा ५५ में कम्पनियो पर लगनेवाले अतिरिक्त कर को आय-कर का अतिरिक्त शुल्क कहा गया है। 'सुपर टैक्स' शब्द के स्थान पर 'कार्पोरेशन टैक्स' का प्रयोग किया जाना चाहिए, और सविधान के ३६६ (६) अनुच्छेद के अनुसार आयकर कानून में इसकी उचित परिभाषा दी जानी चाहिए।

ऐसा सुझाव दिया गया है कि कार्पोरेशन टैक्स को समाप्त कर दिया जाये। इसके पक्ष में युक्ति यह दी जाती है कि हिस्सेदारो के कर निर्धारण में निगम कर देने के लिए श्रेय न देने का मतलब एक ही आय पर दो वार कर लगाना है, और इस प्रकार एक विशेष प्रकार के व्यापार सगठन के प्रतिकूल भेदभाव करना होगा। इस सुझाव में कुछ भी सार नही है। भारत और ब्रिटेन की अदालतो ने यह निर्णय दे रखा है कि कम्पनियाँ एक स्वतत्र इकाई के रूप में कर देती हैं, हिस्सेदारो के एजेंट के रूप में नही। कानूनी पहलू के अलावा,

कम्पनी एक स्वतन्त्र आर्थिक इकाई भी है, और हिस्सेदार की स्थिति "उद्योग-परिचालक (एन्टरप्रेनियोर) होने की अपेक्षा ऋणदाता की अधिक होती है।" सच तो यह है कि 'कार्पोरेशन टैक्स' के प्रत्यर्पण किये जाने का तो प्रश्न ही नही उठता, वल्कि आयकर के प्रत्यर्पण की वर्तमान प्रणाली को भी समाप्त कर देना न्यायोचित होगा। पर इसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता नही है, क्योकि हिस्सेदार और वाजार दोनो ही इस प्रत्यर्पण प्रणाली के आदी हैं, और अव इसकी समाप्ति से वहुत से व्यक्तियो पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा और हो सकता है कि यह वात विना भेदभाव के धन लगाने की प्रवृत्ति में वाधक सिद्ध हो ।

प्रत्यर्पण की गणना के वर्तमान तरीके में वहुत सी पेचीदा और विस्तृत गणनाएँ करनी पड़ती हैं और कम्पनियो के कार्पोरेशन टैक्स निर्धारित होने तक देरी का अदेशा रहता है । इन कठिनाई से वचने का उपाय यह है कि कम्पनी एक दूसरा तरीका अपनाये, जिसके अनुसार कम्पनी अपने लाभाश घोपित करने से पूर्व ही कुल लाभाश में से अधिकतम दर पर आयकर घटाकर पूरी-पूरी राशि हिस्सेदारो में वाँट दे, और कर को सरकार के हिसाव में जमा करवाये। इस प्रकार कम्पनी अपनी कुल आय पर कार्पोरेशन टैक्स दे और कुल आय में से लाभाश की कुल राशि घटाने पर शेप रकम पर आयकर दे। इसके वाद कम्पनी के आयकर निर्धारण के समय ठीक-ठीक हिसाव किया जा सकता है। लाभाश-पत्रकों (डिविडेंड वारटो) को तैयार करने के तरीके में भी थोड़ा सा परिवर्तन करना पड़ेगा। ऊपर वताया हुआ उपाय वर्तमान कुल हिसाव करने के कार्य को (Grossing Procedure) आसान वनाने के साथ-साथ कम आमदनी वाले कोष्ठको के हिस्सेदारो को छूट का प्रमाणपत्र देने में भी सहायक होगा, और इस प्रकार प्रत्यर्पण के लिए मांग की जरूरत भी नही रहेगी, जिसे निपटाना इस समय असंतोप का कारण वना हुआ है।

इसके वाद आयोग ने व्यक्तिगत हिस्सेदारो के कर निर्वारण से सम्वद्ध लाभाशो पर कर लगाने के कुछ मुख्य पहलुओं पर विचार किया। १९३९ से पहले आयकर कानून में लाभांश या 'डिविडेंड' शब्द की कोई परिभापा नही थी। किन्तु पीछे से भारतीय आयकर अधिनियम की धारा २ (६ए) में इसकी परिभापा जोडी गई। लाभाश के सामान्यत: कानूनी तौर पर काम में लाये जानेवाले अर्थ में कुछ विशेप वातो का गिनाना जिन्हे अदालतो ने पूंजीगत प्राप्ति के रूप में कर लगने योग्य भाग घोपित किया था इन परिभापा की विशेपता थी।

लाभाश की परिभापा में से वोनस भाग के हट जाने से एक विवादास्पद सवाल उठ खड़ा होता है। वोनस भाग को लाभांश की परिभापा के अन्तर्गत मानने और न मानने के पक्ष-विपक्ष मे वहुत सी युक्तियां दी जा सकती हैं। किन्तु आयोग इसी नतीजे पर पहुँचा है कि "वोनस भाग आयकर कानून में समझे जा सकने योग्य शब्द के किसी भी अर्थ में आय नही है।" ब्रिटेन और अमेरिका, इन दोनो देशों के न्यायालयो के निर्णय भी इसी मत की पुष्टि करते हैं। आगे चलकर आयोग ने कहा है:—"हमें विश्वास है कि इस युक्ति में अधिक सार नहीं है कि हिस्सेदारो को वतौर आय के मिलनेवाले 'वोनस इश्यूज़' पर कर न लगाने से सार्वजनिक राजस्व में कोई हानि होगी।" आयकर से मुक्त वोनस भाग

के बँटवारे से तो कम्पनी और हिस्सेदारो दोनो को ही कुछ लाभ हुआ है । वोनस शेयरो के इश्यू करने पर थोडा-सा शुल्क लगाने की वात तो समझ में आ सकती है किन्तु उपार्जन को कम्पनी के पास ही वनाये रखने की भावना को वढावा देने की आवश्यकता होने के कारण इस बात की सिफारिश नही की गई। पर इस सुविवा के दुरुपयोग को और एक ही स्थान पर अधिक मात्रा में पूंजी के इकट्ठे हो जाने को रोकने के लिए वोनस भागो के 'इश्यू' करने पर सरकार को नियन्त्रण रखना चाहिए।

लाभाश शव्द की परिभापा में सुवार करने के लिए भी कुछ सुझाव रक्खे गये। कम्पनियो के डायरेक्टरो तथा हिस्सेदारो को दिये जाने वाले कर्जो और अगाऊ धन को, जिसमें सारभूत सार्वजनिक हित न हो तथा डिपाजिट सर्टिफिकेट और वेयरर सर्टिफिकेट के रूप में वितरण को भी लाभाश की परिभापा के अन्तर्गत किया जाना चाहिए। समाप्ति के ममय तक एकत्रित हुए लाभ के वितरण को, उस अवधि का विचार किये विना जिसमें कि लाभ हुआ हो, लाभाश समझा जाना चाहिए।

वोनस ऋणपत्रो (डिवेंचर) को लाभाश की परिभापा में से हटाने का प्रश्न भी उठाया गया, किन्तु ऐसा करने के लिए कोई उचित कारण नही है। कृपि से होनेवाली आय में से दिये गये लाभाश पर, जो अव तक आयकर से मुक्त है, कर लगाने का सवाल उठाया गया। लाभाश के कर-मुक्त आय में से दिये जाने से हिस्सेदार के कर निर्वारण के समय उसकी आयकर सम्बन्धी जिम्मेवारी पर कोई प्रभाव नही पडता। आयकर अधिनियम की सम्वद्ध धारा की रचना इस प्रकार की जानी चाहिए जिससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाये कि हिस्सेदार पर कर-निर्धारण के समय लाभाश पर पूरा-पूरा कर लगेगा चाहे कम्पनी के लाभ-कोष का रूप कुछ भी हो।

इटर-कार्पोरेट लाभाशो पर भी कर लगाने के कुछ सुझाव दिये गये थे, किन्तु वर्तमान कानून में परिवर्तन करने का कोई उचित कारण नही प्रतीत होता।

समामेलित आय पर कर की दर का विचार करते हुए कुछ विशेष बातो पर समान रूप से ध्यान देना आवश्यक है। क्योकि धनी हिस्सेदारो को मिलनेवाले लाभ पर अतिरिक्त कर भी लगता है, इसलिए कम्पनी के लाभ पर कर की दर व्यक्तियो पर लगनेवाले उच्चतम मार्जिनल कर के बरावर स्थिर नही की जा सकती। यदि कम्पनी के लाभ पर कर में विशेष कमी हुई, तो घनिष्ठ रूप से सम्वद्ध निगमो के धनी हिस्सेदारो में कम्पनी के लाभ के एक वडे भाग को कम्पनी में ही बनाये रखने की प्रवृत्ति वढेगी, और यदि दोनो मेंथोडा ही अन्तर हुआ, तो लाभ के उचित से बहुत अधिक बडे भाग के वितरण की प्रवृत्ति हो सकती है।

सन् १९४४ से भारतीय आयकर प्रणाली में अवितरित लाभ पर एक रियायत दी जाती रही है, और वर्तमान में ऐसे लाभ पर रुपये में १ आने के हिसाव से दी जानेवाली छूट फिलहाल चालू रक्खी जानी चाहिए।

आजकल रुपये में ४ ७५ आने की एकसार दर पर कुछ छूट के साथ निगम कर लगता रहा है। अपेक्षाकृत छोटी भारतीय कम्पनियो को कर सम्बन्धी एक रियायत भी दी गई है। इस रियायत को अधिक अच्छी तरह मे लागू करने के लिए और साथ ही कम्पनियो को

छोटी-छोटी इकाइओ मे वॅटकर रह जाने की प्रवृत्ति से दूर रखने के लिए थोडे निगम कर की रियायत पट्टिका प्रणाली के आधार पर सब विशेपक कम्पनियो पर लागू की जानी चाहिए। कर की दर कुल आय के पहले २५,००० रुपये पर १ आना प्रति रुपया और शेप पर २ आ० ९ पा० प्रति रुपया हो। ऊपर बताई गई रियायत उचित रूप में दर नियत करके सार्वजनिक अभारतीय कम्पनियो को भी दी जाये।

इसके बाद आयोग ने अवितरित लाभ के कुछ पहलुओं पर और विशेपकर आयकर अधिनियम की धारा २३ ए की आर्थिक प्रामाणिकता पर विचार किया। किसी ऐसी प्रणाली में, जिसमें कम्पनी के वितरित लाभ पर कर लगाना हिस्सेदार के व्यक्तिगत कर निर्धारण से सम्वद्ध है, उसमें लाभ के वितरण को स्थगित रखने या उसमें कमी करने की बात मे चतुरता का प्रयोग करके कर लगने से बच सकना अपेक्षाकृत अधिक आसान है। इसलिए कम्पनियो द्वारा ऐसे लाभ के वितरण को जिसमें सारभूत सार्वजनिक हित नही है, नियमित करने के उपाय खोज निकालने की आवश्यकता है। इस प्रकार के नियन्त्रण की व्यवस्था सब उन्नत देशो की कर प्रणालियों में विद्यमान है।

ऐसी कम्पनियो को, जिनमें सारभूत सार्वजनिक हित नही है, यह मानकर कि वितरित किये जानेवाले लाभ में से ६० प्रतिशत लाभ का वितरण हो चुका है, इस समय कर देना पडता है। यह भी व्यवस्था है कि यदि कम्पनियो के पास उनकी चुकता पूंजी तथा कर्ज पूंजी की—जो हिस्सेदारो की सम्पत्ति होती है—सयुक्त राशि के बराबर अथवा अपनी स्थायी मालियत के वास्तविक मूल्य के बराबर, इनमें जो भी राशि अधिक हो, अवितरित लाभ इकट्ठे हो जायें, तो उनका वितरणयोग्य सम्पूर्ण लाभ वितरित किया गया समझा जायेगा।

यह सुझाया गया है कि या तो इस व्यवस्था को रद्द कर दिया जाये या उसमे मौलिक सुधार किया जाये। इसके पक्ष में युक्ति यह दी जाती है कि यह व्यवस्था पूंजीनिर्माण में बाधक है, और इसके अनुसार विभिन्न प्रकार की कम्पनियो में भेद किया जाता है। ३,००५ कम्पनियो के कर-निर्धारण-सम्बन्धी आँकडो का विश्लेपण करने से पता चलता है कि अधिकाश निजी कम्पनियां घनिष्ठ रूप में अवस्थित निगम है, जिनमें से कुछ कम्पनियो के शेयरो के बडे बड़े हिस्से कुछ थोडे-से विशेप व्यक्तियो के गुटो के पास हैं। इसलिए ऐसी कम्पनियों के साथ सार्वजनिक कम्पनियो जैसा व्यवहार नही किया जा सकता। "सारभूत सार्वजनिक हित" किसे कह सकते है—इसकी वर्तमान परिभाषा में दो बड़ी कमियां हैं जिनका दूर किया जाना अत्यावश्यक है। पहली तो मतदान के अधिकार से सम्बद्ध है, और दूसरी सार्वजनिक शब्द की परिभाषा से। पहली के विपय में तो ऐसा होना चाहिए कि मतदान के अधिकार का सम्बन्ध वर्तमान समय में प्रचलित किसी एक विशेप दिन से न होकर वर्ष के किसी भी दिन से होना चाहिए। जनता के सदस्यो के मताधिकार को २५ प्रतिशत से बढाकर ५० कर देना चाहिए और हिस्सो का बहुमत—यानी ५० प्रतिशत या उससे अधिक—६ से कम व्यक्तियो के पास नहीं होना चाहिए। दूसरी के विपय में यह जरूरी है कि 'व्यक्ति' शब्द में उसके सम्बन्धी और मनोनीत व्यक्ति भी शामिल समझे जायें।

यह भी सुझाव दिया गया है कि वर्तमान ६० प्रतिशत वितरण के स्थान पर 'व्यापार की समुचित आवश्यकता' के आधार पर वितरण की दूसरी व्यवस्था चालू की जाए। ब्रिटेन और अमेरिका में 'व्यापार की समुचित आवश्यकता' क्या है, इस वात को लेकर बहुत वादविवाद और मुकदमेवाजी हुई है। इसलिए वर्तमान सक्षिप्त सिद्धान्त के स्थान पर विवादास्पद और अस्पष्ट विचारो पर आधारित एक दूसरे सिद्धान्त को मान लेना उचित नही है। और अव भी ६० प्रतिशत वितरण की व्यवस्था को पूरी कठोरता के साथ लागू नही किया जाता। वर्तमान कानून में लचीलापन है, "जिससे व्यापार की उचित शिकायतों का समाधान होना चाहिए।"

इस शिकायत में कोई तत्त्व नही है कि १०० प्रतिशत से अधिक अवितरित लाभ के एकत्रित होने पर लगे हुए प्रतिवन्ध के कारण रक्षित निधि के निर्माण पर दुष्प्रभाव पडता है, क्योकि समुचित व्यक्तिगत अतिरिक्त कर देने के पश्चात् रक्षित निधि के निर्माण के लिए शेष रोकड को काम में लाने से कम्पनी को रोकने के लिए कोई व्यवस्था नही है।

कम्पनियो के वहीखातो में दिखाये गये लाभ और कर योग्य लाभ में फर्क होने के कारण भी कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती है। वितरण योग्य लाभ की राशि का निर्णय, कर योग्य आय में से न केवल आयकर और देय निगम कर को घटाकर किन्तु राज्य सरकार या स्थानीय अधिकारी द्वारा लगाई गई कर की राशियाँ भी घटाकर किया जाना चाहिए, चाहे वह कर अशत या पूर्ण रूप से छूट दिये जाने के लिए ग्राह्य ही क्यो न हो।

बैंकिंग कम्पनियो की वितरण योग्य लाभ-राशि स्थिर करते समय अनुविहित रक्षित-निधि की आवश्यकताओं की ग्राह्यता के सम्बन्ध में एक उचित शिकायत है। उनके मामले में वितरण योग्य आय का निश्चय कर योग्य आय में से बैंकिंग कम्पनीज एक्ट की धारा १७ के अनुसार रक्षित निधि में हस्तान्तरित राशि को घटाने के पश्चात् किया जाना चाहिए।

जब सरुद्ध विप्रेषण राशियो (Blocked Remittances) को कर योग्य आय में शामिल किया जाये, तो एक वास्तविक कठिनाई पेश आती है। तत्सम्वन्धी कर दायित्व को, लाभ को ठिकाने लगाने पर लगी हुई पावन्दियो के ढीली किये जाने या हटाये जाने तक अनिश्चित-सी स्थिति में रक्खा जा सकता है।

यह दावा किया गया है कि वितरण की ५५ प्रतिशत सीमा, जिसके नीचे १०० प्रतिशत वितरण सम्वन्धी दण्ड धारा अब खुद ब खुद लागू होती है, व्यय की कुछ मदो की अग्राह्यता के परिणामस्वरूप हिसाब में दिखाये गये लाभ और कर योग्य लाभ में भेद होने के कारण उत्पन्न कमी की हालत में लागू नही होनी चाहिए। आयकर जाँच आयोग ने इस सम्बन्ध में कुछ सिफारिशें की थी, उन पर अमल करने के लिए उचित कानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए।

एक सुझाव यह दिया गया है कि आयकर अधिनियम की २३ ए धारा ऐसी कम्पनियों पर लागू नही होनी चाहिए जिनमें भाग पूँजी का ५० प्रतिशत या उससे अधिक ऐसी जनक कम्पनी (पेरेन्ट कम्पनी) के पास हो जिसमें सारभूत सार्वजनिक हित विद्यमान हो। ऐसी हालत में दी जानेवाली १०० प्रतिशत आर्थिक सहायता वस्तुत जनक कम्पनी का ही आवश्यक भाग है और यह समझा जा सकता है कि वह इसी रूप में है। किन्तु यह बात

दर के बराबर अतिरिक्त कर की दर निर्धारित नही की जा सकती, इसलिए हो सकता है कि हिस्सेदार लोग लाभ को आपस मे न बाँटकर कम्पनी में ही जमा रक्खे। इन सब बातों के बाव्जूद, वर्तमान प्रशासन सम्बन्धी तथा दूसरी मुश्किलो से बचने के लिए ऐसी कम्पनियो के वितरणयोग्य लाभ के वितरित भाग पर, सामान्य दर पर अतिरिक्त निगम-कर लगाया जाना चाहिए।

अपवचन और परिहरण

इसके पश्चात् आयोग ने अपवचन और परिहरण की समस्या पर विचार किया। इनसे राजस्व में होनेवाली हानि की पूरी पूरी मात्रा का अनुमान कर सकना मुश्किल है। छिपाये हुए धन के विषय में बताने के लिए वित्त मन्त्रालय द्वारा चलाये गये आन्दोलन से सम्बद्ध आँकडो से तथा केन्द्रीय राजस्व बोर्ड द्वारा प्रकाशित आँकडो से इस बात का पक्का सबूत मिलता है कि कर-अपवचन बहुत बडे परिमाण मे विद्यमान है। अपवचन के होने का मतलब आय पर कर लगाने के उपायो के मूल पर ही कुठाराघात है, और इसका परिणाम ईमानदार करदाता पर कर-भार का बढ जाना है। परिहरण और अपवचन, इन दोनों से ही राजस्व में हानि होती है, किन्तु परिहरण कुछ वैध सा प्रतीत होता है। परिणाम यह होता है कि ईमानदार नागरिक पर भार बढता जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि "इस तथ्य के प्रति जनता में जागृति पैदा की जानी चाहिए कि राजस्व में जितनी अधिक हानि होगी, ईमानदार करदाता पर उतना ही भार बढेगा।"

अपवचन की निन्दा तो अवश्य की जाती है, किन्तु परिहरण को एक प्रकार से वैध-सा माना जाता है। इस विचार का समर्थन नही किया जा सकता। वर्तमान परिस्थितियो में आयकर अधिनियम जैसे पेचीदा कानून में परिहरण की प्रवृत्ति का प्रचलन हो ही सकता है, अत यह आय-कर विभाग का कर्त्तव्य है कि वह राजस्व में आनेवाली कमियो पर कडी निगरानी रक्खे, और उनकी जल्दी रोकथाम करे।

अपवचन का मुकाबला बलपूर्वक लागू करानेवाले (एनफोर्समेण्ट) विभाग को मजबूत बनाकर किया जा सकता है। नये करदाताओ की खोज होनी चाहिए, बाहरी जाँच-पडताल द्वारा उनकी आय का ठीक-ठीक निर्धारण किया जाना चाहिए, बाह्य स्रोतो से आनेवाली सूचनाओ का आदान-प्रदान, उनका सग्रह और मिलान होना चाहिए और पर्याप्त मात्रा में किये गये अपवचन के मामलो पर कार्यवाही करने के लिए विशेष प्रबन्ध किया जाना चाहिए। जनता द्वारा निन्दा की जानी, करसग्रह के लिए नियमो का कडाई से लागू किया जाना, और आयकर की कार्यवाहियों में उचित प्रतिनिधित्व आदि अन्य ऐसी बातें है जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

१९३९ में धारा सभा में दिये गये वचन के अनुसार, आयकर-अफसरो द्वारा कई स्मृतिपत्र भेजे जाने के बावजूद बहुत से करदाताओ ने अपनी आय का ब्यौरा देने में देरी की और कुछ अन्य लोगो ने तो ब्यौरा बिलकुल ही नही भेजा।

इस प्रकार के कर-अपवचको को पकडने के लिए बाहरी जाँच-पडताल करनेवाले मनुष्यो की बडी सख्या में नियुक्ति जरूरी है। १९४८-४९ और १९५२-५३ के बीच इनके द्वारा

जाँच किये जानेवाले मकानो और दूकानो की संख्या २५,४७६ से बढ़कर २,२८,७६७ और इनके द्वारा संग्रह की गई, धन-राशि ९ लाख रुपये से बढ़कर २२ ४२ लाख रुपये हो गई। इस काम मे नियुक्त किये गये मनुष्यों की और इनके काम करने के तरीकों की जाँच की जानी चाहिए। आय-कर अधिनियम में एक विशेष धारा जोड़कर इस विभाग के कार्य को वैध बना दिया जाना चाहिए। जाँच-पडताल विभाग के एक उत्तरदायी अफसर को हिसाब की किताबों पर और विलेखों आदि पर पहचान के लिए निशान लगाने का कानूनी अधिकार होना चाहिए। जाँच-पड़ताल के कार्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इस विभाग के पास पर्याप्त वैध अधिकार होने चाहिएं।

आन्तरिक जाँच-पड़ताल, यानी रिकार्ड पर विद्यमान सूचना का आदान-प्रदान भी बहुत जरूरी है। इससे अपवंचन के पता लगाने में बहुत सहायता मिलेगी। स काम को अधिक अच्छे रूप में किये जाने की बहुत गुंजाइश दिखाई देती है, इसलिए प्रणाली को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने की दृष्टि से इसकी फिर जाँच की जानी चाहिए।

बाह्य स्रोतों से सूचना संग्रह के लिए विशेष प्रबन्ध चला आ रहा है। प्रत्येक आय-कर कमिश्नर के अधीन एक जाँच-पड़ताल-विभाग होता है, जब कि डायरेक्टर आफ इन्स्पैक्शन अन्तर्राज्यीय सूचना को एकत्रित करके उसका मिलान करने के पश्चात् उसका निपटारा करता है। वर्तमान प्रबन्ध की कार्यपद्धति में अभी सुधार की बहुत गुंजाइश है, और इस कार्य के लिए अतिरिक्त कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति के प्रश्न पर फिर से विचार किया जाना चाहिए। आय कर कमिश्नरों के स्तर पर 'इकनामिक इंटैलिजैन्स' को सुगठित करने के प्रश्न की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। सूचनाओं के संग्रह और मिलान का कार्य किस प्रकार और किस सीमा तक सुसगठित किया जा सकता है, इस बात की जाँच की जानी चाहिए।

आय कर विभाग तथा दूसरे केन्द्रीय राजस्व के विभागो, जैसे चुंगी, और केन्द्रीय उत्पाद-कर विभाग तथा राज्यीय राजस्व विभागों में परस्पर दृढ़ सम्बन्धों का होना बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। सूचना के परस्पर विनिमय के लिए संबद्ध कानूनो की गोपनीयता सम्बन्धी धाराओ में उचित परिवर्तन किया जाना चाहिए। आयोग के कथनानुसार "सामान्य सूचनाओं का केवल आदान-प्रदान ही पर्याप्त नहीं है किन्तु जरूरत इस बात की है कि प्रत्येक विभाग के अफसर दूसरे विभागो द्वारा की जानेवाली छानबीन के तरीकों को जाने और हर एक विभाग उन्हें आवश्यक सहायता प्रदान करे जिससे कि छानबीन का कार्य पूर्ण प्रभावकारी हो सके। यह कार्य कानून में आवश्यक सुधार करने के पश्चात् सम्बद्ध अधिकारियो में अधिक व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करके ही सम्पन्न किया जा सकता है।"

व्यक्तिशः करदाताओ की गतिविधियो के विषय में यदा कदा मुखबिरों द्वारा भी सूचना प्राप्त हो सकती है। यद्यपि जनमत मुखबिरो को इनाम दिये जाने के विरुद्ध है, किन्तु कुछ दूसरे देशो के आय कर विधान में तथा भारतीय चुंगी प्रशासन में भी इस प्रकार के इनामो के दिये जाने की व्यवस्था है। चुंगी के विषय में मुखबिरों की स्थिति कुछ दूसरे प्रकार की होती है। आयकर-विभाग में मुखबिरों को इनाम देने की प्रथा कुछ वर्ष से चालू है, किन्तु

इस प्रथा के गुणावगुणो पर विचार करने के लिए इतनी अवधि पर्याप्त नही है। इनाम देने की इस प्रथा मे बहुत से खतरे हैं। बहुत से मुखबिर विवेकहीन हो सकते हैं, और उनके द्वारा धमकी देकर पैसे वसूल करने की सम्भावना को नजर-अन्दाज नही किया जा सकता। इसलिए मुखबिरो के साथ वर्ताव में आयकर विभाग को बहुत सावधानी रखनी चाहिए। सरकार द्वारा दी जानेवाले इनामो की रकम अधिक नही हो सकती जब कि कर-अपवचन की राशि का परिमाण बहुत अधिक हो सकता है, ऐसी अवस्था में मुखबिर द्वारा कर-दाताओ से बडी-बडी रकमो के वसूल किये जाने का खतरा है।

'डायरेक्टर आफ इस्पैक्शन' के अधीन अन्यान्य स्रोतो से आई हुई सूचनाओ का मिलान करनेवाले विभाग का कार्य बहुत अच्छा रहा है, इसके कार्य का और अधिक विस्तार किया जाना चाहिए। कानून में आवश्यक सशोधन करके बैंको और बीमा कम्पनियो द्वारा जमा कर्ज़, रैमिटेंसेज़, उधार-पत्र और बीमा-पत्रकों के विषय में—एक निर्दिष्ट राशि से, जो इतनी उँची स्थिर की गई हो जिससे उन पर कम से कम भार पडे, अधिक होने पर—सूचना दी जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। कम्पनियो द्वारा वितरित किये जानेवाले लाभाश से सम्बन्धित सूचना के विषय में ५,००० रु० की सीमा को हटा देना चाहिए।

अपवचन के सन्देहात्मक मामलो की छानबीन तीन पृथक् अभिकरण, जैसे आय-कर जाँच-पडताल आयोग, केन्द्रीय-आयकर आयुक्त और 'विशेष वृत्त' (स्पेशल सर्कल) कर रहे हैं। आयकर जाँच-पडताल आयोग ने दिसम्बर १९५३ तक ४५ ९७ करोड रुपये तक की छिपाई हुई राशि का पता लगाया। मालूम यह पडा है कि सर्वोच्च न्यायालय के एक हाल के फैसले के कारण सरकार आयोग को और अधिक दिन तक कायम नही रखना चाहती तथा शीघ्र ही इसका विघटन करके शेष कार्य को विभागीय अभिकरण को सौंपना चाहती है। आयकर जाँच-पडताल आयोग ने अपने कार्यकाल में बहुत लाभदायक कार्य किया है, और कोई कारण नही दिखाई देता कि इसी आयोग को शेष मामलो मे भी क्यो न जाँच-पडताल करने दी जाय। विभागीय यन्त्र को सौंपे गये मामलो की—जो कि बडे बडे व्यापारी सगठनो से सम्बन्धित हैं—छानबीन करने में कठिनाई हो सकती है। आयोग के पास विशेष अधिकारों के होने पर भी कुछ लोगो द्वारा विलम्ब किये जाने के तरीके अपनाने की शिकायतें आई हैं। यदि जाँच-पडताल का कार्य साधारण आयकर अफसरो द्वारा किया गया, तो स्थिति के और अधिक बिगड जाने की सम्भावना है। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि केन्द्रीय आयुक्तो के होने के बावजूद सरकार को एक विशेष आयोग की नियुक्ति करनी पडी। ऐसा करने का कारण यह था कि केन्द्रीय आयुक्तो के पास आय-कर विभाग के कर निर्धारण करनेवाले साधारण अधिकारियो के ही अधिकार थे। सब सम्बद्ध तथ्यो पर विचार करने के बाद, अधिक मात्रा में किये गये अपवचन के मामलो में भी जाँच-पडताल करने के लिए आयकर-जाँच पडताल आयोग जैसे एक विभाग का रखना अधिक लाभदायक सिद्ध होगा। अत' एक पृथक् और विशेष विभाग सगठित किया जाना चाहिए और इसे आय-कर-प्रशासन के स्थायी अग के रूप में कायम रखना चाहिए। इसके पश्चात् केन्द्रीय आयुक्तों के पद समाप्त किये जा सकते हैं। एक उच्च-अधिकार-सम्पन्न आयोग को दिये

जानेवाले विस्तृत अविकार निश्चय ही केन्द्रीय आयुक्तो और विभागीय अफसरो को नहीं दिये जा सकते ।

"समझौतो" की शर्तों पर विचार और निर्णय करने के लिए एक अतिरिक्त-विभागीय आयोग वहुत ही उपयोगी संगठन सिद्ध होगा, तथा इस पर भ्रष्टाचार और पक्षपात के निर्मूल आक्षेप लगाये जाने का खतरा भी कम रहेगा।

अपवचन के पेचीदे मामलो की जाँच-पड़ताल करने के लिए कुछ आयकर आयुक्तों के अधीन हाल ही में विशेष वृत्त (स्पेशल सर्कल) वनाये गये थे। यह कदम ठीक दिशा में है, और धीरे-धीरे इस ओर आगे वढना चाहिए। इस कार्य के स्वरूप का ध्यान रखते हुए कर्मचारीवर्ग की नियुक्ति, शीघ्र ही सेवा से निवृत्त हो जानेवाले व्यक्तियो में से नही की जानी चाहिए ।

नियमो को उचित रूप में लागू कराने के लिए आय-कर विभाग को अतिरिक्त अधिकारो का दिया जाना भी जरूरी है। वर्तमान अवधि सम्वन्वी सीमा तथा आय कर आयुक्तो की पहले से आज्ञा प्राप्त करने के नियम को हटाकर पिछले मामलो पर फिर से विचार करने के अधिकार को वढ़ा देना चाहिए। आयकर अविकारियो की स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि वे अपने से छिपाई गई साक्षी आदि को खोज निकालने में समर्थ हो। आयकर अधिकारियो को आयुक्त की पूर्व आज्ञा प्राप्त करके किसी भी व्यापारी अहाते में प्रवेश करने का, हिसाव और विलेखो की जाँच करने का, उन पर पहचान के लिए निशान लगाने का, नकलें तैयार करने या विलेखो को जब्त करने का तथा सस्थान की तलाशी लेने का अधिकार होना चाहिए। उन्हे यह भी अविकार होना चाहिए कि वे आयुक्त की पूर्व आज्ञा से 'सेफ डिपाजिट वोल्ट' और 'लाकर' में रक्खे हुए सामान की जाँच कर सकें।

कर देने में छल-कपट करनेवालो को हतोत्साहित करने के लिए दण्ड देने के वर्तमान नियमो को और अधिक कडा किया जाना चाहिए। इग्लैंड की तरह दण्ड की अविकतम सीमा को वढाकर अपवचित किये गये कर की तिगुनी मात्रा के वरावर कर दिया जाना चाहिए, तथा अपवचन के लिए प्रोत्साहन देने को मुख्य अपराध की तरह ही दडनीय अपराध घोपित किया जाना चाहिए।

यह सुझाव दिया गया है कि अपवंचन की जड पर कुठाराघात करने का एक तरीका यह हो सकता है कि कर-निर्धारण के मामलो में कर-निर्वारको के प्रतिनिधित्व विपयक शर्तों पर कडा नियत्रण रखा जाय। सनद प्राप्त गणको द्वारा आय-व्यय परीक्षा की उपयोगिता भी सीमित है। गणको के राष्ट्रीयकरण की प्रणाली को प्रारम्भ करने का सुझाव भी दिया गया, किन्तु अभी योग्य गणको की वर्तमान सख्या इस कार्य के लिए पर्याप्त नही है। हिसाव के दो 'सैट' रखकर तथा नकदी लेनदेन को व्यापार में न दिखाकर किये जानेवाले अपवचन की समस्या का भी इससे समाधान नही हो सकता। राष्ट्रीयकृत गणको द्वारा की जानेवाली आय-व्यय-परीक्षा के क्षेत्र के परिभापा सम्वन्वी नियम वनाने में भी वडी कठिनाइयाँ पेश आयेंगी।

दण्ड से छुटकारा देने का लालच देकर छिपाई हुई रकम के विपय में स्वयं सूचना देने की प्रवृत्ति को उत्साहित करने का सुझाव दिया गया है। १९२३ में इग्लैड में 'स्वयं स्वीकृति'

का तरीका प्रारम्भ किया गया था और तव से राजस्व अधिकारियो के साथ पिछले हिसाव को निपटाने का यह एक माना हुआ उपाय है। आश्वासन केवल इस वात का दिया जाता है कि मुकदमा नहीं चलाया जायगा और दिये गये सहयोग के अनुपात मे दण्ड में भी कमी कर दी जायेगी।

भारत में आयकर जाँच पडताल आयोग ने निपटारे की इस प्रणाली का खूव उपयोग किया। सन् १९५१ और ५२ में छिपाई गई रकम के विपय में स्वय वताने के उपाय का भी प्रयोग किया गया। इस उपाय का एक अग यह था कि प्रत्येक करदाता से यह वचन ले लिया जाता था कि यदि उसके द्वारा दी गई सूचना सच्ची और पूरी पूरी नही हुई तो कानूनी रूप से कर-निर्धारण का कार्य फिर से प्रारम्भ किया जा सकेगा। कानूनी तौर पर जिस अवधि के लिए फिर से कर-निर्धारण किया जा सके, उसके पहले की अवधि भी इस प्रकार स्वय सूचना देने में सम्मिलित थी। इस आन्दोलन का कुछ ऐसा प्रभाव पडना सम्भव है कि अव आयकर विभाग का रुख आय-कर-विषयक अपराधो के सम्वन्ध में कडा न रहा। आयोग का कहना है कि "सामान्यत ऐसा प्रभाव नैतिकता को हानि पहुँचाएगा और इसलिए हम इस व्यवस्था के पहले की तरह फिर से दोहराये जाने की सिफारिश नहीं करते।"

यदि कम्पनियाँ कर-निर्धारण का कार्य समाप्त होने से पूर्व ही परिसमापित हो जाए तो परिसमापित कम्पनियो से कर की प्राप्ति करने में एक समस्या उठ खडी होती है। आय-कर की जाँच-पडताल करनेवाले आयोग ने सिफारिश की थी कि इडियन कम्पनीज एक्ट में इस प्रकार का परिवर्तन किया जाए कि एक साल के कर-निर्धारण की अधिमान्य (प्रिफरेन्शियल) अदायगी हो सके। ऐसा उस हालत में हो यदि कम्पनियों का कर-निर्धारण परिसमापित होने से पहले के समय तक के लिए किया जा रहा हो चाहे वह कार्य कम्पनी के परिसमापित होने के पश्चात् तक भी पूरा न हुआ हो। कम्पनी कानून समिति ने यह विचार व्यक्त किया था कि इस समस्या का समाधान अधिमान्य अदायगी को अधिकार देने से नही हो सकता, किन्तु कर-निर्धारण की कार्यवाही को ऊर्जस्विता से पूरा करने से होगा। कर-निर्धारण-प्रणाली के वर्तमान रूप में कम्पनियो के परिसमापित होने से पूर्व ही कर-निर्धारण की कार्यवाही को पूरा कर सकना सम्भव नही होता। इसलिए एक विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए कि विचाराधीन कर-निर्धारण को पूरा किया जाये, तथा परिसमापित कम्पनी से कर की माँग की जा सके। ऐसी माँग को सम्पत्ति के विरुद्ध अधिमान्य ऋण के समान माना जाना चाहिए।

हिस्सेदारो से कर वसूल करने का प्रश्न भी—जब कि परिसमापित कम्पनी से वह वसूल न किया जा सका हो—उठाया गया है। इस युक्ति में काफी बल है कि व्यक्तिगत उत्तर-दायित्व हिस्सेदारो पर नही होना चाहिए, किन्तु घनिष्ठ रूप से नियन्त्रित कम्पनियो द्वारा अदायगी के परिहरण की सम्भावना भी बहुत वास्तविक है। इसलिए ऐसी भी व्यवस्था की जानी चाहिए कि हिस्सेदारो से कर की वसूली उसी हालत में की जाए जब कि कम्पनी परिसमापित हो गई हो और उस कम्पनी में सारभूत सार्वजनिक हित न हो। वसूली तभी की जानी चाहिए जव कि आयकर कमिश्नर को यह विश्वास हो जाए कि कर-परिहरण के लिए ही यह परिसमापन किया गया है।

परिसमापित कम्पनी की सम्पत्ति के शीघ्र बँटवारे के मुकावले में राजस्व के हितों की रक्षा के लिए ऐसी भी व्यवस्था की जानी चाहिए कि जव तक आयकर अफसर से कर की अदायगी का प्रमाणपत्र प्राप्त न कर लिया जाए तव तक कम्पनियो के रजिट्रार को उस कम्पनी का नाम पजिका से नही हटाना चाहिए।

प्रशासन यन्त्र

इसके पश्चात् आयोग ने आयकर विभाग के प्रशासन यन्त्र के विषय में पडताल शुरू की। यदि कर का सग्रह करने वाला यन्त्र सरलता और शीघ्रता के साथ कार्य न करे, और कर सम्वन्धी कानूनों को लागू करनेवाले व्यक्ति अपने व्यवहार में अधिक से अधिक कुशलता और धैर्य का परिचय न दें, तो अत्यन्त उचित कर भी कष्टदायक सिद्ध हो सकते है। प्रशासन से सम्वन्ध रखनेवाली समस्याओ पर चार हिस्सो में विचार किया जा सकता है।

(१) कर निर्धारण की प्रणाली
(२) सग्रह तथा प्रत्यादान का तरीका
(३) अपील करने की प्रणाली
(४) व्यक्तियों की पर्याप्तता और प्रशिक्षण

कर निर्धारण प्रणाली के विषय में, हिसाव किताव को स्वच्छन्दता से अस्वीकार करने, प्रत्यर्पण और कर निर्धारण में विलम्व करने, कैश क्रैडिट कार्य, कर निर्धारण कार्य में उच्च अधिकारियो द्वारा हस्तक्षेप, कर दाताओ से व्यवहार करते समय जनता से सम्पर्क के लिए कम समय और थोडा ध्यान देने के विषय में वहुत सी शिकायतें रही हैं।

केन्द्रीय राजस्व वोर्ड को, हिसाव के ठीक से न रखने विषयक शिकायतो के सम्वन्ध मे आयकर अधिकारियो द्वारा स्वीकार्य रूप में हिसाव न रखने के कारणों का पता लगाने के लिए जाँच करवानी चाहिए तथा इस जाँच के परिणामो को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान कर निर्धारण प्रणाली में परिवर्तन की सम्भावनाओ पर विचार करना चाहिए।

प्रत्यर्पण मे देरी होने से सम्वन्धित शिकायतो में कुछ सचाई अवश्य है, फिर भी हाल ही में इस विपय में कुछ सुधार हुआ है तथा निरीक्षण करनेवाले सहायक आयुक्तो को हिदायतें दी गई हैं कि तीन महीने से अधिक समय के अनिर्णीत मामलो में वे व्यक्तिगत रूप से छान-बीन करें। आयुक्तो द्वारा विना पूर्व सूचना के आकस्मिक निरीक्षण, नमूने के तौर पर अनिर्णीत मामलो का लेखा परीक्षण, छूट-प्रमाण पत्रो का अधिक प्रयोग तथा इन सुविधाओ की प्राप्ति के अधिक प्रचार से काफी हद तक यह शिकायत दूर हो सकती है। जहाँ तक अपीलो के निर्णयो के कारण प्रत्यर्पण की समस्या की विशालता का सम्वन्ध है वहाँ तक इस विपय मे कोई आकडे उपलव्ध नहीं हैं। केन्द्रीय राजस्व वोर्ड को पहले से चले आए दावो की विस्तृत जाँच करवानी चाहिए, ऐसे क़दम उठाने चाहिए जिनसे विलव न हो और जाँच के परिणामों को प्रकाशित करना चाहिए।

कर निर्धारण में विलम्व विषयक शिकायत सर्वथा ठीक है। कर निर्धारण के ऐसे वर्गों के विषय में, जिनसे राजस्व की प्राप्ति अधिक मात्रा में नहीं होती, और जिनकी संख्या

अनिर्णीत कर निर्धारण के मामलो की ८० प्रतिशत है, हिसाव किताव की जांच के सामान्य स्तर को कुछ नीचा करके प्रयोग में लाया जाय। कर निर्धारण के अनिर्णीत मामलो का एक वार निपटारा हो जाने के वाद फिर से उनके इकट्ठा न होने के लिए उपाय खोजा जा सकता है। प्रशिक्षित व्यक्तियो की अपर्याप्तता और कर निर्धारण करने वाले अफसरो की वार वार वदली होने के कारण ये मुश्किलें और भी वढ जाती हैं। ऐसी हिदायतें दी जानी चाहिए कि फाइलो पर समाप्त किये गये काम की पूरी पूरी तफसील और उसका नतीजा लिखा होना चाहिए तथा वदली के समय यदि अपूर्ण मामलो की सख्या अधिक होने का अन्देशा हो तो सामान्यत अफसरो की वदली नही की जानी चाहिए। इस वात का ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि निष्फल जांच पडताल करने की प्रवृति में सुधार हो।

कैश क्रैडिट्स के वरते जाने विपयक शिकायतो के सिलसिले में इन क्रैडिटो के स्रोत की जांच पडताल का किया जाना जरूरी है। प्रति तीन वर्षों में करदाताओ द्वारा शुद्ध सम्पत्ति (नेट वर्थ) विवरण दिये जाने से इस मामले में कुछ हद तक सुधार हो सकता है।

उच्च अधिकारियो द्वारा कर-निर्धारण करनेवाले अफसरो को हिदायतें जारी करने में कोई मौलिक बुराई नहीं है क्योकि आयकर के मामलो में तथ्यो के निर्धारण में और कानून के लागू होने के विपय में जांच पडताल की अवश्यकता पडती है। किन्तु वर्तमान स्थिति में इस प्रकार सुधार किया जा सकता है कि आयकर अधिकारियो को सम्पूर्ण रूप से आयुक्तो के अधीन करके और 'डायरेक्टर आफ इन्स्पेक्शन' की सम्मति को आयुक्त द्वारा, करदाता को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर देने के बाद, आयकर अधिकारी के पास भेजे जाने का नियम वनाया जाय। राजस्व के हित में कानून में इस प्रकार का सशोधन किया जाना चाहिए कि कमिश्नर अपने द्वारा कर निर्धारण के समय किये गये सीधे हस्तक्षेप के मामलो में करदाताओ को उनके विचार सुनने की सुविधा दे सके। उन सव मामलो में, जिनमें आयुक्त ने हस्तक्षेप किया हो—सीधी अपील सुननेवाले ट्रिब्युनल के पास अपील होनी चाहिए, अपील सुननेवाले सहायक आयुक्त के पास नही।

नोटिस की अवधि की कमी विषयक शिकायतें की गई है। इस सम्बन्ध में कम से कम आठ दिन की अवधि सुझाई गई है, जो उचित प्रतीत होती है। यदि कभी आठ दिन से कम का समय दिया जाय, तो ऐसा किये जाने के सम्भावित कारणो का पता लगाने के लिए कभी कभी नमूने के तौर पर सर्वेक्षण करना भी लाभदायक सिद्ध होगा।

यह एक आम विश्वास सा है कि आयकर विभाग प्रत्यर्पण करने के मामले में उदासीन रहता है, प्रत्येक करदाता को जव तक अन्यथा साबित न हो जाय, अपवचन का अपराधी समझा जाता है, तथा इस विभाग में करसग्रह के निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के आधार पर ही पदोन्नति होती है। ऐसा मानने के लिए कोई वास्तविक कारण नही है किन्तु प्रत्यर्पण की कार्यवाही को सरल वनाने से और अफसरो द्वारा करदाताओ के बयानो के चुनाव में—जिनके लिए पक्का सवूत माँगा जा सकता है—उचित विवेक का प्रयोग करने से वहुत हद तक जनता के मन से इस भावना को दूर किया जा सकता है।

जनता से सम्पर्क कायम रखने का महत्त्व केवल कर निर्धारण और प्रत्यर्पण की कार्य-विधि तक ही सीमित नही है। विभागीय व्यक्तियो का सामान्य व्यवहार, आयकर-कार्यालयों में करदाताओ को मिलने वाली सुविधाएँ, स्थगित करने और किश्तो द्वारा कर अदायगी की अनुमति देने में दिखाई गई उदारता तथा अपेक्षाकृत कम साधन सम्पन्न करदाताओ को लाभ, भत्ते, यथा-नियम मिलनेवाली छूट आदि के भरने में उचित परामर्श का शीघ्र देना आदि सभी वातें इसमें सहायक है। केन्द्रीय राजस्व वोर्ड को एक नियमित आन्दोलन चला कर अधिकारियो और कर्मचारी वर्ग को जन सम्पर्क के महत्त्व को समझाना चाहिए।

वम्वई और कलकत्ता स्थित आयकर कार्यालयो में नियमित जनसम्पर्क अधिकारी कार्य करते हैं। इस कार्य के लिए नौजवान, परिश्रमी, कुशाग्र वुद्धि, तथा इस प्रकार के काम के लिए जिनमें उत्साह हो, ऐसे अधिकारियो की नियक्ति होनी चाहिए। इग्लैंड और अमेरिका में इस समस्या की ओर विशेष ध्यान दिया गया है इसलिए आवश्यक पृष्ठभूमि और अनुभव वाले किसी अधिकारी को इस प्रकार के प्रशिक्षण की एक योजना तैयार करने के लिए इन देशों में प्रतिनिधि वनाकर भेजा जाना चाहिए।

प्रत्येक आयकर आयुक्त के साथ गैर सरकारी परामर्श दाताओ की एक छोटी सी सलाहकार परिषद् भी सयुक्त होनी चाहिए।

कर-सग्रह और प्रत्यादान के लिए काम में लाये जानेवाले तरीके आय पर कर निर्धारण के लिए निर्दिष्ट तरीको के समान ही महत्त्वपूर्ण है। १ अप्रैल १९५३ को एक वडी राशि वकाया पडी थी ; किन्तु वकाया रकम सग्रह समस्या का मूल यह है कि कलक्टरो के पास भूमि राजस्व के वकाया के रूप में प्रत्यादान के लिए अनिर्णीत रूप में विद्यमान वड़ी माँगें पड़ी हैं। यह मालूम हुआ है कि केन्द्रीय राजस्व वोर्ड ने राज्य सरकारो के साथ केवल आय-कर-सग्रह विषयक कार्य के लिए विशेष राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति का प्रवन्ध किया है। जहाँ कही यह योजना विद्यमान नही है, वहाँ इसका विस्तार किया जाना चाहिए तथा दो दो वर्ष वाद इस योजना के प्रचलन की प्रणाली पर विचार होना चाहिए।

उद्गम स्थान पर ही किराये, व्याज तथा अन्य वार्षिक भुगतानो से होनेवाली आय पर कर काट लेने की पद्धति के विस्तार का सुझाव दिया गया था। इस पद्धति के विस्तार में कुछ क्रियात्मक वाधाएँ हैं तथा इससे होनेवाले लाभ के मुकावले में नुकसान अधिक है, इसलिए उद्गम स्थान पर ही कर काट लेने की पद्धति के विस्तार की आवश्यकता नही है।

'अर्जन के साथ साथ कर दो' (पे ऐज़ यू अर्न) की वर्तमान व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। अग्रिम कर के भाग पर—जो कर निर्धारित देय राशि की अपेक्षा अधिक होता है—व्याज की दर को वढाकर ४ प्रतिशत किया जाय, तथा 'लाभाशो' से होने वाली आय को कमीशन के प्रकार की आय के, जिसके लिए एक विशेष कार्य पद्धति की व्यवस्था है—समान स्तर पर रक्खा जाना चाहिए। अगले वर्ष का कर निर्धारण ज्यो ही पूरा हो जाय त्यों ही आय कर अधिकारियो के लिए डिमाड को फिर से जाँचना आवश्यक कर दिया जाना चाहिए। कानून में सुधार करके पिछले किये गये कर निर्धारण के आधार पर या आगणित आधार पर आयकर अधिकारी से नोटिस प्राप्त किये विना ही करदाताओ द्वारा

कर की अग्रिम अदायगी को लाजमी कर देना चाहिए। कठिनाई वाले सच्चे मामलो में अदायगी की तारीखो में फेर-बदल करने के लिए आयकर-अधिकारियो को अपने विवेक का प्रयोग करने का अधिकार होना चाहिए तथा धारा १८ ए के अधीन लगाये गये दण्ड रूप व्याज के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

पजीकृत फर्मों तथा पत्नी, बच्चो और 'वेनामीदारो' को हस्तान्तरित की गई सम्पति पर कर वसूल करने में कुछ मुश्किलो का सामना करना पडता है। कानून में ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि विभाग के लिए फर्मों के प्रमादी हिस्सेदारो के विरुद्ध कार्यवाही करना सम्भव हो, तथा पत्नी और बच्चो द्वारा धारित सम्पत्ति की आय के अनुपात में कर निर्धारण को विभक्त कर देने की और उनमें से प्रत्येक से अलग अलग माँग की जाने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसी भी व्यवस्था हो कि विभाग 'वेनामीदारो' द्वारा धारित सम्पति के विरुद्ध कार्यवाही कर सके।

अपीलो की कार्य-विधि से सम्वन्धित शिकायतो को तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है। निपटारे में देरी, अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तो पर केन्द्रीय राजस्व बोर्ड का नियन्त्रण तथा कुछ विशेष आदेशो के विरुद्ध अपील करने के अधिकार का न होना।

अपीलो में होने वाली देरी के विषय में, अवशिष्ट अपीलो का निपटारा करने के लिए और अधिक अपील सुनने वाले सहायक आयुक्तो की नियुक्त के रूप में कुछ प्रभावपूर्ण कदम उठाये जाने जरूरी हैं। इस सम्वन्ध में जब कर की विवादास्पद रकम कम हो और सिद्धान्त सम्वन्धी कोई प्रश्न उपस्थित न हो, तो आयुक्तो को अपीलो को समाहित (Compound) करने के विशेष अधिकारो को देने के प्रश्न पर भी विचार किया जा सकता है।

अपील सुनने वाले ट्रिब्युनल की तरह अपील सुनने वाले सहायक आयुक्तो को केन्द्रीय राजस्व वोर्ड के नियन्त्रण से मुक्त रखने की आवश्यकता की बात कही गई है। १९४८ में आयकर जाँच पडताल आयोग ने यह विचार प्रकट किया था कि अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तों ने सामान्यत अपने कर्त्तव्यो का पालन पक्षपात रहित होकर उत्तम प्रकार से किया है, और अपील के निर्णय से असम्वद्ध विचारो से उनकी स्वतन्त्रता किसी भी रूप में दूपित नही हुई है। तथापि आयोग ने उन्हे विधि मन्त्रालय के नियन्त्रण में कर दिये जाने की सिफारिश की थी। १९५२ में आयोग—जिसमें तब दूसरे व्यक्ति सम्मिलित थे—इस परिणाम पर पहुँचा कि सिद्धान्त या पिछले अनुभव के आधार पर ऐसे परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रशासन में कुशलता की दृष्टि से परिदर्शक (Inspecting) और अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तो में परस्पर फेर बदल करना वाछनीय है, और इस प्रकार का फेर बदल तभी आसानी से किया जा सकता है यदि दोनो एक ही प्रशासकीय नियन्त्रण में हो। व्यवहारत अपने कर्त्तव्य पालन में अपील सुननेवाले सहायक आयुक्त निष्पक्ष रहे हैं और आयुक्तो या केन्दीय राजस्व बोर्ड के विचारो से इनके प्रभावित हो जाने का खतरा–तथ्य और कानून दोनो के आधार पर अपील सुननेवाले ट्रिब्युनल को अपील कर सकने की व्यवस्था विद्यमान रहने के कारण-कम हो गया है। नियन्त्रण के हस्तान्तरण में खर्च भी अधिक होगा क्योकि उस हालत में विभागीय प्रतिनिधियो

को अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तो के आगे पेश होना जरूरी हो जायगा। इससे विभाग में कर्मचारियो के सम्बन्ध में असभव सी स्थिति भी उपस्थित हो जायगी। एपीलेट ट्रिब्युनल द्वारा किये गये निर्णयो के विवेचन से सूचित होता है कि अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तो के ९१ प्रतिशत आदेशों को ट्रिब्युनल ने सही मानकर पुष्ट कर दिया। इसमें "कोई सदेह नही कि अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तों द्वारा दिये गये आदेश अधिकाशत: न्याय्य और उचित हैं और उनके वित्त मत्रालय के नियन्त्रण में रहकर कार्य करने के कारण उनकी कार्यकारिता में कोई अन्तर नही आया है।" सब बातो पर विचार करने के बाद वर्तमान ढाँचे को अपरिवर्तित रखने में ही लाभ दृष्टिगोचर होता है। दूसरे उन्नत देशों की इस विषय की कार्यप्रणाली भारत जैसी ही है।

करदाताओ में अधिक विश्वास पैदा करने के लिए अपील सुननेवाले विभाग के साथ गैर सरकारी व्यक्तियो के सहयोग के लिए एक सुझाव दिया गया है। देश की वर्तमान अवस्था में इस योजना के सफल होने की बहुत कम आशा है।

अपीलें सुननेवाला वर्तमान यन्त्र, आयकर अधिनियम की कुछ धाराओ के अनुसार—यथा आयकर अधिनियम की धारा १८ ए (६), २३ ए, ३५, ४३ और आयकर नियम ६ बी—दिये गये आदेशो पर कार्यवाही नही कर सकता। इन धाराओ के अन्तर्गत आनेवाले विषय महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए कानून में ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि उपर्युक्त सब मामलो में अपील की जा सके।

इसके पश्चात् आयोग ने कर्मचारी वर्ग, सगठन और पद्धतियो से सम्बन्ध रखने-वाली समस्याओ पर विचार किया।

विभाग की वास्तविक कर्मचारी-सख्या को जितना जल्दी हो सके, कार्य के लिए आवश्यक स्तर पर पहुँचा देना चाहिए, और इसके लिए यदि सार्वजनिक लोक सेवा आयोग द्वारा चुनाव का सामान्य तरीका अपर्याप्त हो, तो विशेष भरती का तरीका अपनाया जाना चाहिए।

विभाग में एक बडी सख्या अनुभवहीन अधिकारियो की है, जितना जल्दी हो सके उनके स्थान पर अनुभवी अधिकारियो को नियुक्त करने के लिए कदम उठाना चाहिए।

अधिकारियो के प्रशिक्षण में जन सम्पर्क के पहलू पर अब की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

निचली श्रेणी के कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण का एक प्रोग्राम बनाया जाना चाहिए, जिसके अन्तर्गत आयकर कानून के मूल तत्त्व, सगठन सम्बन्धी बातें और कार्य करने की प्रणाली आदि हो।

सब स्तरो पर "ट्रेनिंग रिजर्व" के लिए समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

इस सगठन और इस विभाग के व्यक्तियो के विषय में केवल एक बार सन् १९४६ में जाँच पड़ताल की गई थी। तब से बहुत से परिवर्तन हो गये हैं। प्रशिक्षित व्यक्ति आसानी से उपलब्ध नही हो पाते और योग्य व्यक्तियो की कमी के पूरा होने में कुछ समय अवश्य लगेगा। किन्तु पद्धतियो के पुनर्विन्यास और वर्तमान व्यक्तियो का अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए समुचित प्रशिक्षण प्रोग्राम द्वारा ऐसा किया जा सकना सम्भव है।

कर की अग्रिम अदायगी को लाजमी कर देना चाहिए। कठिनाई वाले सच्चे मामलो में अदायगी की तारीखों में फेर-बदल करने के लिए आयकर-अधिकारियो को अपने विवेक का प्रयोग करने का अधिकार होना चाहिए तथा धारा १८ ए के अधीन लगाये गये दण्ड रूप ब्याज के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

पजीकृत फर्मों तथा पत्नी, बच्चो और 'बेनामीदारो' को हस्तान्तरित की गई सम्पति पर कर वसूल करने में कुछ मुश्किलो का सामना करना पडता है। कानून में ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि विभाग के लिए फर्मों के प्रमादी हिस्सेदारो के विरुद्ध कार्यवाही करना सम्भव हो, तथा पत्नी और बच्चो द्वारा धारित सम्पत्ति की आय के अनुपात में कर निर्धारण को विभक्त कर देने की और उनमें से प्रत्येक से अलग अलग मांग की जाने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसी भी व्यवस्था हो कि विभाग 'बेनामीदारो' द्वारा धारित सम्पति के विरुद्ध कार्यवाही कर सके।

अपीलो की कार्य-विधि से सम्बन्धित शिकायतो को तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है। निपटारे में देरी, अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तो पर केन्द्रीय राजस्व बोर्ड का नियन्त्रण तथा कुछ विशेष आदेशो के विरुद्ध अपील करने के अधिकार का न होना।

अपीलो में होने वाली देरी के विषय में, अवशिष्ट अपीलो का निपटारा करने के लिए और अधिक अपील सुनने वाले सहायक आयुक्तो की नियुक्त के रूप मे कुछ प्रभावपूर्ण कदम उठाये जाने जरूरी हैं। इस सम्बन्ध में जब कर की विवादास्पद रकम कम हो और सिद्धान्त सम्बन्धी कोई प्रश्न उपस्थित न हो, तो आयुक्तो को अपीलो को समाहित (Compound) करने के विशेष अधिकारो को देने के प्रश्न पर भी विचार किया जा सकता है।

अपील सुनने वाले ट्रिब्युनल की तरह अपील सुनने वाले सहायक आयुक्तो को केन्द्रीय राजस्व बोर्ड के नियन्त्रण से मुक्त रखने की आवश्यकता की बात कही गई है। १९४८ में आयकर जाँच पडताल आयोग ने यह विचार प्रकट किया था कि अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तो ने सामान्यत अपने कर्त्तव्यो का पालन पक्षपात रहित होकर उत्तम प्रकार से किया है, और अपील के निर्णय से असम्बद्ध विचारो से उनकी स्वतन्त्रता किसी भी रूप में दूषित नही हुई है। तथापि आयोग ने उन्हें विधि मन्त्रालय के नियन्त्रण में कर दिये जाने की सिफारिश की थी। १९५२ में आयोग—जिसमें तब दूसरे व्यक्ति सम्मिलित थे—इस परिणाम पर पहुँचा कि सिद्धान्त या पिछले अनुभव के आधार पर ऐसे परिवर्तन की कोई आवश्यकता नही है। प्रशासन में कुशलता की दृष्टि से परिदर्शक (Inspecting) और अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तों में परस्पर फेर बदल करना वाछनीय है, और इस प्रकार का फेर बदल तभी आसानी से किया जा सकता है यदि दोनो एक ही प्रशासकीय नियन्त्रण में हो। व्यवहारत अपने कर्त्तव्य पालन में अपील सुननेवाले सहायक आयुक्त निष्पक्ष रहे हैं और आयुक्तो या केन्दीय राजस्व बोर्ड के विचारो से इनके प्रभावित हो जाने का खतरा—तथ्य और कानून दोनो के आधार पर अपील सुननेवाले ट्रिब्युनल को अपील कर सकने की व्यवस्था विद्यमान रहने के कारण-कम हो गया है। नियन्त्रण के हस्तान्तरण में खर्च भी अधिक होगा क्योकि उस हालत में विभागीय प्रतिनिधियो

को अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तो के आगे पेश होना जरूरी हो जायगा। इससे विभाग में कर्मचारियो के सम्बन्ध में असभव सी स्थिति भी उपस्थित हो जायगी। एपीलेट ट्रिब्युनल द्वारा किये गये निर्णयों के विवेचन से सूचित होता है कि अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तो के ९१ प्रतिशत आदेशों को ट्रिब्युनल ने सही मानकर पुष्ट कर दिया। इसमें "कोई संदेह नही कि अपील सुननेवाले सहायक आयुक्तों द्वारा दिये गये आदेश अधिकाशत: न्याय्य और उचित हैं और उनके वित्त मंत्रालय के नियन्त्रण में रहकर कार्य करने के कारण उनकी कार्यकारिता में कोई अन्तर नही आया है।" सव वातो पर विचार करने के वाद वर्तमान ढाँचे को अपरिवर्तित रखने में ही लाभ दृष्टिगोचर होता है। दूसरे उन्नत देशो की इस विषय की कार्यप्रणाली भारत जैसी ही है।

करदाताओ में अधिक विश्वास पैदा करने के लिए अपील सुननेवाले विभाग के साथ गैर सरकारी व्यक्तियो के सहयोग के लिए एक सुझाव दिया गया है। देश की वर्तमान अवस्था मे इस योजना के सफल होने की वहुत कम आशा है।

अपीलें सुननेवाला वर्तमान यन्त्र, आयकर अधिनियम की कुछ धाराओ के अनुसार—यथा आयकर अधिनियम की धारा १८ ए (६), २३ ए, ३५, ४३ और आयकर नियम ६ वी—दिये गये आदेशो पर कार्यवाही नही कर सकता। इन धाराओ के अन्तर्गत आनेवाले विषय महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए कानून में ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि उपर्युक्त सव मामलो में अपील की जा सके।

इसके पश्चात् आयोग ने कर्मचारी वर्ग, सगठन और पद्धतियो से सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओ पर विचार किया।

विभाग की वास्तविक कर्मचारी-सख्या को जितना जल्दी हो सके, कार्य के लिए आवश्यक स्तर पर पहुँचा देना चाहिए, और इसके लिए यदि सार्वजनिक लोक सेवा आयोग द्वारा चुनाव का सामान्य तरीका अपर्याप्त हो, तो विशेष भरती का तरीका अपनाया जाना चाहिए।

विभाग में एक वडी सख्या अनुभवहीन अधिकारियो की है, जितना जल्दी हो सके उनके स्थान पर अनुभवी अधिकारियो को नियुक्त करने के लिए कदम उठाना चाहिए।

अधिकारियो के प्रशिक्षण में जन सम्पर्क के पहलू पर अव की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

निचली श्रेणी के कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण का एक प्रोग्राम वनाया जाना चाहिए, जिसके अन्तर्गत आयकर कानून के मूल तत्त्व, संगठन सम्वन्धी वातें और कार्य करने की प्रणाली आदि हो।

सव स्तरो पर "ट्रेनिंग रिजर्व" के लिए समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

इस सगठन और इस विभाग के व्यक्तियो के विषय में केवल एक वार सन् १९४६ में जाँच पड़ताल की गई थी। तव से वहुत से परिवर्तन हो गये हैं। प्रशिक्षित व्यक्ति आसानी से उपलव्ध नही हो पाते और योग्य व्यक्तियो की कमी के पूरा होने में कुछ समय अवश्य लगेगा। किन्तु पद्धतियो के पुनर्विन्यास और वर्तमान व्यक्तियो का अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए समुचित प्रशिक्षण प्रोग्राम द्वारा ऐसा किया जा सकना सम्भव है।

सगठन और आयकर विभाग के तरीको के अध्ययन के लिए एक छोटी समिति नियुक्त की जानी चाहिए, यदि आवश्यक हो तो इसके लिए ऐसे विशेपज्ञो की सहायता ली जानी चाहिए जिन्होने वडे सगठनो की कुशल आय-व्यय परीक्षा में विशिष्टता प्राप्त कर रखी हो।

केन्द्रीय राजस्व वोर्ड के वर्तमान आँकडा सम्वन्धी सगठन की स्थापना १९४० में हुई थी। केन्द्रीय आँकडा सम्वन्धी सगठन ने आयकर सम्वन्धी आँकडो के सग्रह और प्रस्तुत करने के तरीको में सुधार के लिए सुझाव पेश करने को एक कार्यकारी दल की स्थापना की थी। इस दल ने सन् १९५२ में अपनी रिपोर्ट पेश की, और उसकी सिफारिशें सरकार के विचाराधीन हैं। वर्तमान समय में उपलव्ध आँकडा सम्वन्धी सामग्री की कमियो पर वित्त आयोग ने आलोचना की थी। आँकडो के सग्रह करने के तरीके में, जिस रूप में वे प्रस्तुत किये जाते है, गम्भीर कमिया हैं। आयोग का कहना है "हम समझते हैं कि केन्द्रीय राजस्व वोर्ड के पास अधिक उपयुक्त मामग्री होनी चाहिए जिससे वह आयकर कानून और प्रशासन सम्वन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर सरकार को उचित सलाह दे सके। उदाहरणार्थ—प्रारम्भिक और अतिरिक्त मूल्यपात के भत्ते सम्वन्धी आँकडे, आय के अनुक्रम से डिविडेण्ड का भुगतान, आय की कुछ निर्दिष्ट श्रेणियो के व्यक्तियो की आय के उद्गम का विश्लेपण इत्यादि कुछ ऐसी सामग्री हैं जो हमारी सम्मति में विना किसी कठिनाई के इकट्ठी की जा सकती है और नीति सम्वन्धी महत्त्वपूर्ण निर्णय करने के लिए जिसकी उपादेयता निर्विवाद है। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि केन्द्रीय राजस्व वोर्ड के आँकडे सम्वन्धी विभाग को समुन्नत किया जाय और इस विषय में विशेप सुझाव देने के लिए विशेपज्ञो की एक समिति नियुक्त की जाय।"

सम्पत्ति शुल्क

१९२५ में सस्थापित कर जाँच समिति ने भारत में सम्पत्ति शुल्क लागू करने की सिफारिश की थी। किन्तु इस प्रकार के शुल्क के लागू करने के मार्ग में सवैधानिक तथा अन्य प्रकार की कठिनाइयाँ थी। एक दूसरी मुश्किल हिन्दू मयुक्त परिवार प्रणाली की विशेषता के कारण भी थी। अन्त में उत्तराधिकार शुल्क के स्थान पर सम्पत्ति शुल्क लगाने का निर्णय किया गया और हिन्दू कानून के अनुसार सहभागी (कोपार्सेनरी) हितो पर लगाये गये शुल्क को अन्तर्गत करने के लिए विशेष कानूनी व्यवस्था की गई।

सम्पत्ति शुल्क अधिनियम, १९५३ के अनुसार १५ अक्टूवर १९५३ को या इसके वाद से किसी व्यक्ति की मृत्यु के उपरान्त प्राप्त होनेवाली सम्पत्ति पर एक कर लगता है। किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उत्तराधिकार में जानेवाली सारी सम्पत्ति को, कुछ छोटे छोटे अपवादो को छोडकर, एक जायदाद के रूप में एकत्रित किया जायेगा। सहभागी सम्पत्ति को और मृत व्यक्ति की शेष जायदाद को मिलाकर बनी हुई कुल जायदाद के हिस्सो के लिए छूट की अलग अलग सीमायें निश्चित की गई हैं। जायदाद का मूल्य व्यक्ति की मृत्यु के समय उन सम्पत्तियो के वाजार मूल्य पर कूता जायगा, जिनको मिला कर वह जायदाद बनी है। कुछ अपवर्जनो, छूटो, और अपकर्पो की भी व्यवस्था की गई है।

कानूनी परिहरण के प्रयत्नो को निष्फल करने के लिए इस अधिनियम मे वहुत सी व्यवस्थाएँ रक्खी गई हैं। सयुक्त हिन्दू परिवारो में सहभागी हितो से निर्मित सपत्ति के प्रथम ५०,००० रु० तथा दूसरी कर लगने योग्य सम्पत्ति के प्रथम १,००,००० रु० शुल्क से मुक्त हैं। अवशिष्ट सम्पत्ति पर खड प्रणाली के अनुसार, जो प्रथम खण्ड पर ५ प्रतिशत से लेकर ५०,००,००० रु० से अधिक सम्पत्ति पर ४० प्रतिशत तक हो सकता है, वर्धमान दर से कर लग सकता है।

सम्पदा शुल्क की कार्य-पद्धति का अभी वहुत थोडा अनुभव है, इसलिए आयोग को इसकी दर या वनावट के सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नही सुझाया गया है। कुछ व्यक्ति छूट की सीमा को अनावश्यक रूप से ऊँची समझते है। इस दिशा में धीरे धीरे आगे वढने के लिए पर्याप्त कारण है, किन्तु सरकार को छूट में कमी करने की सम्भावनाओ का ध्यान रखना चाहिए, तथा इस कर का इकट्ठा करने के लिए उपयुक्त कर्मचारियो की भरती के लिए सव सम्भव प्रयत्न करने चाहिए। छूट की सीमा में कमी करने से सग्रह खर्च में असगत रूप से वृद्धि हो सकती है, और अधिक छूटो की व्यवस्था का प्रश्न भी उठ सकता है। आयोग ने कहा है: "हमारा विचार है कि कुल मिलाकर ऐसे परिवर्तनो को नये कर की कार्य पद्धति में अधिक अनुभव प्राप्त किये जाने तक के लिए स्थगित रक्खा जाए।"

ऐसा सुझाव दिया गया है कि सरकार द्वारा चुने गये नये औद्योगिक उपक्रमो में लगाये गये धन को मृत व्यक्ति की जायदाद के प्रधान मूल्य के अन्तर्गत न गिना जाये। इस समय सम्पदा शुल्क को, पूंजी को खतरे में डालने के लिए उत्तेजना देनेवाले एक साधन के रूप में प्रयुक्त करने का कोई कारण नही ज्ञात होता।

उपहारो पर भी कर लगाये जाने का सुझाव दिया गया है। सिद्धान्त रूप मे तो यह वहुत आकर्षक प्रस्ताव है, किन्तु इसको लागू करने से पहले सम्पत्ति शुल्क की कार्यपद्धति के पर्याप्त अनुभव की आवश्यकता है। इसलिए इस स्थिति में उपहार कर लगाना वाछनीय नही है।

सपत्ति कर, नियन्त्रक के निर्णयो के विरुद्ध अपीलो को सुनने के लिए अपील सुननेवाले एक स्वतन्त्र ट्रिब्युनल की स्थापना का प्रश्न भी उठाया गया है। पहले का सम्पत्ति-कर अधिनियम वहुत प्रौद्योगिक और जटिल है, और "फिलहाल केन्द्रीय राजस्व वोर्ड के ही पास अपील सुनने का अधिकार रखने में वहुत लाभ है।"

यह भी सुझाव दिया गया है कि कर की अदायगी अचल सम्पत्ति, शेयर और सिक्युरिटियो के रूप में की जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। अधिनियम में किश्तो द्वारा अदायगी किये जाने के लिए लचीली व्यवस्था है, और यह समाश्वासन दिया गया है कि वास्तविक मुश्किलात के मामलो को निपटाते समय सहानुभूति के साथ विचार किया जायगा। फिर, इग्लैण्ड में भी केवल अपवाद स्वरूप ही अचल संपत्ति के रूप में कर की अदायगी स्वीकार की जाती है।

भारत में सम्पत्ति शुल्क कानून की दृष्टि से, अर्जित की हुई और उत्तराधिकार में

प्राप्त सम्पत्ति में या उत्तराधिकारी की सगोत्रता के आधार पर कोई भेद नही किया जाता। उत्तराधिकार शुल्क लगाने के लिए भी कानून में कोई व्यवस्था नही है। शुल्क-मुक्त सम्पत्ति का न्यूनतम मूल्य तो अन्य देशो की अपेक्षा वहुत उँचा है, किन्तु कर की दरें वरावर वहुत नीची हैं। देश में धन की विषमता के क्षेत्र, और मात्रा दोनो को कम करने के लिए इसे एक प्रभावपूर्ण साधन वनाने की दृष्टि से सम्पत्ति की प्रणाली और दर, दोनो में परिवर्तन की सिफारिशें करने के लिए यह अच्छा मामला है। विदेशो के अनुभव से स्पष्ट है कि सम्पत्ति शुल्क का व्यक्तिगत वचत के परिमाण पर वहुत ही थोडा प्रभाव पडता है। सम्पत्ति शुल्क का भारत की आर्थिक प्रणाली में न केवल राजस्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भाग है, अपितु सम्पत्ति की विद्यमान असमानता को कम करनेवाले साधन के रूप में भी है। आयोग ने इस विषय में कहा है "हमारा यह निश्चित मत है कि वर्तमान दशा की अपेक्षा इसे अधिक प्रगतिशील दिशा में ले जाने के लिए इसमें अवश्य परिवर्तन करने पडेंगे हम सिफारिश करते हैं कि अधिक अनुभव होने के साथ साथ दरो को वढाने के लिए इन पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। बहुत शीघ्र विचार के लिए हम केवल इस परिवर्तन की सिफारिश करते हैं कि मृत्यु से पूर्व समय की—जिसमें किसी जीवित व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति को दिये गये उपहार पर (इटर वाइवस गिफ्ट्स) सम्पत्ति-कर लग सकता है—वर्तमान निर्दिष्ट दो वर्ष की अवधि को वढाकर ५ वर्ष कर दिया जाय।"

जिन्स कर

केन्द्रीय सरकार के क्षेत्र में जिन्स करो के अन्तर्गत आयात शुल्क निर्यात शुल्क, और उत्पाद-शुल्क आते हैं। केन्द्रीय सरकार के कुल कर राजस्व में जिन्स करो का भाग समय समय पर वदलता रहा है। मुख्यत आयात टैरिफ के विकास के कारण १९२०-२१ और १९२५-२६ के बीच में इसमें महत्त्वपूर्ण विस्तार हुआ। १९२५-२६ और १९३८-३९ के मध्य अप्रत्यक्ष करो के हिस्से में कम ही परिवर्तन हुआ, यद्यपि आयात शुल्को, उत्पाद-शुल्को और नमक कर के सापेक्ष महत्त्व में विभिन्नता रही। १९४८-४९ तक नये उत्पाद-शुल्को के लगाये जाने के बावजूद, युद्धकालीन प्रत्यक्ष कर पद्धति के विकास, आयात शुल्क की दरो में कमी, व्यापार के ढांचे में परिवर्तन और नमक कर समाप्त करने के कारण एक सारभूत गिरावट आई। तब से आयात शुल्क और आयात के परिमाण में वृद्धि तथा निर्यात शुल्को और केन्द्रीय उत्पाद-कर से होनेवाले राजस्व में महत्त्वपूर्ण विस्तार के कारण पर्याप्त वृद्धि भी हुई है। केन्द्रीय कर राजस्व में चुगी और उत्पादकरो का भाग जहाँ १९२०-२१ में ६३ ५ प्रतिशत था वहाँ वह १९३८-३९ में बढकर ७५·३ हो गया। १९४८-४९ में यह कम होकर ४७ ३ प्रतिशत रह गया किन्तु १९५३-५४ में फिर बढकर ६० ८ प्रतिशत हो गया।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर कुछ निर्दिष्ट जिन्सो के मामले में, अपवाद छोडकर, आयात शुल्क की सामान्य दर ७॥ प्रतिशत थी। १९२१ में इस सामान्य दर को वढ़ाकर ११ प्रतिशत किया गया, और फिर १९२२ में ५१ प्रतिशत कर दिया गया। १९३१ तक, सरक्षण के उद्देश्य से किये गये परिवर्तनो के सिवाय, उपर्युक्त दरो में क्रियात्मक रूप से कोई

परिवर्तन नही हुआ। विशेष कारणो से समय समय पर अलग अलग करो को समयोचित कर दिया जाता था।

१९३१ में आयात टैरिफ की सामान्य दर २५ प्रतिशत पर रक्खी गई, किन्तु विभिन्न जिन्सो पर शुल्को के ऊर्ध्वमुख सशोधन के परिणाम स्वरूप अधिभार की दरो में विभिन्नता रही। द्वितीय महायुद्ध के पूर्ववर्ती वर्षों में और उसके कुछ वाद भी वजट की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए कई पृथक् वस्तुओ पर शुल्को की दरो में वृद्धि की गई थी। वित्त अधिनियम, १९४२ द्वारा सब शुल्को के १/५ का कुल अधिभार लगाया गया। यह नियम १९५१ तक प्रतिवर्ष जारी रक्खा गया। साथ ही साथ ऐसे शुल्क की—जिस पर कोई अधिभार नही लगाया गया था—दरो के विषय में कुछ स्थायी व्यवस्थापन भी किये गये थे।

१९४८ में टैरिफ में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। उस वर्ष 'जनरल एग्रीमेंट आन टैरिफ एण्ड ट्रेड' सस्था के अधीन दिये गये वचनो को पूरा किया गया। औद्योगिक कारखानो और यन्त्रो पर शुल्क में कमी की गई, जब कि उद्योगो के प्रयोग में आनेवाले कच्चे माल की कुछ किस्मो पर से या तो शुल्क को समाप्त कर दिया गया या उसमें कमी कर दी गई। विलास की वस्तुओ पर दर वढा दिये गये।

महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो का अगला सिलसिला कोरिया युद्ध के प्रारम्भ होने के वाद शुरू हुआ। १/५ अधिभार को वढाकर १/४ कर दिया गया, तथा टैरिफ में अन्य समायोजन किये गये। वित्त अधिनियम, १९५३ की विशेषता उपभोक्ता सामग्री की कुछ किस्मो पर लगने वाले शुल्क की दरो में सारभूत वृद्धि रही। १९२०-२१ में आयात शुल्क भारत सरकार के कुल कर राजस्व का ३८ ३ प्रतिशत और आयात के मूल्य का ७ ३ प्रतिशत था। १९५३-५४ तक राजस्व के प्रति उसकी प्रतिशत मात्रा गिरकर २८·६ रह गई, किन्तु आयात के मूल्य के प्रति उसकी प्रतिशत मात्रा वढकर २१ ८ हो गई।

आयात की दरो की वनावट में परिवर्तन आयात शुल्क से होनेवाली प्राप्ति की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण रहे हैं। अन्न का वड़े परिमाण में आयात, जो शुल्क-मुक्त रहा है, आयात शुल्को के अनुपात में कमी होने का कारण रहा है। तैयार माल की अपेक्षा औद्योगिक आवश्यकताओ का महत्त्व वढ़ता जा रहा है।

उपभोक्ता सामग्री से होनेवाले राजस्व पर न केवल दरो के परिवर्तन का प्रभाव पड़ा है, अपितु उसी समुदाय के संगठन के परिवर्तन का भी प्रभाव हुआ है।

युद्ध से पूर्व के समय में निर्यात शुल्क से होनेवाले राजस्व में ध्रुवता वनी रही। युद्ध के पश्चात् से निर्यात शुल्को को नया महत्त्व मिल गया है।

द्वितीय महायुद्ध तक नमक राजस्व का एक मुख्य स्रोत था, किन्तु प्रत्यक्ष करो में वृद्धि और उत्पाद कर में विस्तार हो जाने के कारण इसका भाग कम होता गया; तथा जव इस पर से शुल्क हटाया गया, तव कर राजस्व में नमक कर का भाग केवल ३ प्रतिशत रह गया।

नमक शुल्क के अलावा, भारत में पहला उत्पाद-शुल्क सन् १८९४ में कपास के सूत पर लगाया गया। सन् १८९६ में सूत पर लगनेवाले इस शुल्क को मिल के कपड़े पर लगने वाले शुल्क के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया। जनता का मत कपडे पर लगने वाले

उत्पाद-शुल्क के हमेशा विरुद्ध रहा है, और प्रथम राजकोशीय आयोग (Fiscal Commission) ने इसके समाप्त किये जाने की सिफारिश की थी। अन्त में इसे सन् १९२६ में हटा दिया गया।

सन् १९१७ मे मोटर स्पिरिट पर और सन् १९२२ में मिट्टी के तेल पर उत्पाद-शुल्क लगाया गया था। सन् १९३० में चाँदी पर भी शुल्क लगाया गया था, किन्तु वर्मा के पृथक् हो जाने के कारण अव इससे राजस्व की उपलब्धि नही होती।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्को के विस्तार में सन् १९३४ का वर्ष एक सीमा-चिह्न रहा है, खाँड, दियासलाई और 'इस्पात के इन्गट्स' पर—जो सरक्षण की नीति के कारण स्थापित हुए उद्योग थे—उस वर्ष शुल्क लगाया गया था।

दूसरे विश्व-युद्ध में राजस्व को वढानेवाले वहुत से उपायो की खोज की गई। सन् १९४१ में टायरो पर उत्पाद-शुल्क लगाया गया था। १९४३ में वानस्पतिक उत्पादनो और तम्बाकू पर कर लगाया गया, तम्बाकू पर कर लगाया जाना—जो अभी तक सगठित उद्योगो के उत्पादन तक ही सीमित था—केन्द्रीय उत्पाद कर पद्धति में परिवर्तन का एक चिह्न था।

सन् १९४४ में कहवा, चाय और सुपारी को भी उत्पाद-शुल्को के अन्तर्गत ले आया गया। सन् १९४८ में सुपारी पर से शुल्क हटा दिया गया।

सन् १९४९ में मिल के वने कपडे को पुन' केन्द्रीय उत्पाद-कर के अन्तर्गत ले आया गया। सन् १९५४ में नकली रेशम, सीमेण्ट, सावुन और जूतो पर शुल्क लगा दिया गया।

सन् १९२०-२१ और १९५३-५४ के मध्य में केन्द्रीय उत्पाद-शुल्को से होनेवाली कुल आय २ ८५ करोड रुपये से वढकर ९२ ३४ करोड रुपये हो गई, और कुल कर राजस्व में इसका भाग ४ ७ प्रतिशत से बढकर २२ प्रतिशत हो गया।

उत्पाद-शुल्क अधिकतर निर्दिष्ट थे, और मूल्य में होनेवाले परिवर्तनो के कारण समय समय पर इनमें समायोजन नही किया जाता था। दरो में परिवर्तन के कारण ही अधिकतर समय समय पर शुल्को में वृद्धि हुई। खपत के वढ़ने के परिणाम स्वरूप राजस्व में होनेवाली वृद्धि १९३८-३९ और १९४८-४९ के बीच लगभग २५ प्रतिशत तथा १९४८-४९ और १९५३-५४ के वीच में २७ प्रतिशत रही।

खाँड, लोहा और इस्पात, सूती वस्त्र और दियासलाई पर लगनेवाली चुंगी और उत्पाद शुल्कों के तुलनात्मक आपात के अध्ययन से पता चलता है कि उत्पाद शुल्कों को अपेक्षाकृत साधारण स्तरो पर—जव कि घरेलू उत्पादन ने आयातो का स्थान ले लिया था—लगाया गया। जिन्सो पर कर लगाने के द्वारा राजस्व की प्राप्ति को स्थिर रखने के लिए उत्पाद-शुल्को के और भी अधिक उपयोग के लिए अभी क्षेत्र दिखाई देता है।

आयात शुल्क

आयात शुल्को के वर्तमान ढाँचे के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि दरो में वृद्धि कर के इन स्रोतो द्वारा राजस्व में वृद्धि करने की सभावनाएँ कुल मिलाकर थोडी हैं। जिन वस्तुओ

पर ३० प्रतिशत या कम आयात शुल्क लगता है, उनसे राजस्व में अनुभवनीय वृद्धि की सभावना नही। यद्यपि कुछ समायोजन की सभावनाएँ है, किन्तु दरो में वृद्धि के लिए बहुत कम गुजाइश है। आयात-कर-राजस्व मे होनेवाली हानि को तो स्वीकार करना ही पडेगा। कुछ मामलो में—जैसे मोटर स्पिरिट और मिट्टी के तेल के विषय में—तो उत्पाद-शुल्क सम्बन्धी हानि को स्वतः पूरा करनेवाली वृद्धि हो जायेगी। दूसरे मामलों में उपयुक्त उत्पाद-शुल्क अवश्य ही लगाना पडेगा।

हाल के वर्षों में आयात शुल्क की दृष्टि से व्यापार की बनावट और राजस्व में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आयात व्यापार की मुख्य मदो और हाल के वर्षो की गतिविधियो पर विस्तृत पुर्नविचार करने से ज्ञात होता है कि राजस्व में ठोस रूप में हानि की सभावना दिखाई देती है; इस हानि का अधिक भाग, मोटर-स्पिरिट, मिट्टी का तेल और कच्ची कपास के आयात में होने वाली कमी के परिणामस्वरूप होगा। इस कमी के कुछ भाग की पूर्ति मोटर स्पिरिट, मिट्टी के तेल और कपड़े पर लगने वाले उत्पाद-शुल्क की अनुरूप वृद्धि से हो जायगी। इस वृद्धि के लिए गुजाइश रखने के बाद भी आयात शुल्को से होनेवाले राजस्व में कुछ कमी आने की सभावना है।

आयात नियन्त्रण से राजस्व का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है; कुछ तो इसलिए कि आयात की जानेवाली वस्तुओ के ढाँचे पर इसका प्रभाव पड़ता है और कुछ इसलिए कि आयात को सीमित करनेवाले साधन के रूप में टैरिफ की अपेक्षा 'कोटे' पर अधिक भरोसा होने से इसका भी राजस्व पर प्रभाव पडता है। विदेशी विनिमय की स्थिति की माँग के अनुसार राजस्व की प्राप्ति की दृष्टि से आयात नियन्त्रण प्रणाली मे सुधार की सभावनाओं को सदा ध्यान में रखना आवश्यक है। आयात शुल्क से होनेवाले राजस्व के अधिक भाग की प्राप्ति कुछ विशेष मदो से ही होती है जिन्हें पर्याप्त मात्रा में आयात की जाने की अनुमति मिली हुई है; फिर भी थोड़े बहुत समायोजन की गुजाइश अवश्य है। शुल्को की वृद्धि के साथ ही कुछ जिन्सो के आयात में उदारता बरतने सम्बन्धी सरकार के हाल के निर्णय से सूचित होता है कि ऐसे सुधारो द्वारा होनेवाले राजस्व की सभावना से सरकार बेखबर नही है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौतो का भी आयात और आयात से होनेवाले राजस्व पर प्रभाव पड़ता है। ऐसे समझौतो के व्यापारिक मूल्य को, उनके कारण होने वाली राजस्व की हानि के मुकाबिले में संतुलित करना पड़ता है।

'जनरल एग्रीमेण्ट ऑन टैरिफ एण्ड ट्रेड' के परिणाम स्वरूप राजस्व में होनेवाली हानि मोटे रूप में १२०४ करोड़ रुपये की अनुज्ञप्त (Conceded) वस्तुओ के आयात के कुल मूल्य के मुकाबले में ८५ लाख पये थी। यदि आयात के मामले में उदारता-पूर्ण नीति का पालन किया जाय, तो जी० ए० टी० टी० समुचित रूप से राजस्व की प्राप्ति के मार्ग में बाधक होगा।

अभी थोडे दिनो की बात है कि कुछ वस्तुओ के विषय में राजस्व के कारणो से तथा संरक्षण देने के लिए इस प्रकार के दायित्वो से मुक्ति लेना आवश्यक हो गया था।

राजकोशीय आयोग का यह विचार है कि भारत को जी० ए० टी० टी० का अनुगामी रहना चाहिए। उन्होने समझौते की वातचीत के पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ सिद्धान्त स्थिर किये थे, पर समझौते का राजस्व पर क्या असर रहता है, इसकी उन्होंने जांच नही की। जब जी० ए० टी० टी० पर पुर्नविचार होगा, तो निस्सन्देह राजस्व की आवश्यकताओ और व्यापारिक तत्त्वो में सतुलन रक्खा जायगा।

राष्ट्रमडलीय वरीयता (Commonwealth Preference) दूसरी वडी अन्तर्राष्ट्रीय वाग्वद्धता है। वरीय वस्तुओ के आयात-मूल्य के विश्लेपण से ज्ञात होता है कि भारत के आयात में उनकी प्रधानता यथेष्ट मात्रा में स्थिर रही है तथा वरीय वस्तुओ के भारतीय बाजार में इग्लैड का भाग वहुत वढ गया ह।

निर्यात की दिशा में भारत को प्राप्त वरीयता का सम्वन्ध मुख्यत पटसन की वस्तुओ, चाय, कहवा, ऊनी वस्तुओ, बिस्कुट और नारियल की जटा से निर्मित चटाइयो तथा अन्य बहुत से कच्चेमाल जैसे वानस्पतिक तेल, हड्डियाँ, चमडे और खालो से है।

वरीयता के कारण राजस्व में होने वाली हानि का अनुमान ३ ५ करोड रुपये—२ ६ करोड रुपये इग्लैण्ड से होने वाले आयात पर और ० ९ करोड रुपये उपनिवेशो से होनेवाले आयात पर है। यदि ऐसी वस्तुओ के लिए गुजाइश रख ली जाय—जिनकी भारत की माँग के १० प्रतिशत से कम मात्रा या ९० प्रतिशत से अधिक मात्रा वरीयता प्राप्त देशो द्वारा भेजी जाती है तो ऐसी दशा में वस्तुत कोई वरीयता नही दी जाती, इस दशा में राजस्व में होनेवाली सम्भावित कमी घटकर २ ३ करोड रुपये रह जायगी, और इसमें से २ १ करोड रुपये की कमी इग्लैण्ड से होनेवाले आयात के कारण होगी। होनेवाले दूसरे फायदो के मुकाबले में इस लागत का सतुलन तो करना ही होगा, मुख्यत. इस वात पर ध्यान देना पडेगा कि निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाए।

आयात शुल्क से होने वाले अधिकाश राजस्व की प्राप्ति कुछ मुख्य जिन्सो से ही होती है, और इनसे राजस्व की बडी रकम मिलती ही रहेगी। १९५३-५४ में आयात शुल्क का २/३ भाग वस्तुओ के ११ वडे समुदायो से प्राप्त हुआ था, जो भविष्य में भी राजस्व के महत्त्वपूर्ण स्रोत रहेगे। "व्यापारी नीतियो के राजस्व सम्बन्धी परिणामो पर सावधानीपूर्वक निगाह रखने की आवश्यकता है, फिर भी इनके अधिक महत्त्वपूर्ण होने की सम्भावना नही है।"

आयात शुल्को से राजस्व में होनेवाली कमी के अस्थायी होने की ही सम्भावना है; आर्थिक विकास के कारण राष्ट्रीय आय के स्तर में उन्नति होने से उपभोक्ता सामग्री के आयात को प्रोत्साहन मिलेगा।

निर्यात शुल्क

निर्यात शुल्क भारतीय राजकोशीय प्रणाली का एक मुख्य अग रहा है। सन् १८६७ से पहले कुछ निर्यात शुल्क लगाये गए थे, किन्तु उस वर्ष के बाद अधिकाश शुल्को को समाप्त कर दिया गया। सन् १९१४ में केवल चावल पर ही शुल्क लगता था। सन् १९१६ में सबसे पहले

पटसन पर निर्यात शुल्क लगाया गया था, जो अब तक जारी है। सन् १९१९ में चमडे और खालों पर शुल्क लगाया गया था, पर १९३५ में इसे हटा लिया गया। दूसरे महायुद्ध में सूती कपड़ो और सूत पर निर्यात शुल्क लगाया गया था, पर १९४५ में इसे निर्यात उपकर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

सन् १९४६ से निर्यात शुल्को को नई प्रमुखता हासिल हुई, कुछ वस्तुओ पर नये सिरे से शुल्क लगाया गया, और पुराने शुल्को को बढा दिया गया। १९५१-५२ में निर्यात शुल्को से होनेवाले राजस्व की रकम लगभग ९१ करोड रुपये की उच्चतम राशि तक पहुँच गई थी और तब यह रकम कुल चुगी राजस्व का ४० प्रतिशत थी। निर्यात शुल्क केवल राजस्व का एक मुख्य स्रोत रहा है, किन्तु इसका उपयोग कुछ आर्थिक उद्देश्यो के लिए भी किया गया है।

युद्ध से पूर्व के निर्यात शुल्क मुख्यतः जिन्सों से, जिनकी स्थिति निर्यात-बाज़ार अपेक्षाकृत मजबूत थी—मामूली राजस्व प्राप्त करने के लिए थे। सन् १९२१-२२ के राजकोशीय आयोग ने निर्यात शुल्को को बरतने में सावधानी रखने के लिए कहा, और यह सुझाव दिया कि उनका लगाना तभी ठीक है—जब कि उनका भार प्रधानत. विदेशियो पर ही पडे। यह बात ठीक है कि सामान्य परिस्थितियों में केवल साधारण शुल्क जो एकाधिकार और अर्ध-एकाधिकारवाले निर्यात तक ही सीमित हो—लगाना चाहिए, किन्तु यह जरूरी नही है कि शुल्क का भार सदा केवल विदेशियो पर ही पडे। निर्यात शुल्को के लगाने से विशेषरूप से कठिन समस्याएँ पैदा हो सकती हैं, पर राजस्व प्राप्ति के उद्देश्य से उनके उचित उपयोग की बात की उपेक्षा नही की जा सकती।

युद्धोत्तर काल में निर्यात शुल्क दूसरे प्रयोजनो के लिए भी लगाये गये थे, जैसे मुद्रास्फीति की स्थिति के कारण होनेवाले प्रभाव को रोकने के लिए, घरेलू मूल्यो में स्थिरता लाने के लिए तथा सरक्षण के लिए।

टैरिफ की सूची में विद्यमान वस्तुओ के विवेचन से स्पष्ट है कि चाय पर लगनेवाले शुल्क से इस व्यापार को क्षति पहुँचे बिना राजस्व की प्राप्ति निश्चित है। मैंगनीज के कच्चे धातु और सिगरेट, सिगार और चुरुट पर लगनेवाले शुल्क से, विदेशो में अच्छी माँगवाली और एकाधिकार रहित जिन्सो से राजस्व शुल्क प्राप्त होने की सभावनाओ का पता चलता है। ज्यो-ज्यो निर्यातों का क्षेत्र विविध होता जायगा, ऐसे शुल्को के लिए गुंजाइश भी विस्तृत हो जायेगी। मजबूत निर्यात-बाजार वाली जिन्सो से प्राप्त होने वाले राजस्व की उपलब्धि इतनी स्थिर नही हो सकती, इसलिए बदलने वाली परिस्थितियो की दृष्टि से समय समय पर दरो में उपयुक्त समायोजन करना पड़ेगा।

रुपये के मूल्यह्रास के परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति विरोधी उपाय के रूप में मुद्रास्फीति सम्बन्धी बाह्य तत्त्वो के प्रभाव को रोकने के लिए बहुत से निर्यात शुल्क लगाये गये और पहले से विद्यमान शुल्को को बढा दिया गया। पटसन का सामान, सूती कपड़े और काली मिर्च इसके उदाहरण हैं। १९४८-४९ और १९५१-५२ के बीच इन जिन्सों के निर्यात के मूल्य में से लगभग ५७ करोड़ रुपये सरकार द्वारा खपा लिये गये, और ८३ करोड़ रुपये व्यापार वर्ग के पास छोड दिये गये।

राजकोशीय आयोग का यह विचार है कि भारत को जी० ए० टी० टी० का अनुगामी रहना चाहिए। उन्होने समझौते की वातचीत के पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ सिद्धान्त स्थिर किये थे, पर समझौते का राजस्व पर क्या असर रहता है, इसकी उन्होने जाँच नही की। जब जी० ए० टी० टी० पर पुनर्विचार होगा, तो निस्सन्देह राजस्व की आवश्यकताओ और व्यापारिक तत्त्वो में सतुलन रक्खा जायगा।

राष्ट्रमडलीय वरीयता (Commonwealth Preference) दूसरी वडी अन्तर्राष्ट्रीय वाग्वद्धता है। वरीय वस्तुओ के आयात-मूल्य के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि भारत के आयात में उनकी प्रधानता यथेष्ट मात्रा में स्थिर रही है तथा वरीय वस्तुओ के भारतीय बाजार में इग्लैड का भाग वहुत वढ गया ह।

निर्यात की दिशा में भारत को प्राप्त वरीयता का सम्वन्ध मुख्यत पटसन की वस्तुओ, चाय, कहवा, ऊनी वस्तुओ, विस्कुट और नारियल की जटा से निर्मित चटाइयो तथा अन्य वहुत से कच्चेमाल जैसे वानस्पतिक तेल, हड्डियाँ, चमडे और खालो से है।

वरीयता के कारण राजस्व में होने वाली हानि का अनुमान ३ ५ करोड रुपये—२ ६ करोड रुपये इग्लैण्ड से होने वाले आयात पर और ० ९ करोड रुपये उपनिवेशो से होनेवाले आयात पर है। यदि ऐसी वस्तुओ के लिए गुजाइश रख ली जाय—जिनकी भारत की माँग के १० प्रतिशत से कम मात्रा या ९० प्रतिशत से अधिक मात्रा वरीयता प्राप्त देशो द्वारा भेजी जाती है तो ऐसी दशा में वस्तुत कोई वरीयता नही दी जाती, इस दशा में राजस्व में होनेवाली सम्भावित कमी घटकर २ ३ करोड रुपये रह जायगी, और इसमें से २ १ करोड रुपये की कमी इग्लैण्ड से होनेवाले आयात के कारण होगी। होनेवाले दूसरे फायदो के मुकावले में इस लागत का सतुलन तो करना ही होगा, मुख्यत. इस वात पर ध्यान देना पडेगा कि निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाए।

आयात शुल्क से होने वाले अधिकाश राजस्व की प्राप्ति कुछ मुख्य जिन्सो से ही होती है, और इनसे राजस्व की वडी रकम मिलती ही रहेगी। १९५३-५४ में आयात शुल्क का २/३ भाग वस्तुओ के ११ वडे समुदायो से प्राप्त हुआ था, जो भविष्य में भी राजस्व के महत्त्वपूर्ण स्रोत रहेगे। "व्यापारी नीतियो के राजस्व सम्बन्धी परिणामो पर सावधानीपूर्वक निगाह रखने की आवश्यकता है, फिर भी इनके अधिक महत्त्वपूर्ण होने की सम्भावना नही है।"

आयात शुल्को से राजस्व में होनेवाली कमी के अस्थायी होने की ही सम्भावना है; आर्थिक विकास के कारण राष्ट्रीय आय के स्तर में उन्नति होने से उपभोक्ता सामग्री के आयात को प्रोत्साहन मिलेगा।

निर्यात शुल्क

निर्यात शुल्क भारतीय राजकोशीय प्रणाली का एक मुख्य अग रहा है। सन् १८६७ से पहले कुछ निर्यात शुल्क लगाये गए थे, किन्तु उस वर्ष के बाद अधिकाश शुल्को को समाप्त कर दिया गया। सन् १९१४ में केवल चावल पर ही शुल्क लगता था। सन् १९१६ में सबसे पहले

पटसन पर निर्यात शुल्क लगाया गया था, जो अब तक जारी है। सन् १९१९ में चमडे और खालो पर शुल्क लगाया गया था, पर १९३५ में इसे हटा लिया गया। दूसरे महायुद्ध में सूती कपडो और सूत पर निर्यात शुल्क लगाया गया था, पर १९४५ में इसे निर्यात उपकर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

सन् १९४६ से निर्यात शुल्को को नई प्रमुखता हासिल हुई, कुछ वस्तुओ पर नये सिरे से शुल्क लगाया गया, और पुराने शुल्को को बढा दिया गया। १९५१-५२ में निर्यात शुल्को से होनेवाले राजस्व की रकम लगभग ९१ करोड रुपये की उच्चतम राशि तक पहुँच गई थी और तब यह रकम कुल चुगी राजस्व का ४० प्रतिशत थी। निर्यात शुल्क केवल राजस्व का एक मुख्य स्रोत रहा है, किन्तु इसका उपयोग कुछ आर्थिक उद्देश्यो के लिए भी किया गया है।

युद्ध से पूर्व के निर्यात शुल्क मुख्यत. जिन्सो से, जिनकी स्थिति निर्यात-बाज़ार अपेक्षाकृत मजबूत थी—मामूली राजस्व प्राप्त करने के लिए थे। सन् १९२१-२२ के राजकोशीय आयोग ने निर्यात शुल्को को बरतने में सावधानी रखने के लिए कहा, और यह सुझाव दिया कि उनका लगाना तभी ठीक है—जब कि उनका भार प्रधानत· विदेशियो पर ही पड़े। यह बात ठीक है कि सामान्य परिस्थितियो मे केवल साधारण शुल्क, जो एकाधिकार और अर्ध-एकाधिकारवाले निर्यात तक ही सीमित हो—लगाना चाहिए, किन्तु यह जरूरी नही है कि शुल्क का भार सदा केवल विदेशियो पर ही पडे। निर्यात शुल्को के लगाने से विशेपरूप से कठिन समस्याएँ पैदा हो सकती हैं, पर राजस्व प्राप्ति के उद्देश्य से उनके उचित उपयोग की बात की उपेक्षा नही की जा सकती।

युद्धोत्तर काल में निर्यात शुल्क दूसरे प्रयोजनो के लिए भी लगाये गये थे, जैसे मुद्रास्फीति की स्थिति के कारण होनेवाले प्रभाव को रोकने के लिए, घरेलू मूल्यो में स्थिरता लाने के लिए तथा सरक्षण के लिए।

टैरिफ की सूची में विद्यमान वस्तुओ के विवेचन से स्पष्ट है कि चाय पर लगनेवाले शुल्क से इस व्यापार को क्षति पहुँचे बिना राजस्व की प्राप्ति निश्चित है। मैंगनीज के कच्चे धातु और सिगरेट, सिगार और चुरुट पर लगनेवाले शुल्क से, विदेशो मे अच्छी माँगवाली और एकाधिकार रहित जिन्सो से राजस्व शुल्क प्राप्त होने की संभावनाओ का पता चलता है। ज्यों-ज्यों निर्यातो का क्षेत्र विविध होता जायगा, ऐसे शुल्को के लिए गुंजाइश भी विस्तृत हो जायेगी। मजबूत निर्यात-बाजार वाली जिन्सों से प्राप्त होने वाले राजस्व की उपलब्धि इतनी स्थिर नही हो सकती, इसलिए बदलने वाली परिस्थितियों की दृष्टि से समय समय पर दरो में उपयुक्त समायोजन करना पडेगा।

रुपये के मूल्य ह्रास के परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति विरोधी उपाय के रूप में मुद्रास्फीति सम्बन्धी बाह्य तत्त्वो के प्रभाव को रोकने के लिए बहुत से निर्यात शुल्क लगाये गये और पहले से विद्यमान शुल्को को बढा दिया गया। पटसन का सामान, सूती कपडे और काली मिर्च इसके उदाहरण हैं। १९४८-४९ और १९५१-५२ के बीच इन जिन्सों के निर्यात के मूल्य में से लगभग ५७ करोड़ रुपये सरकार द्वारा खपा लिये गये, और ८३ करोड़ रुपये व्यापार वर्ग के पास छोड़ दिये गये।

निर्यात-नियन्त्रणो की सहायता से निर्यात शुल्को को सरक्षण के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। कच्ची ऊन, तिलहन, कच्ची कपास, रद्दी कपास, और कच्चे पटसन पर लगनेवाला शुल्क इसी प्रकार का शुल्क है।

मुद्रास्फीति को दूर करने के साधन के रूप में निर्यात शुल्को का उपयोग बहुत से एशियाई और अर्ध विकसित देशो द्वारा हुआ है। जब इन शुल्को को लगाया जाय तो बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियो को ध्यान में रखते हुए दरो में तत्काल समायोजन का किया जाना बहुत जरूरी है। देश में और विदेश स्थित व्यापार केन्द्रो में मूल्यो और व्यापार की गतिविधि विषयक ठीक ठीक सूचनाओ के व्यवस्थित प्रकार से अविलम्ब सग्रह के लिए समुचित सगठन होना चाहिए। वर्तमान प्रबन्ध में सुधार के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। वर्तमान सगठन को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय द्वारा इसकी पूरी पूरी जाँच-पडताल की जानी चाहिए।

ऐसा भी सुझाव दिया गया है कि निर्यात शुल्को से होनेवाली आय को सम्बद्ध उद्योग के विकास के लिए जमा किया जाय। कुछ अपवादो को छोडकर, जैसे पटसन पर लगनेवाले शुल्क के कुछ हिस्सो को विशेष राज्यो को दे देना है, कर-राजस्व को प्रयोजन विशष के लिए सुरक्षित रखने की व्यवस्था पर आपत्ति की जा सकती है। उद्योगो में धन लगाने के लिए वित्त उपलब्ध कराने के लिए दूसरे सगठन लभ्य ही है।

सीमा-शुल्को का निर्धारण

अपवचन और अनौचित्य को रोकने के लिए मूल्य-निरूपण के उपयुक्त तरीको को अपनाना राजस्व और व्यापार दोनो ही दृष्टियो से बहुत महत्त्व की बात है। मूल्य-निरूपण के सिद्धान्त पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौता करने के लिए बहुत वर्षों से प्रयत्न हो रहे है, और इस दिशा में किये गये नवीनतम प्रयत्नो का समावेश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सगठन की सनद के ३५वें अनुच्छेद में है। भारतीय कानून के अनुसार मूल्य-निरूपण का आधार, जहाँ निर्धारित किया जा सके वहाँ, आयात या निर्यात के स्थान पर विद्यमान प्रतियोगिता मूलक थोक मूल्य होते है, और दूसरे मामलो में सम्बद्ध जिन्सो की आयात स्थान पर पडनेवाली प्रतियोगिता-मूलक लागत होती है।

ऐसी वस्तुओ के बढते हुए आयात के कारण जिनके प्रतियोगिता मूलक थोक मूल्यो का भारत में पता नही चलता, मूल्य-निरूपण का कार्य पेचीदा हो गया है। ऐसे मामलों में बीजक में दिये गये मूल्य का महत्त्व कम होता है और यह सीमा-शुल्क अधिकारियो का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे तुलनात्मक प्रतियोगिता मूलक मूल्यो का अनुमापन करें। केन्द्रीय राजस्व बोर्ड को आयात के बाद विभिन्न प्रभारो (Charges) को नियमित करने के तरीको के विषय में विस्तृत निर्देश देने चाहिए, और उन्हें प्रकाशित कर देना चाहिए जिससे सभी चुगी-घरो की कार्यविधि में समानता रहे।

एक सुझाव यह भी दिया गया है कि टैरिफ मूल्यो को स्थिर करते समय भविष्य में होनेवाले मूल्यो के उतार-चढाव सम्बन्धी विचारो पर लेशमात्र भी ध्यान न दिया जाय।

टैरिफ मूल्यो को आनेवाले वर्ष में लागू करने के लिए निर्धारित किया जाता है इसलिए यह जरूरी है कि भविष्य में होने वाली बाजार की परिस्थितियो के, जहाँ तक कुछ निश्चय के साथ उनका अनुमान किया जा सके—मूल्याकन से उन्हें अछूता न रक्खा जाय।

मूल्यानुसार शुल्को तथा मिश्रित शुल्को के सापेक्ष लाभो के विषय में बहुत विवाद रहा है, किन्तु वर्तमान प्रणाली में सुधार किये जाने के विषय में कोई क्रियात्मक सुझाव प्राप्त नही हुआ है। वर्तमान कस्टम्स टैरिफ में निर्दिष्ट वस्तुओ की संख्या कम करने की बहुत कम गुंजाइश है। भारत के आयातो के प्रकार में परिवर्तन के कारण मूल्यानुसार शुल्को की निर्दिष्ट शुल्को में तवदीली कठिन होगी। भारतीय टैरिफ प्रणाली में वैकल्पिक और मिश्रित दरो का भाग गौण ही है, इसलिए उन मामलो के सिवाय जिनमें टैरिफ आयोग उनके प्रयोग के लिए विशेष रूप से सिफारिश करे, उन्हें समाप्त करना ही वाछनीय होगा।

तैयार माल की अपेक्षा उसके अगभूत हिस्सो पर अधिक ऊँची दर से शुल्क वसूल किये जाने के कुछ उदाहरणो की सूचना मिली है। ऐसी गड़बडियो से कोई गम्भीर प्रभाव नही पडता, क्योकि क्रियात्मक रूप से इस प्रकार के सभी तैयार माल के आयात पर, जिसके विषय में शिकायतें की गई हैं, कठोर नियन्त्रण है। किन्तु जिन मामलो में ऐसी गडबडी हो, और टैरिफ आयोग को अपील करने की सुविधा या शर्तनामे में माल उत्पादन की सुविधा न हो, उन मामलो में टैरिफ की दरो मे उचित परिवर्तन किया जा सकता है।

अभी हाल में सामुद्रिक सीमा शुल्क अधिनियम में कुछ सशोधन किया गया है, जिससे निर्यातवाले माल के उत्पादन में प्रयुक्त होने के लिए आयात वाली सामग्री में न्यूनता लाई जा सके। ऐसा ज्ञात हुआ है कि इन सशोधनो को कार्यान्वित करने के लिए व्यापारियो के साथ वातचीत चल रही हैं। आयातित सामान को निर्माण के पश्चात् शुल्क मुक्त अवस्था में पुनःनिर्यात करने के लिए व्यापार को समुचित सुविधाओ की व्यवस्था की दृष्टि मे उपर्युक्त सशोधनो का कार्यान्वित किया जाना वहुत आवश्यक है।

भारतीय सीमा शुल्क का विस्तार और उस पर पुनर्विचार आवश्यक हो गया है, और इस विषय में कुछ सुझाव भी दिये गये हैं। पुनर्विचार के समय केन्द्रीय राजस्व वोर्ड को इन वातो को ध्यान में रखना चाहिए।

आयात-व्यापार-नियन्त्रण और सीमा शुल्क के वर्गीकरण में एकरूपता के अभाव की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। इन कठिनाइयो को दूर करने के लिए, जिन के कारण अव अधिक असुविधा नही थी—हाल ही में प्रशासकीय कार्यवाही की गई है। इसलिए वडे परिमाण में पुनर्वर्गीकरण करने की 'जिसके कारण सक्रान्ति काल में पर्याप्त अव्यवस्था हो सकती है' आवश्यकता नही है।

तम्बाकू पर उत्पाद-शुल्क

भारतीय अर्थ-व्यवस्था में तम्वाकू का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके उत्पादन का मूल्य ७१ करोड रुपये है और व्यापारी फसलो में महत्त्व के क्रम से इसका स्थान चौथा है। निर्यात की भी यह एक महत्त्वपूर्ण मद है। वैसे तो भारत के सभी हिस्सो में तम्वाकू की

खेती होती है, किन्तु घनीभूत कृषि के केवल चार ही क्षेत्र हैं। तम्बाकू की खपत कई रूपो में होती है। १९४३-४४ और १९५३-५४ के मध्य में तम्बाकू की खपत ३९ करोड पौंड से बढकर लगभग ४२ २ करोड पौण्ड हो गई। हाल के वर्षो में सिगरेट और बीडी के उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

कर जाँच आयोग का विचार है कि तम्बाकू पर कर लगाने के लिए बहुत ठोस कारण हैं। सरकारी एकाधिकार के प्रश्न को यह कह कर छोड दिया गया है कि यह धन्धा बहुत भारी है और एकड के हिसाब से शुल्क लगाने की पद्धति को सरकारी प्रशासन की दृष्टि से बहुत कठिन माना गया है। इसलिए आयोग ने सिगरेटो के लिए नियमित उत्पाद-शुल्क-प्रणाली तथा तम्बाकू के दूसरे रूपो के लिए लाइसेन्स-प्रणाली—इन दोनो के सयुक्त रूप का सुझाव दिया है।

भारत सरकार अधिनियम, १९३५ से पहले केन्द्र से तम्बाकू पर कर लगाने का सम्बन्ध नही था। उपर्युक्त अधिनियम द्वारा तम्बाकू पर कर लगाने का अधिकार केन्द्र को दे दिया गया।

युद्ध में अतिरिक्त राजस्व प्राप्त करने की आवश्यकता से बाध्य होकर १ अप्रैल, १९४३ से तम्बाकू पर उत्पाद-शुल्क लगाया गया। दरें क्रमश वर्धमान पैमाने के अनुसार थी। सिगरेटो के उत्पादन में प्रयुक्त होनेवाली "फ्ल्यू क्योर" तम्बाकू के लिए उसके मिश्रण में विद्यमान आयातित तम्बाकू के तत्वो के आधार पर अनुक्रमिक दरें निश्चित की गईं। खेती के काम में आने वाला, निर्यात किया जाने वाला, तथा उगानेवालो को सीमित मात्रा में अपने व्यक्तिगत प्रयोगार्थ रखने के लिए अनुमति प्राप्त तम्बाकू शुल्क-मुक्त थी।

सन् १९४४ में शुल्क की दरें बढा दी गईं। १९४५ में "फ्ल्यू क्योर" तम्बाकू पर शुल्क की दरो में और क्रमिक वृद्धि की गई। १९४८ में सिगरेटो पर उत्पाद शुल्क लगा दिया गया, और दूसरी तरह के तम्बाकू पर शुल्क की दरें बढ़ा दी गईं। १९५१ में और भी नये समायोजन किये गये। १९५४ में सचित थोक की समस्या से परेश न इस व्यापार को कुछ अस्थायी राहत दी गई। यन्त्रीकरण को हतोत्साह करने तथा नियुक्त लोगो के वर्तमान स्तर को स्थिर रखने के लिए जुलाई, १९५४ में यन्त्रों द्वारा निर्मित बीडियो पर एक भिन्नक शुल्क लगाया गया।

तम्बाकू पर लगने वाले शुल्क का इतिहास शुल्क को प्रयोग में लाने के मार्ग में आने-वाली कुछ कठिनाइयो को बताता है। १९५१ तक "अभिलषित प्रयोग" की कसौटी काम में लाई जाती थी। यह ईमानदार करदाता को परेशान करनेवाली है, ऐसा कहकर इस पद्धति की समालोचना की जाती थी। सिगरेट के लिए प्रयुक्त होनेवाली किस्म को छोडकर तम्बाकू की दूसरी सब किस्मो पर एक समान दर से शुल्क लगाने की प्रणाली के हक में १९५१ में थोडे समय के लिए उपर्युक्त प्रणाली को छोड दिया गया। बीडियो के मामले में "अभिलषित प्रयोग" वाली कसौटी के स्थान पर "प्रयोग में आ सकने योग्य" कसौटी को मान लिया गया। विभाग द्वारा अपने विवेक के अनुसार कर लगाने की नई प्रणाली व्यापार को अच्छी नही लगी, और इस विषय में बडी सख्या में प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किये गये।

दो वैकल्पिक कसौटियो में "योग्यता" वाली कसौटी वस्तु रूप में लागू करने के अधिक सुयोग्य है, वशर्ते कि प्रारम्भिक वर्गीकरण वैज्ञानिक हो। चूँकि एक समान दर पर शुल्क वसूल करने के सिवाय दूसरा कोई क्रियात्मक विकल्प नही है, इसलिए काम में लाई जानेवाली कार्यविधि पर विस्तृत पुर्नविचार करने के लिए सव सम्भव उपाय किये जाने चाहिएं। विशेषज्ञो की एक समिति को, जिसमें एक विक्री विशेषज्ञ तथा व्यापार का एक प्रतिनिधि हो, इस प्रश्न पर पूरा-पूरा विचार करना चाहिए।

एक समान दर का लागू करना प्रशासनिक दृष्टि से भी आसान है, और यह मानकर कि राजस्व में कोई कमी नही करनी चाहिए इस दर को एक पौण्ड पर ९ आ० के हिसाव से निश्चित करना चाहिए। इसका मतलव कम दरो वाली किस्मो पर ५० प्रतिशत अतिरिक्त भार डालना होगा। तम्वाकू की विभिन्न किस्मो की खपत किस प्रकार है, इस पर कभी वैज्ञानिक जाँच-पडताल नही की गई है, इसलिए यह कह सकना मुश्किल है कि प्रयोग में लाने के लिए चुनी गई तम्वाकू की किस्म का मूल्य पूर्णत सगत ही है। भिन्नक शुल्क के साथ खपत की गतिविधि के आधार पर विभिन्न किस्मो के प्रयोग के लिए भार का समायोजन कर सकना सभव होगा। दर के एक समान होने की हालत में सव किस्मो में ह्रास भी एक रूप होगा।

दूसरा विकल्प कम दर पर शुल्क लगाना हो सकता है। मशीनो द्वारा उत्पादित वीड़ियों पर शुल्क लगाने से इसका तम्वाकू की सस्ती किस्मो पर अधिक भार नही पडेगा। आयोग का कहना है, "वीडियो पर लगने वाले उत्पाद-शुल्क की प्रणाली में वर्तमान स्तर पर आमूल चूल परिवर्तन वाले किसी भी परीक्षण के हम विरोधी हैं। हम सिफारिश करते है कि वर्तमान भिन्नक शुल्क को जारी रखना चाहिए तथा वीडियो के लिए "प्रयोग में आ सकने योग्य" कसौटी में सुधार किया जाना चाहिए।"

सिगरेट पर लगनेवाले शुल्क का कई अवस्थाओं से विकास हुआ है। उत्पादित सिगरेटों पर थोक के नकद मूल्य से सम्वद्ध खण्डो पर आधारित एक क्रमवर्धमान दर की सूची १९४८ में लागू की गई। एक आनुक्रमिक अधिभार भी लगा दिया गया। क्रम से वढती हुई दुहरी दर और क्रमिक अधिभार के कारण यह प्रणाली जटिल दृष्टिगोचर होती है, इसलिए सरल प्रणाली को लागू करने की माँग आम थी। अभी कुछ समय तक तो आयात किये गये तम्वाकू का प्रयोग होता रहेगा। इसलिए एकपदी शुल्क को तो पसन्द नही किया जा सकता। प्रयुक्त किये जानेवाले 'मिश्रणो' तम्वाकू पर लगनेवाले आयात-शुल्क और उत्पाद-शुल्क की दर पर राजस्व की प्राप्ति आधारित होती है। यदि अनुत्पादित तम्वाकू के लिए एकपदी कर स्वीकार कर लिया जाये, तो आपेक्षिक रूप से कम शुल्क देकर भी अच्छी किस्मो की प्राप्ति के लिए मिश्रणो में भिन्नता लाई जा सकती है। कुल मिलाकर "अनुत्पादित तम्वाकू पर शुल्क लगाने के विषय में वर्तमान उन्नत ढाँचे को जारी रखना ही उत्तम मार्ग है।"

वीडी और सिगरेट के व्यापार में विद्यमान प्रतियोगिता की ठीक मात्रा का सूचक कोई सवूत उपलव्ध नही है। वीडी उद्योग मे वहुत वडी संख्या में लोगो के होने के कारण दोनो में विद्यमान भेद को घटानेवाला कोई प्रयत्न नही किया जाना चाहिए।

उत्पादित तम्बाकू के शुल्क के ढाँचे में सुधार करने के लिए बहुत से सुझाव दिये गये हैं। १० रु० से १५ रु० तक की मूल्य वाली सिगरेटो के वर्ग पर से अधिभार को समाप्त कर देने के सिवाय टैरिफ में सशोधन की सिफारिश नही की जा सकती, और इस प्रकार होने वाली हानि को ४० रु० से ५० रु० तक की मूल्यवाली सिगरेटो के वर्ग पर दर बढाकर पूरा किया जा सकता है। वर्तमान अधिभार को मूलभूत शुल्क में ही मिला देना चाहिए।

उत्पादन, मूल्य और बाजार की स्थिति में परिवर्तन इतने स्पष्ट नही हैं कि अनुत्पादित तम्बाकू पर लगनेवाले शुल्क की सामान्य दरो में कमी को न्यायोचित ठहराया जा सके।

दूसरे उत्पाद-शुल्क

इसके बाद आयोग ने तम्बाकू के अलावा अन्य जिसो पर शुल्क की दरो की उपयुक्तता पर विचार किया है।

कहवे के बारे में आयोग से यह कहा गया था कि शुल्क की वर्तमान दर अत्यधिक है। यह शुल्क थोक माल का उतना ही प्रतिशत है, जितना कि पैकेज चाय पर शुल्क है, इसलिए इस मामले में कमी का कोई प्रश्न नही है।

कुछ लोगो ने मोटर स्पिरिट पर उत्पाद शुल्क में कमी करने का सुझाव पेश किया था। जब भारत में तैलशोधनशालाएँ अच्छी तरह स्थापित हो जाएँ, तब इस सबध मे उचित जाँच-पडताल की जाय। इस समय उत्पाद शुल्क घटाने का कोई कारण नही।

मिट्टी के तेल पर आयात शुल्क का आपात उसी प्रकार है जैसे उत्पाद शुल्क का, वह १९३८–३९ में ५५ प्रतिशत था और १९५३–५४ में घटकर २६ प्रतिशत हो गया। चूँकि इस चीज की पूर्ति आयात से होती है, इसलिए स्पष्ट है कि शुल्क भार घटा है। इसलिए इस शुल्क में काफी वृद्धि की गुजाइश है।

यह कहा गया कि चीनी पर उत्पाद शुल्क से मध्य वर्ग के करभार में भारी वृद्धि होती है और उपभोग घटता है। इस बात का कोई प्रमाण नही है कि शुल्क की दर से उपभोग पर असर पडता है। १९४०–४१ में जहाँ शुल्क थोक मूल्य का २१ प्रतिशत था, वहाँ वह घटकर अब ९ प्रतिशत हो गया है। इस कर में वृद्धि की काफी गुजाइश है।

आयातो पर अधिक राजस्व शुल्क के परिणाम-स्वरूप दियासलाई का धधा पनपा था और, १९२४–२५ की कर जाँच समिति ने इस पर उत्पाद शुल्क लगाने की सिफारिश की थी। पहले पहल १९३४ में इससे उत्पाद शुल्क वसूल किया गया था। कुटीर शिल्प की स्थिति के रक्षण के लिए छूट की व्यवस्था कर सबधी योजना की एक विशेषता रही है। १९४१ में शुल्क की दरें दुगनी कर दी गई थी, और ५० का एक नया टैरिफ वर्ग लागू हुआ था। १९४८–४९ में दियासलाई के उत्पादन के प्रमापीकरण के प्रश्न पर विचार हुआ था। अत में दियासलाई के बक्सो के दो आकार यानी ६० और ४० के आकार तय किये गये। मझले आकार के कारखानो के लिए एक दूसरा तरजीह प्राप्त वर्ग प्रवर्तित हुआ।

एक सुझाव यह रक्खा गया था कि दियासलाई के जो कारखाने कुटीर शिल्प के ढग से कार्य करते है, उन पर तरजीह मूलक टैरिफ लागू कर दिया जाए। इस धधे

की परिस्थितियो तथा उत्पादन की तुलनात्मक लागतों पर ब्यौरेवार जाँच पडताल के वाद ही कोई फैसला हो सकता है। जिन इकाइयो को इस समय रिआयतें प्राप्त है, वे गत कई सालो में बाजार में अपना भाग बढा सकी है। सरकार को चाहिए कि वह छोटी इकाइयो की उत्पादन लागतो के सवध मे जाँच करे, जिससे यह तय हो सके कि उन्हे कितनी तरजीह दी जाय।

सन् १९३४ में जब से यह शुल्क लागू हुआ, तब से केवल १९४१ में शुल्क की प्रमापीकृत दर मे वृद्धि की गई। प्रति व्यक्ति करापात मुश्किल से चार आने है। उपभोग का अधिकतर हिस्सा धूम्रपान के क्षेत्र में है, और इसीलिए उपभोक्ताओ पर अतिरिक्त कर लगाना युक्तियुक्त मालूम होता है। विकास कार्य के निमित्त राजस्व प्राप्त करने के लिए शुल्क में वृद्धि इसलिए उचित है। फुटकर दामो, मुनाफे की दरो, बिक्री कर इत्यादि की अच्छी तरह जाँच करने के बाद ही यह तय हो सकता है कि वृद्धि कितनी हो।

यान्त्रिक लाइटरो पर शुल्क की वर्तमान दर बहुत अधिक है। उत्पाद शुल्क में छूट देना जरूरी है, और १०० रुपये वाली लाइसेंस फीस ही रक्खी जाय। चूँकि उत्पाद शुल्क पर आयात शुल्क कुछ वढ कर ही है, इस कारण इसके फलस्वरूप किसी प्रकार के सतुलन की आवश्यकता नही है।

इस्पात के 'इन्गाटो' पर थोक मूल्य का १४ प्रतिशत शुल्क है, इसलिये यह किसी भी प्रकार हानिकारक नही है, क्योकि देशी इस्पात का मूल्य वाहर से मँगाये हुए इस्पात से कम है। मूल्य एकत्र करने की व्यवस्था को देखते हुए शुल्क में वृद्धि जरूरी नही।

मोटरगाडी कर जाँच समिति ने अभी अभी मोटर गाडियो की कर सबधी स्थिति पर विचार किया था, पर उसने टायरो पर शुल्क घटाने का कोई सुझाव नही रखा था। किसी परिवर्तन का सुझाव नही दिया जा रहा है।

वानस्पतिक वस्तुओ पर उत्पाद शुल्क थोक मूल्य का केवल ५ प्रतिशत है। इसे घटाने का कोई प्रश्न नही। इस समय कर वढाने का भी कोई प्रश्न नही है, क्योकि यह उद्योग अपनी क्षमता के ५३ प्रतिशत पर ही काम कर रहा है।

यदि वनस्पति तेल पर कर लगाना है, तो वानस्पतिक वस्तुओ के निर्माण के लिए जो परिमाण काम में लाये जायँ, उन्हे कोई छूट न दी जाये, यह वाछनीय है कि तेल और वानस्पतिक वस्तुओ में मौजूदा भिन्नक कायम रखा जाये।

सन् १९४४ से चाय पर उत्पाद शुल्क लगाया गया है। प्रति पाउड २ आने की दर थी, और १९४८ में इसे वढाकर ३ आने की दर कर दी गई। मूल्यो में वहुत अधिक कमी होने के कारण १९५२ में चाय के धधे में सकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। कुछ अधिकारियों ने इस पर जाँच की और कुछ छूट देने का सुझाव रखा। शुल्क में सामान्य कमी व्यावहारिक नही समझी गई, और शुल्क का ढाँचा इस तरह सतुलित किया गया कि खुली चाय पर एक आना प्रति पाउडवाला कम शुल्क उस समय लगाया जाता है जव कि यह वागान छोड़कर जाती है, इसके वाद जव ब्लेंडिग और पैकिंग के वाद वह थोक के आकारो में वद होकर निकलती है, तो उस पर प्रति पाउड तीन आना शुल्क लगता है। इस समय खुली हुई तथा

पैकेज चाय पर जो क्रमश एक आना और चार आना प्रति पाउड शुल्क लगता है, वह थोक मूल्य का ४२ और ८६ प्रतिशत है, और दोनो शुल्को में बढ़ती की गुजाइश है।

कपडे पर वर्तमान उत्पाद शुल्क १९४९ में प्रवर्तित हुआ था। यह शुल्क पहले मिल के कपडों पर ही लागू था और करघे के कपडो पर लागू नही था। यहाँ तक कि शक्तिचालित करघो पर भी यह शुल्क नही लगता था। १९५० में इस शुल्क में कुछ परिवर्तन कर दिया गया। वित्त अधिनियम, १९५३ में शुल्क की दरो पर पुनर्विचार हुआ, अत्यन्त महीन कपडे के प्रति गज पर ३ आने ३ पाई तथा महीन कपडे पर १ आना ३ पाई शुल्क निश्चित किया गया। मझली किस्म तथा मोटे कपडो पर शुल्क प्रति गज ३ पाई कायम रखा गया। १५ फरवरी, १९५३ से शुल्क योग्य कपडे की सारी किस्मो पर प्रतिगज ३ पाई की दर से एक अतिरिक्त सामान्य शुल्क भी लागू था, और इससे वसूल की हुई रकम खादी तथा करघे के कपडो की उन्नति के लिये निर्दिष्ट थी। २५ अक्टूबर, १९५३ से अत्यन्त महीन कपडे पर शुल्क ३ आने ३ पाई से घटाकर प्रति गज २ आना कर दिया गया। १९५४ में इसी पर शुल्क की दर वढा कर प्रति गज २ आने ६ पाई, महीन कपडे पर प्रति गज १ आना ६ पाई और मझली तथा मोटी किस्म के कपडो पर प्रति गज ६ पाई कर दी गयी। मिल में धोतियो के उत्पादन पर रोक लगाने के लिए मिल की वनी हुई धोतियो पर २६ अक्टूबर १९५३ से अतिरिक्त उत्पाद शुल्क के रूप में प्रति गज २ आने से लेकर ८ आने तक उत्पाद शुल्क वसूल किया जाने लगा। फिर भी शुल्क का आपात ऊँचा नही है, शुल्क का यह आपात अत्यन्त महीन, मोटे और मझली किस्म के कपडे के थोक मूल्य का क्रमश १६ ९ प्रतिशत, ६ ७ प्रतिशत और ६ ४ प्रतिशत है।

१९५४ में कच्ची रूई के आयात शुल्क के उच्छेदन तथा उत्पाद शुल्क में परिवर्तन से राजस्व में ऐसी किस्मों के कारण वृद्धि हुई जो वाहर से मँगाई हुई रूई से नही वनती थी।

सव तरह के कपडो पर कुछ मामूली हद तक शुल्क वढाने की गुजाइश है। केवल सूत के नम्बर से ही उनमें फर्क करना कुछ हद तक ग़लत है। सूत के नम्बर पर आधारित जो वर्तमान शुल्क-पद्धति है, उसके अलावा विभिन्न किस्म के कपडो के लिए विभिन्न शुल्क-दरों को निर्दिष्ट करने की सभावना पर तथा वसूली को क्रमिक बनाने के विषय पर विचार होना चाहिए। १९५४–५५ के वजट में पहली वार रायन तथा नकली रेशम की चीजो पर उत्पाद शुल्क लगाया गया, जो थोक मूल्यो का लगभग ७ प्रतिशत है।

सीमेंट पर भी पहले पहल १९५४–५५ में उत्पाद शुल्क लगा, जो थोक मूल्यो का ५ प्रतिशत है।

इसी प्रकार सावुन पर भी पहले पहल शुल्क लगा, जो थोक मूल्य का ७ से १० प्रतिशत है।

१९५४–५५ में जो नये उत्पाद शुल्क लगे, उनमें जूतो पर जो नया शुल्क लगा, वह इस दिशा में सवसे अन्तिम था।

इन नये शुल्को के क्या परिणाम रहे, इस पर अभी विचार करने का समय नहीं आया और इनकी दरो में कोई तवदीली न की जाए।

कई उत्पाद शुल्कों की एक विशेषता यह है कि छोटे पैमाने पर उत्पादन को शुल्क की

छूट दी गई है। रिआयतें तथा छूटें विभिन्न आधारो पर दी जाती है, जैसे विजली या यन्त्र का प्रयोग न करना, मजदूरो की सख्या, सगठन का प्रकार या आकार, उपज का प्रकार-भेद तथा उत्पादन का स्तर आदि। छोटी इकाइयो के उत्पादन पर देख-रेख रखने के सबंध से जो प्रशासनीय समस्या उठ खड़ी होती है, उसके कारण कुछ छूट दी गई हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कुटीर शिल्प तथा छोटे पैमाने के घधो को प्रोत्साहन देने के विशेष कारण है। समय समय पर इन रिआयतो के परिणामो पर विचार होना चाहिए जिससे परिवर्तनशील आवश्यकताओ के साथ नीति का ताल-मेल रहे।

ताजे उत्पाद शुल्को के सबध में इतना कहा जा सकता है कि उत्पादन इतना वढ चुका है कि उत्पाद शुल्क लगाये जा सकते है। शुल्क की क्या दर हो, यह वताना सभव नही है। सभव है कि शुल्क लगाने के पहले सरकार को ब्यौरेवार जाँच करनी पडे।

सरक्षण के कारण सिलाई की मशीनो का धधा विकसित हो चुका है, और उत्पादन इतना अधिक हो रहा है कि औद्योगिक मशीनो के अतिरिक्त देश की बाकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती है। इसका मूल्य लगभग १ करोड़ ५० लाख रुपये है, और इस पर कुछ मामूली शुल्क उचित मालूम होता है।

वनस्पति तेल पर भी शुल्क उचित है क्योकि इसी प्रकार की खेती की उपजें जैसे रुई और तम्वाकू पर किसी न किसी सोपान पर चलकर उत्पाद शुल्क लगता है। उत्पादित कुल परिमाण लगभग १४ लाख १० हजार टन है, जिसमें से ३ लाख ६० हजार टन घानियो से निकाला गया। केन्द्रीय उत्पाद विभाग भी भारतीय तिलहन कमेटी अधिनियम के अनुसार एक उपकर वसूल कर रहा है। इसके लिए सग्रहार्थ सगठन निर्मित करना कठिन नही है। घानी से उत्पन्न माल को छूट दी जाय, और उस पर तुलनात्मक रूप से कम शुल्क वसूल किया जाय।

ऊनी वस्त्रो पर भी मामूली शुल्क की गुंजाइश है, क्योकि सूती वस्त्र तथा नकली रेशम पर उत्पाद शुल्क लागू है। कच्ची ऊन तथा ऊन के टापो (tops) पर कोई आयात शुल्क नही है, इसलिए शुल्क लगाने का और भी समर्थन होता है। मोटे कम्वल तथा ऐसी चीजें जो गरीवो के इस्तेमाल में आती हैं, शुल्क से वरी की जायें।

अव देशी विस्कुटो से देश की करीव करीव सारी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, इसलिए इस वस्तु पर भी मामूली शुल्क उचित है।

सरक्षण मिलने के कारण कागज का धधा विकसित हुआ है, और इस पर मामूली शुल्क लगाया जा सकता है। हाथ के वने कागज पर शुल्क न लगाया जाय।

इसी प्रकार सरक्षण के कारण सूखी और स्टोरेज वैटरियो का धधा हाल के वर्षो मे वढा है, इस पर मामूली शुल्क सभव है।

देशी विजली की वत्तियो ने वाहर से आनेवाली वत्तियो की कई किस्मो का स्थान ले लिया है, इन पर मामूली शुल्क लगाया जा सकता है।

१९२५ की कर जाँच समिति ने एअरेटेड पानियो पर कर लगाने का सुझाव दिया था। अर्व-विलासिता की वस्तु होने के कारण कर लगाने के लिए यह अच्छी चीज है।

वडे कारखानो की उपजो पर थोडा कर तथा छोटी इकाइयो को छूट देने की सिफारिश की जाती है; हाँ, यदि क्रमिक दरें हो तो अच्छी वात है।

उच्च आयात-शुल्क तथा आयात पर प्रतिवध होने के कारण विजली के पखो के उद्योग का विकास हुआ है। इस पर भी मामूली शुल्क लगाया जा सकता है।

काँच की चादरो पर उच्च राजस्व शुल्क तथा सरक्षण के कारण काँच उद्योग का वहुत विस्तार हुआ है, इसलिए इस पर काफी मात्रा में शुल्क लगाना उचित होगा।

हाल के वर्षो में पेण्टो और वार्निशो का अच्छा उत्पादन रहा। यह ६ करोड रुपये के मूल्य का लगभग ३१ हजार टन उत्पन्न हुआ है। मामूली शुल्क लगाने की सिफारिश की जाती है।

हाल के वर्षों में ऊँचे दर्जे की चीनी मिट्टी तथा अन्य उन्नत मिट्टियो के वर्तन वनाने में अच्छी प्रगति हुई है, और प्रतिवर्ष लगभग साढे तीन करोड रुपये के वर्तन वनाये जाते हैं। इस पर काफी मात्रा में शुल्क लग सकता है।

वर्तमान शुल्को में जो वृद्धि और नये शुल्को को लगाने के जो सुझाव पेश किये गये हैं, उनसे केन्द्रीय उत्पाद से होने वाले वर्तमान राजस्व में ४० से ४५ प्रतिशत की वृद्धि होने की आशा है।

सीमा-शुल्क तथा उत्पाद-शुल्को सबधी प्रशासन समस्याएँ

सीमा-शुल्क-प्रशासन

समुद्र सीमा शुल्क अधिनियम १८७८, भूमि सीमा शुल्क अधिनियम १९२४ तथा भारतीय टैरिफ अधिनियम, १९३४ मुख्य कानून हैं जिन पर सीमा शुल्क विभाग प्रशासन करता है। भूमि सीमा शुल्क का प्रशासन केन्द्रीय उत्पाद विभाग करता है, इसके अलावा वह आयात तथा निर्यात नियन्त्रणो का भी प्रशासन करता है। इसी को कुछ निषेधात्मक आज्ञाओ को कार्यान्वित करने का अधिकार है।

यह सुझाव दिया गया है कि सीमा शुल्क विभाग में जो अपील सुननेवाला भाग है, उसे वित्त मन्त्रालय से स्वतन्त्र कर दिया जाये। इस आलोचना में कुछ दम जरूर है कि अपील सुननेवाले अधिकारी के रूप में कलेक्टर आफ कस्टम्स राजस्व के केन्द्रीय वोर्ड से हिदायतें लेगा तथा बोर्ड से भी, मुख्य कस्टम्स अधिकारी के रूप में यह आशा नही की जा सकती है कि वह अपीलो पर विचार करते समय विल्कुल ही निरासक्त तथा वस्तुवादी दृष्टिकोण अपनाये। पर साथ ही सीमा शुल्क यन्त्र को आवश्यक रूप से द्रुत कार्यकारी और असरदार होना है, और लम्वी कार्रवाइयो के जटिल पचडो से उसके काम में वाधा नही पडनी चाहिए। इसलिए आयकर विभाग में जिस तरह का अपील सम्बन्धी विभाग है, उस तरह के विभाग की गुजाइश इसमें नही मालूम होती। पर वोर्ड या कलेक्टर के विरुद्ध जो पुनर्विचार प्रार्थना-पत्र पेश किये जायँ, उन पर एक ट्रिब्युनल विचार करे, जिसमें कोई अवसर-प्राप्त या कार्यकारी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश तथा सीमा शुल्क प्रशासन का एक तजर्वेकार सदस्य रहे। यह ट्रिब्युनल वित्त मन्त्रालय से स्वतन्त्र रहे।

इस समय अधिकारियो द्वारा निकाले हुए राजस्व के लिए हानिकारक आज्ञापत्रो के सशोधन के लिए कोई व्यवस्था नही है। क्लेक्टरो को आज्ञापत्रो पर पुनर्विचार करने का अधिकार दिया जाना चाहिए। करदाताओ की वातो को सुन लेने के वाद ही आज्ञा देनी चाहिए, और उन पर अपील समव होनी चाहिए।

कई वार माल इसलिए नही छूट पाते कि सीमा शुल्क के सम्वन्ध में झगडे उठ खडे होते है। मतभेदो पर निर्णय करने के लिए कलेक्टर के पास विभागीय हिदायतें इस प्रकार की होनी चाहिएँ कि उसे यह अधिकार हो कि कम दर पर शुल्क की भुगतान के साथ साथ यदि माल का मालिक विचाराधीन वाकी रकम के सम्वन्ध में अगीकार पत्र दे दे, तो माल छोड दिया जाय। वर्तमान समय में अस्थायी कर निर्धारण का जो तरीका है, उसे कानून का वल प्राप्त नही है, इसलिए कानून में इस प्रकार से सुधार करना चाहिए कि काम वने और साथ ही राजस्व सुरक्षित रहे।

भारत के अन्दर विदेशी वस्तियाँ होने के कारण चोरी से माल का आवागमन होता है, और इससे व्यापार पर वुरा असर पडता है, साथ ही निवारणात्मक उपायो के सिलसिले में वहुत खर्च उठाना पडता है। ऐसे सख्त कानूनी तथा प्रशासनीय उपाय किये जाने चाहिएँ जिससे यह वुराई कम से कम हो जाए। सामुद्रिक सीमा शुल्क अधिनियम का सशोधन इस तरह होना चाहिए कि चोरी से माल का आवागमन करना कानूनन जुर्म हो जाए, सीमा शुल्क अधिकारियो को अहातो की तलाशी लेने का, समन जारी करने का, चोरी से माल मँगाने-वालो से पूछ-ताछ करने का तथा चोरी से माल मँगाने के सम्वन्ध में सदिग्ध व्यक्ति को, जिसके पास शुल्क योग्य माल हो, अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने का अधिकार दिया जाए।

सीमा शुल्क अधिकारियो को जो सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, उनको प्रकट करने के सम्वन्ध मे वे ही व्यवस्थाएँ लागू की जाएँ जो आयकर विभाग में लागू है।

केन्द्रीय उत्पाद प्रशासन

केन्द्रीय उत्पाद सम्वन्वी मामलो में अपील करने का तरीका सीमा शुल्क विभाग की तरह है। भारत सरकार को दिये गये पुनर्विचार वाले प्रार्थनापत्र की सुनवाई एक अपील सुननेवाला ट्रिव्यूनल उसी प्रकार से करे, जिस प्रकार से सीमा शुल्कवाले भाग में होता है। सीमा शुल्क के सम्वन्ध में अपील सुनने के लिए जिस तरह के ट्रिव्युनल का सुझाव रक्खा गया है, वही केन्द्रीय उत्पाद-सम्वन्धी मामलो की भी सुनाई करे। केन्द्रीय उत्पाद नियमो के अनु-सार कारखानो के अहाते से माल छुडाने का जो तरीका है, उसकी कुछ आलोचना की गई है। यह कहा गया है कि इससे माल उत्पादन की प्रक्रिया में हस्तक्षेप होता है, सरकार पर अधिक खर्च पडता है तथा माल-उत्पादको के लिए परेशानी पैदा करता है। जांचे हुए हिसाव किताव के आधार पर शुल्क लिये जाने का सुझाव दिया गया है।

कर संग्रह का वर्तमान तरीका प्रशासन तथा माल उत्पादक, दोनो के लिए सुविधा-जनक है, और यद्यपि यह शुल्क माल पर ही शुल्क है, और इसे तभी एकत्र करना चाहिए जव माल तैयार हो जाय, फिर भी व्यावहारिक कठिनाइयो के कारण कारखाने से माल छुड़ाने

के समय शुल्क एकत्र करना सुविधाजनक पाया गया है। यह भी बता दिया जाय कि व्यावहारिक रूप से भारत में जो तरीका प्रचलित है, वह वही है जो अन्यत्र प्रचलित है। प्राय प्रत्येक देश में भौतिक देख-रेख अनिवार्य समझी जाती है।

विभाग की जिम्मेदारियो को देखते हुए शुल्क एकत्र करने की लागत संगृहीत शुल्को का ४ ५ प्रतिशत है, जिसे अधिक नही कहा जा सकता है।

छोटे पैमाने पर दियासलाई बनाने वालो की ओर से यह शिकायत की गई है कि सुरक्षा प्रतिज्ञापत्र (सिक्यूरिटी बाड) तथा शुल्क की पेशगी अदायगी मे कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। चूंकि दियासलाइयो को शुल्क का भुगतान न होने तक उत्पाद अधिकारियो की देखरेख में गोदामो में रखना पडता है, इसलिए कुछ हद तक राजस्व तो सुरक्षित हो जाता है। इसलिए यह सुझाव दिया जा रहा है कि छोटी इकाइयो को राहत देने के लिए प्रतिभूति वाले प्रतिज्ञा-पत्र (बाड विद श्योरिटी) का तरीका अपनाया जाय।

दियासलाइयो पर उत्पाद शुल्क थोक मूल्य का ५० प्रतिशत है। इसलिए दियासलाइयो की बिक्री के पहले शुल्क के भुगतान के लिए रुपये अटका देने में कुटीर कारखानो को काफी कठिनाई होती है। शेष के रूप में बाद को उत्पाद-शुल्क की भुगतान की पद्धति राहत देने के लिए अपनाई जा सकती है। बाकी रकम के लिए प्रतिभूति वाला प्रतिज्ञापत्र लिया जा सकता है और अगले महीने की अन्तिम तारीख तक शुल्क जमा किये जाने को कहा जा सकता है।

तम्बाकू के बारे में भी बहुत सी बातें पेश की गईं। यह सुझाव रक्खा गया था कि उत्पादको से कहा जाय कि वह फौरन ही अपनी फसल का वारा-न्यारा कर डालें और फसल के साल के अगले साल के ३० जून तक उसे अटका न रखें। पर ऐसा करने से उत्पादक व्यापारियो के शिकार हो जायगे और इसलिए इस सुविधा को हटाने में कोई तत्त्व नही है।

मालगुदाम लाइसेंसदारो के हिसाब-किताब के लिए एक अधिक सरल तरीके को विकसित करने की आवश्यकता है, और परिवहन, गोदाम तथा विधायन में होनेवाली हानियों पर भी विचार होना चाहिए। परिवहन नियन्त्रण की पद्धति के सम्बन्ध में भी कुछ शिकायतें की गई हैं, पर नियन्त्रण पद्धति के अत्यधिक सरलीकरण की आवश्यकता ज्ञात नही होती।

तीसरी जिल्द

राज्य और स्थानीय कर

राज्य कर

बिक्री कर की कुछ विशेषताएँ

१९३८ के पहले किसी भी राज्य में विक्री-कर न था, और आज कुछ ही ऐसे राज्य होंगे, जहाँ विक्री-कर नही है। विक्री-कर से इतनी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, जितनी कि किसी और कर से नही हुई। अन्य करो की तुलना में यह कर अधिक लोगो तथा स्वार्थों को स्पर्श करता है। एक तरफ तो उपभोक्ता है, यानी करयोग्य वस्तु का ग्राहक, दूसरी तरफ विक्रेता है जिससे यह लिया जाता है, तीसरी तरफ वह उद्योग है जिस पर इसके कई तरह के परिणाम होते है, अन्त में राज्य सरकारें है जो अधिक से अधिक राजस्व के लिए व्यग्र है, पर उनके सामने बढते हुए विस्तृत करापवचन की समस्या है। इसके अतिरिक्त सविधान के ढाँचे के अन्दर विभिन्न राज्यो में सयोजन की वात भी है।

विक्री-करो से कई समस्याएँ उत्पन्न होती है। उपभोक्ता और विक्रेता द्वारा मिलकर करापवचन किये जाने की समस्या है। दूसरी समस्या का रूप यह है कि विक्रेता कर तो वसूल करता है, पर सरकार में जमा नही करता। तीसरी समस्या विक्रेता पर किये गये जटिल तकाजो की है। उधर भारत भर में अपना माल चलाने के लिए उद्योग-धधो को यह शिकायत वनी रहती है कि सर्वत्र एक तरह की दरें और नियम नही है। इसके अलावा राज्य सरकारो के सामने करापवचन की वहुत भारी समस्या है।

विक्री करो के सवध में तरह तरह के सुझाव दिये गये है, कुछ ने केन्द्रीकरण का सुझाव रखा है, कुछ ने सभी राज्य सरकारो के द्वारा एकरूप वहुपदी अथवा एकपदी कर, निर्वाचनात्मक विक्री-करो तथा क्रयकर का सुझाव रखा है।

विक्री-कर और क्रयकर अलग अलग हैं। राज्य समाचारपत्रो के अलावा मालो पर दोनो कर वसूल कर सकता है। विक्री-तथा-क्रय के कारोवार में विक्री कर वेचने वाले से वसूल किया जाता है, तथा क्रय-कर क्रेता से वसूल किया जाता है। जव किसी पजीकृत कारोवारी की विक्री के हिसाव पर यह कर वसूल किया जाता है तो यह विक्रय कर है, और जव क्रेता के कारोवार पर यह वसूल किया जाए तव यह क्रय-कर होता है। जव खरीदा हुआ माल वहुत विशिष्ट हो, और उसका आसानी से पता लगाया जा सके, जैसे उदाहरण-स्वरूप एक मोटरकार, तव क्रय-कर निजी क्रेता से वसूल किया जा सकता है। इसके अलावा क्रय-कर साधारण रूप से कारोवारी तक सीमित है।

कुछ राज्यो में बिक्री-कर का वर्णन करने के लिए कारोबार कर (टर्नओवर टैक्स) शब्द काम में लाया जाता है। पर इस कारोबार-कर में कोई ऐसी विशेषता नही है, जो भारत में विकसित पद्धतियो में इसे बिक्री या क्रय-कर से अलग कर सकती हो, यह तो महज सुविधा के लिए इस प्रकार से वर्णन किया गया है। कई बार कारोबार-कर शब्द से इस बात पर जोर देने की चेष्टा की गई कि सम्बद्ध बिक्री-कर आम किस्म का है। एक अन्य शब्द से यह विशेषता अच्छी तरह बताई जा सकती है, वह शब्द है 'आम बिक्री कर' जो 'निर्वाचनात्मक बिक्री-कर' से अलग है।

आम बिक्री-कर की दो किस्मे है, बहुपदी और एकपदी। एक युग्मपदी कर भी है जिसका उद्देश्य यह है कि कर की कुल रकम पर, जो शायद जोडी गई हो, नियत्रण रखा जा सके। एकपदी और युग्मपदी कर साधारणत तुलनात्मक रूप से ऊँची दरो पर वसूल किये जाते हैं। कुछ छूट आम हैं, और 'आपात नियन्त्रित' शब्द से मोटे तौर पर एकपदी और युग्मपदी पद्धतियो का वर्णन हो जाता है। बहुपदी पद्धति ढाँचे अथवा उद्देश्य की दृष्टि से आपात नियन्त्रित नही है, पर तुलनात्मक रूप से दर थोडी है, और उसमें छूटें कम है।

दोनो हालतो में पजीकरण पद्धति जरूरी है। आपात नियन्त्रित पद्धति में एक महत्त्वपूर्ण शर्त यह है कि पजीकृत व्यापारियो के लिए आवश्यक हिसाब-किताब रखना जरूरी है।

बहुपदी बिक्री-कर में कारोबारी पजीकृत होता है, पर प्रत्येक कारोबारी पहले के या बाद के कारोबारी की परवाह न करते हुए कर देता है। इससे हिसाब-किताब तुलनात्मक रूप से सरल होता है, छूटें कम होती है तथा अधिक सख्या में पजीकृत कारोबारी होते हैं। आपात नियन्त्रित पद्धति की दर से इसकी दर विशेष रूप से कम होती है।

अदालतो के कई प्रतिवेदित फैसलो में बिक्री शब्द की परिभाषा की गई है। विभिन्न राज्यो में इसका वास्तविक अर्थ भिन्न है। मद्रास, मैसूर, तिरुवाकुर-कोचीन और हैदराबाद में बिक्री का अर्थ व्यापार या व्यवसाय के दौरान में सपत्ति का हस्तातरण है। पश्चिम बगाल और दिल्ली में बिक्री का अर्थ धन के लिए माल के रूप में सपत्ति का हस्तातरण है। कुछ राज्यो के अधिनियमो के अनुसार राज्य के अन्दर तभी बिक्री हुई मानते हैं, यदि बिक्री या क्रय का कार्य करते समय माल वास्तविक रूप में उस राज्य में हो। कुछ राज्यो में किसी शर्तनामे को पूरा करते हुए माल के रूप में सपत्ति के हस्तातरण को बिक्री कहते हैं।

माल या गुड्स शब्द की व्याख्या में केवल चल सपत्ति, स्टाक, हिस्से (शेयर) तथा सिक्यूरिटीज अन्तर्भुक्त हैं। कई राज्यो में इस शब्द के अन्तर्गत बढती हुई फसलें, घास, पेड इत्यादि लिये जाते हैं।

कारोबारी या डीलर की परिभाषा अधिकाश अधिनियमो में इस प्रकार की गई है कि वह एक ऐसा व्यक्ति है जो माल की बिक्री या पूर्ति के काम में लगा रहता है; विभिन्न राज्यो की परिभाषा में कुछ बारीक फर्क है।

कारोबारी की कर सबधी योग्यता उसके सारे कारोबार की रकम यानी माल के विक्रय-मूल्यो की कुल रकम पर निश्चित होती है। विभिन्न राज्यो में इस सबध में कारोबार की विभिन्न सीमाएँ मानी जाती हैं। साधारणत दो स्पष्ट सीमाएँ हैं, एक तो आयात करने वालो और

माल तैयार करने वालो के लिए तथा दूसरी अन्य कारोबारियों के लिए। आयात करने वालो तथा माल बनाने वालो के लिए सीमाएँ साधारणत बहुत नीची होती हैं, और दूसरो के लिए ऊँची होती हैं।

विभिन्न राज्यो में कई बिक्रियाँ करमुक्त हैं, इसका कारण या तो बिक्री की परिभाषा है, या अधिनियमो में ही इस सबध में विशेष व्यवस्था है। इनमें ऐसी बिक्रियाँ है, जो व्यापार या व्यवसाय के दौरान में नही आती, धन के लिए न होनेवाली बिक्रियाँ अचल संपत्ति की बिक्रियाँ, मुकदमे करने लायक दावे, स्टाक, शेयर या सिक्यूरिटीज की बिक्रियाँ, किसान द्वारा स्वय उत्पादित या उसकी जमीन पर उत्पादित उपज की बिक्रियाँ, या वे बिक्रियाँ जो ऐसे कारोबारियो के द्वारा की गई हो जिनका वार्षिक कारोबार करयोग्य राशि से कम हो। इनमें से कई एक को इसलिए छोड़ देना पड़ा कि प्रशासन की सुविधा होती है। अधिनियमो या विज्ञप्तियो में भी विशेष छूट बताई गई है और दी जाती है। ऐसी छूटें चार वर्गों में विभाजित हैं—अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुएँ, वे वस्तुएँ जिन पर कर दिया जा चुका है, कुटीर शिल्प तथा ग्रामोद्योग की कुछ वस्तुएँ तथा दूसरी वस्तुएँ। छूटो की सूची राज्यो में अलग अलग है। बहुपदी राज्यो की तुलना में एकपदी राज्यो की सूची लम्बी है।

नियम के तौर पर बहुपदी राज्यो में छूटें कम हैं। कई क्षेत्रो में तो खाद्य पदार्थ भी करमुक्त नही है। बहुत से राज्यो में विलासिता के ऐसे द्रव्यो पर जो आमतौर पर तुलनात्मक रूप से खुशहाल वर्गो द्वारा प्रयुक्त होते है कर की दर ऊँची हैं। विभिन्न राज्यो में इन वस्तुओ की सूची भिन्न-भिन्न है, और कर की दरें ९ पाई से लेकर २४ पाई तक है। बहुपदी राज्यो में बिक्री के प्रथम सोपान पर, कर की वर्तमान दर के अलावा ऊँची दर लगी है, एकपदी राज्यो में कर एक अतिरिक्त वसूली के रूप में ऊँची दर पर लिया जाता है।

प्रत्येक पंजीकृत कारोबारी पर बिक्री-कर लागू है। अधिकाश राज्यो में प्रति तीन मास पर कारोबार की राशि और साथ ही कर की भुगतान की रसीदें पेश करनी पडती है। यदि कारोबारी यह देखे कि गलती है या कोई बात छूट गई है तो वह परिशोधित हिसाब-किताब पेश कर सकता है।

कर का वर्ष साधारणत वित्तीय वर्ष होता है, यद्यपि कुछ राज्यो में राज्य में प्रचलित प्रथा के अनुसार हिसाब-किताब का वर्ष अपना होता है।

कारोबारी के द्वारा पेश की हुई आमदनी के आधार पर कर-निर्धारण होता है। पर उपयुक्त नोटिस देने के बाद बिक्री-कर अधिकारी अपनी समझ के मुताबिक कर-निर्धारण कर सकता है। हिसाब-किताब तथा अन्य विलेख माँगे जा सकते है और अधिकाश राज्यो में बिक्री-कर अधिकारियो को यह अधिकार है कि वे कारोबारियो के अहातो तथा गोदामो में प्रवेश कर सकें तथा तलाशी ले सकें, हिसाब-किताब की बहियो, विलेखो तथा माल इत्यादि पर कब्जा कर उसे रख सकें। कर-निर्धारण फिर से हो सकता है। कई राज्यो में छोटे कारो-बारियो के लिए एक कम्पोजिशन की योजना की व्यवस्था है, जिसके अनुसार कर-योग्य क्रय के आधार पर कर की रकम निर्दिष्ट होती है।

कर-निर्धारण की आज्ञा के विरुद्ध कारोबारी को अपील करने का तथा उच्चतर

अधिकारियो के द्वारा पुनर्विचार कराने का अधिकार है। कुछ राज्यो मे अपील सुननेवाले अर्ध-न्यायिक ट्रिब्यूनल हैं। दूसरो में राजस्व वोर्ड या वित्तीय आयुक्त अन्तिम अपील अधिकारियो के रूप में काम करते हैं। किसी कानूनी नुक्ते पर उच्च अदालत में भी मुकदमा पेश हो सकता है।

विक्री-कर कानून के विरुद्ध अपराध पर जुर्माना और कुछ राज्यो में कारादड हो सकता है। कई राज्यो में निश्चित रकम की भुगतान के द्वारा अपराध का शमन हो सकता है।

अधिकाश राज्यो में प्रशासन पृथक् विभाग के हाथ मे है, कई राज्यो में ऐसे विभागो को अतिरिक्त कर्तव्य आवटित है। अधिकाश राज्यो में कर निर्धारण कार्य गेजेटेड तथा दूसरे उच्च पदाधिकारियो के द्वारा होता है। अधिकाश राज्यो में कर निर्धारण अधिकारी तथा अपील अधिकारी भिन्न हैं। कई राज्यो में सलाहकार समितियाँ हैं, जिनमें व्यापार तथा उद्योग-धधो के प्रतिनिधि हैं। यह समिति प्रशासन तथा करदाता के वीच सपर्क रखती है।

बिक्री-कर का विकास

मध्य प्रदेश में १९३८ में पेट्रोल पर कर के रूप में एक विशेष विक्री-कर लगाया गया। आम बिक्री-कर १९३९ से लागू हुआ, जब मद्रास में वहुपदी पद्धति प्रवर्तित की गई। वगाल ने १९४१ में एकपदी पद्धति अपनाई। पजाव ने उसी वर्ष वहुपदी कर चालू किया। १९४४ में विहार ने बगाल की एकपदी पद्धति अपनाई। १९४६ और १९४८ के वीच पाँच अन्य राज्यो ने बिक्री-कर चालू किया। वम्बई, आसाम, मध्य प्रदेश और उडीसा ने एकपदी पद्धति और उत्तर प्रदेश ने बहुपदी पद्धति अपनाई, पर उसमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। अप्रैल, १९४८ से वाकी राज्यो ने, जिनमें लगभग सभी 'ख' भाग के राज्य थे, बिक्री-कर अपनाये, कुछ ने बहुपदी पद्धति अपनाई और कुछ ने एकपदी। विभिन्न राज्यो में सीमित हद तक आय-कर चालू किये गये थे और इस सवध में पहले जो रूप था, वह वाद में विभिन्न राज्यो में बहुत वदल गया, छूट की सूचियों में वहुत अधिक फर्क था। इसके अलावा लाइसेंस देने तथा पजीकृत करने की राशि में भी फर्क था।

विभिन्न राज्यो में कर जिस प्रकार विकसित हुए, उनकी मुख्य विशेषताओं से यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि प्रणाली की बढती हुई जटिलता के साथ-साथ अखिल-भारतीय सयोजन की आवश्यकता है। राजस्व की आवश्यकताओ के कारण राज्यो ने निर्यातो पर कर वसूल करना शुरू किया। कुछ राज्यो ने बिक्री शब्द की परिभाषा इस प्रकार की कि इसमें उनके इलाको में होनेवाली माल की सारी विक्रियाँ आ जायँ, चाहे बिक्री का शर्तनामा कही भी हुआ हो। कुछ नियमो के अनुसार अन्तर्राज्यीय व्यापार के क्षेत्र में एक बार से अधिक प्रवेश करने वाले कच्चे माल तथा तैयार माल पर कर लगाना भी आ जाता है। भारत सरकार ने १९४८ के अक्तूबर में राज्यो के वित्त मन्त्रियो का एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें अधिकारियो की एक समिति इस बात की सम्भावना पर जाँच करने के लिए नियुक्त हुई थी कि अखिल भारतीय महत्त्व की कुछ अनिवार्य जिसो के अन्तर्राज्यीय व्यापार पर कर-निर्धारण के सम्बन्ध में कहाँ

तक एकरूपता हो सकती है। इस समिति ने बहुत-सी सिफारिशें की थी। सिद्धान्त के संबध में आमतौर पर एकमत हो जाने पर भी कोई व्यावहारिक परिणाम नही निकला, फिर भी कुछ राज्यो ने सिफारिशो को कार्यान्वित किया। इस बीच में सविधान सभा की मसविदा समिति ने इस प्रश्न पर विचार किया, और यद्यपि बहुत से राज्यो ने विरोध किया, फिर भी सविधान में वैदेशिक तथा अन्तर्राज्यीय व्यापार के दौरान मे तथा अनिवार्य जिसो पर राज्य सरकारो के बिक्री-कर लगाने सम्बन्धी अधिकारो को सीमित करने वाले नियम रखे गये। इन सीमाओ के कारण कई राज्यो के बिक्री-कर राजस्व में बहुत कमी हुई। इन सीमाओ के कारण लगभग सभी राज्यो को राजस्व की परोक्ष हानि इस प्रकार से हुई कि परिहरण के लिए अधिकतर मौके हो गये।

विभिन्न राज्यो ने सविधान के नियमो से होनेवाली राजस्व की हानि का सामना करने के लिए विभिन्न उपाय किये। बम्बई मे पद्धति बदल कर-बहुपदी कर पद्धति अपनाई गई और जब इससे काम नही बना तो युग्मपदी पद्धति का प्रवर्तन किया गया। बिहार और उडीसा आदि राज्यों ने पहले वाली उन छूटो को रद्द कर दिया जो कच्चे माल की बिक्री पर लागू थी। हैदराबाद ने उन कारोबारियो पर एक क्रय-कर लागू किया, जो राज्य के मुख्य कृपिजात कच्चे माल के निर्यातो को इसके इलाके मे लाते थे।

सर्वोच्च न्यायालय ने बम्बई और तिरुवाकुर-कोचीन की अपीलो पर सविधान के २८६वें अनुच्छेद की एक प्रामाणिक व्याख्या पेश की। भारत सरकार के सामने इस पर जो विभिन्न मत पेश किये गये, उन पर, विशेपकर, इस बात पर विचार करने के लिए कि सर्वोच्च न्यायालय ने २८६वें अनुच्छेद की जो व्याख्या की है, उससे ताल-मेल रखते हुए किस प्रकार से व्यापारियो का अधिक से अधिक हित हो सकता है, भारत सरकार ने नवम्बर, १९५३ मे अधिकारियो का एक सम्मेलन बुलाया। आमतौर से इस सम्मेलन में लोग इस बात पर एकमत हो गए कि अनिवासी कारोबारियो पर आयातकारी राज्य यह बोझ नही डाल सकते कि वे आकर अपने हिसाब-किताब की बही की जाँच करवाएँ, बल्कि वे दिखाये हुए लेखा-जोखा के आधार पर कर निर्धारण करें, और जरूरत पड़ने पर विवादास्पद विपयो को सुलझाने के लिए अपने अधिकारियों को भेजें। प्रत्येक राज्य दूसरे राज्यो को माल निर्यात करनेवाले ऐसे व्यापारियो के नाम दे सकता है, जो छूट के दावेदार हैं। दीर्घकालीन समाधान के रूप में यह प्रस्ताव रखा गया कि आयातकारी राज्यो-द्वारा अनिवासी कारोबारियो पर कर लगाने के बजाय, अन्तर्राज्यीय व्यापार के दौरान में उनसे एक क्रय-कर वसूल किया जा सकता है। अधिकाश राज्यो ने सूचनाओ की पूर्ति की पारस्परिक व्यवस्था स्वीकार कर ली थी, पर क्रय-कर के प्रवर्तन के सम्बन्ध में सबने पारस्परिक व्यवस्था को स्वीकार नही किया। इस सम्बन्ध मे परिस्थिति अनिश्चित थी, पर राज्यो ने गैरकारोबारियों से कर लेना इस प्रकार शुरू कर दिया था कि उन्हे बिक्री-कर के अधीन पजीकरणीय करार दिया था। कुछ राज्यो ने इस करदेयता को २६ जनवरी, १९५० से लेकर अनुदर्शी रूप में लागू किया। सरकारी सम्मेलन में यह निश्चित हुआ कि १९५३ की पहली अप्रैल के पहले किसी भी तारीख से यह कर अनुदर्शी रूप में वसूल किया जा सकता है।

सविधान मे राज्यो को यह भी आदेश दिया गया था कि वे किसी भी वस्तु पर, जो समाज के जीवन के लिए कानून-द्वारा अत्यावश्यक करार दी गई है, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति के बिना कर न लगाएँ। १९५२ में कानून पारित हुआ था जिसमें कुछ वस्तुओ को समाज के जीवन के लिए अत्यावश्यक करार दिया गया। स्पष्ट ही इस रोक का उद्देश्य यह था कि इन वस्तुओ पर करभार कुछ हद तक एकरूप हो और उद्देश्य यह न था कि इन पर बिलकुल ही बिक्री-कर न लगाया जाय। राज्य सरकारो ने इस नियम की निन्दा की, क्योकि जिन राज्यों ने इस कानून के पारित होने के पहले उन वस्तुओ पर कर लगा रखा था, वे लाभ में रहे। अत्यावश्यक वस्तुओ की सूची बहुत लम्बी थी, और इनमें से कुछ जिसो पर केन्द्र द्वारा उत्पाद-कर तथा सीमाशुल्क के रूप में कर लगाया जाता था।

राज्यो ने बढती हुई आवश्यकताओ तथा सविधान के रोकवाले नियमो के साथ अपनी पद्धतियो का ताल-मेल स्थापित करने के लिए विभिन्न उपाय किये, और उनसे जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, उनसे पद्धति बहुत ही जटिल हो गई। कर की ऊँची दर के कारण मध्यवर्ती लोग समाप्त हो गये। यो तो बहुपदी कर पद्धति में भी बहुत सी छूटो की जरूरत पडती थी। रिआयती दरें भी देनी पडी। आयातकारी राज्यो ने अनिवासियों पर न्यायाधिकार स्थापित करने के लिए जो बातें कीं, उनसे ज्यादतियाँ हुई।

कुछ सुझावो की जाँच

बिक्री करों के सम्बन्ध में कई तरह के सुझाव दिये गये, कुछ सुझाव तो कर के दायरे को बढ़ाने के सबध में थे, और कुछ सुझाव ऐसे थे कि सीमाशुल्क, उत्पादकर और चुगी आदि लेकर इसका खात्मा कर दिया जाय। सर्वत्र प्रयोग के लिए भी कई तरह के उपाय जैसे चुनी हुई चीजो पर बिक्री-कर, प्रथम सोपान पर बिक्री-कर, कम दर वाला बहुपदी-कर और क्रय-कर आदि सुझाए गए थे। एक प्रस्ताव यह भी था कि बिक्री कर यूनियन के दायरे में कर दिया जाय।

सेवाओ पर कर के सम्बन्ध में भी कई सुझाव दिये गये। सेवाओ को कई भागों में बाँटा जा सकता है—शुद्ध सेवा, किसी वस्तु को बनाने में विशेष प्रकार की सेवा, और ऐसी सेवा जो कुल लेन-देन के एक अग के रूप में हो। आयोग शुद्ध सेवाओ पर बिक्री-कर को लागू किये जाने के पक्ष मे नही क्योंकि उसे गम्भीर प्रशासनीय दिक्कतें हो जायँगी। परिहरण आसान हो जायगा और सम्भव है कि सेवाओ पर कर पेशे पर लगे कर को दुगुना कर दे। लगभग सभी राज्य इस विस्तार के विरोधी थे।

कुछ विशेष वस्तुओ पर जिनके बनाने में एक हद तक सेवा या हुनर लगा है, कर निर्धारण कुछ राज्यों में नियमित है। कुछ राज्यो ने विशेष वर्गों को छूट दे रखी है। इनके विषय में कोई सिफारिश नही की गई।

ऐसी चीजो की बिक्री पर, जिन पर सेवाएँ और कच्चा माल लगता है, कर निर्धारण-सम्बन्धी स्थिति आमतौर पर सन्तोषजनक है। विभिन्न परिस्थितियो के लिए विभिन्न सूत्र अलग-अलग राज्यों में प्रचलित है।

आगे के सौदे-सम्बन्धी कारोबारो (फारवर्ड मार्केट) पर बिक्री कर के बजाय स्टाम्प शुल्क के द्वारा उचित रूप से अधिक कर लगता है। स्टाम्प-शुल्क क्लीयरिंग हाउस के द्वारा एकत्र किया जाय, जिसे प्रत्येक महत्त्वपूर्ण आगे के बाजार रखते है या यदि नही रखते तो उन्हे रखने के लिए मजबूर करना चाहिए।

अखबारो तथा विज्ञापनो पर इस समय कर लगाना उचित न होगा क्योकि इस पर बहुत विरोध होगा। चाहे कुछ भी हो, बहुत से अखबारो को उनकी कठिन परिस्थितियो के कारण छूट देनी पडेगी। छूट के कारण प्रशासनीय दिक्कतें होगी और इससे राजस्व भी कम मिलेगा।

चुनी हुई चीजो पर इस आधार पर बिक्री-कर लगाने को कहा गया है कि वास्तविक रूप से कुछ थोडी सी जिन्सो से ही अधिकतर राजस्व प्राप्त होता है, और इसका मतलब तुलनात्मक रूप से कम व्यापारियो पर कर लगाना होगा। पर जिन्सो से जो वसूली हुई है, उसके विश्लेषण से यह मत पुष्ट नही होता। कुछ वस्तुओ तक कर को सीमित कर देने का अर्थ ऊँची दर पर कर लेना होगा। अपेक्षाकृत कम धनी वर्गो पर करापात बढेगा और कर-पद्धति अधिक प्रतिक्रियावादी हो जायगी।

प्रथमपदी कर का सुझाव वर्तमान पद्धति के एवज में रखा गया है। इस प्रस्ताव के पक्ष में दूसरे देशो के तजर्बे की बात कही जाती है। राजस्व के दृष्टिकोण से प्रथमपदी कर को बिक्री-कर की कुल शाखाओ के एक पर्याप्त भाग को अपने में समेट लेना पडेगा। यह तभी हो सकता है जब कि अधिकतर व्यापार और व्यवसाय कुछ थोडे-से बडे उत्पादको, आयात-कारियो तथा थोक विक्रेताओ द्वारा होता हो। इस पद्धति के सम्बन्ध मे यह कहा गया है कि प्रशासन आसान होगा क्योकि करदाता कम होगे और कर अधिकारियो की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में अधिक समर्थ होंगे। यह कुछ दूसरे देशो के लिए सत्य हो सकता है, पर इस देश की स्थिति में लागू नही है। बम्बई बिक्री-कर खोज समिति ने इस सुझाव पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि इसके अनुसार न तो कारोबारियो को लाभ रहेगा, और न बिक्री-कर विभाग को। एकपदी बिक्री कर की तुलना में इसमें कई असुविधाएँ है। इसलिए यह पद्धति इस देश के लिए आमतौर पर लागू होने योग्य नही है, पर दूसरी पद्धतियो के साथ कुछ हालतो में काम में लाई जा सकती है।

पेट्रोल कर, जो कई दृष्टियो से एक बिन्दु पर प्रथमपदी कर का ही एक रूप था, एक विशेष प्रकार का है, क्योकि पेट्रोल का उत्पादन तथा वितरण सगठित है और यह तुलनात्मक रूप से उच्च कर सह सकता है।

सभी राज्यो में कम दर वाले बहुपदी बिक्री-कर की सम्भावना पर बातचीत चलाई गई है। इसमें कोई सन्देह नही कि ऐसा करने पर हिसाब-किताब का काम सरल हो जायगा, पर कम दर से राज्यो को उतना राजस्व नही मिलेगा जितना अब मिलता है। वर्तमान पद्धति के सम्पूर्ण एवजी के रूप मे बहुपदी या एकपदी कर में यह कोई माकूल समाधान नही है, यद्यपि एक पुनर्संगठित बिक्री-कर-पद्धति की सहायक विशेषता के रूप मेंयह अच्छा काम कर सकता है।

लोगो ने यह जो सुझाव रखा है कि बिक्री-कर के स्थान पर क्रय-कर लगाया जाय, उसका उद्देश्य उस कठिनाई को दूर करना है, जो अनिवासी कारोवारियो पर कर लगाने के सम्वन्ध में उत्पन्न होती है। यह जो सुझाव रखा गया है कि राज्यो को चाहिए कि वे अपने निजी कारोवारियो पर क्रय-कर लगाएँ न कि उन अनिवासी कारोवारियो पर, जिन्होने उन्हे माल वेचा है, आकर्पक ज्ञात हो सकता है, पर इसकी वहुत गम्भीर सीमाएँ है। मद्रास जैसे वहुपदी राज्यो को अनिवासी कारोवारियो पर कर लगाने से अपने यहाँ के कारोवारियो पर क्रय-कर लगाने की अपेक्षा कही अधिक राजस्व मिलता है। इसके अलावा यह भी कठिनाई है कि भिन्न स्वार्थवाले विभिन्न राज्य कहाँ तक आपस में सयोजन करेंगे, जिससे आयातकारी राज्य को अपने यहाँ के कारोवारियो पर क्रय-कर लगाने में आसानी पडे। इस प्रकार क्रय-कर उन विशेष कठिनाइयों का समाधान नही करता, जिन्हे समावान करने के सम्वन्व में इसका दावा है।

ऊपरी तौर से देखने पर बिक्री-कर, सीमा-शुल्क, उत्पाद-कर, तथा चुगी के तुल्य मालूम हो सकता है, पर जहाँ तक कि यह सव वस्तुओ पर लगाया जाता है, तथा इसका आपात, जो वास्तविक रूप से सम्पूर्णत उपभोक्ता पर पडता है, इसके सग्रह का तरीका, जो कारोवारी की कर दान-सम्वन्वी जिम्मेदारी पर आवारित है, इसे उत्पाद-कर तथा चुगी से अलग कर देता है। उत्पाद-कर उत्पादन पर कर है, न कि बिक्री या बिक्री से प्राप्त राशि पर। इसलिए उत्पाद-कर का सम्बन्ध साधारण रूप से उत्पादन केन्द्रो से ही है।

चुगी किसी विशेष क्षेत्र में प्रवेशबिन्दु पर लिए हुए कर को कहते है, और कई क्षेत्रो में इसका उपभोग की विभिन्न श्रेणियो से कोई सम्बन्ध नही है। यह पानेवाले, ले जानेवाले या भेजनेवाले से वसूल किया जाता है, और आवश्यक रूप से कारोवारी से नही।

सीमा-शुल्क स्वय बिक्री-कर का स्थान नही ले सकते। वाहर से आये हुए कई माल ऐसे है जो देश में भी उत्पन्न होते हैं और उत्पाद-शल्क सब घरेलू औद्योगिक माल पर प्रसारित नही किये जा सकते। इसलिए यह स्पष्ट है कि उत्पाद और सीमाशुल्क के किसी भी समन्वय से उतना राजस्व नही मिल सकता जितना कि बिक्री-कर से मिल सकता है, क्योकि बिक्री-कर उपभोक्ता के पास क्रियाशील होने के कारण ऐसे सब मालो को अपने दायरे में समेट सकता है। बिक्री-कर में यह सिफ्त है कि वह बहुत से मालो तथा कारोबारियो तक फैला हुआ है। इसलिए अपेक्षाकृत कम दर होते हुए भी यथेष्ट राजस्व ला सकता है। भले ही यह केन्द्रीय रूप से वसूल किया जाये फिर भी यह कर-पद्धति में एक फालतू चीज न होगी जिसे उत्पादकर, सीमाशुल्क तथा चुगी के समन्वय से सुविधाजनक रूप से हटा दिया जा सकता हो। बिक्री-कर की वर्तमान पद्धति में बताई गई दिशा में परिवर्तन होने पर भी उन समस्याओ का समाधान नही होगा जो मौजूदा सविधान के दायरे में बिक्री-कर के लागू होने से उत्पन्न होती है।

यूनियन, राज्य और बिक्री-कर

बिक्री-कर-पद्धति के भविष्य का तकाजा यह है कि नीति-सम्बन्धी बडे प्रश्नो पर निर्णय हो जाय। सबसे बडा प्रश्न तो यह है कि इस पद्धति में यूनियन और राज्यो को क्या

स्थान दिया जाय। राज्य बिक्री-कर के विना चल नही सकते और दो या इससे अधिक राज्य के शब्दो में कहा जाये तो बिक्री-कर यूनियन के विना नही चल सकता। इस पद्धति में यूनियन को एक स्थान देने की वहुत भारी जरूरत है, वह स्थान है अन्तर्राज्यीय बिक्रियों से सम्वद्ध सारा क्षेत्र। बिक्री-कर के अन्तर्राज्यीय क्षेत्र में कानून तथा प्रशासन के बजाय जो बदलती हुई आवश्यकता के अनुसार स्वय बदल सके, संविधानिक कड़ाइयो का बोलवाला है। अन्तर्राज्यीय क्षेत्र में कानून और प्रशासन औपचारिक रूप से ही नही वल्कि वास्तविक रूप से यूनियन के हाथो में होना चाहिए। जहाँ तक व्यावहारिक क्षेत्र का सम्वन्ध है, प्रशासन का कार्य राज्यों को सौंपा जाय। जो राजस्व अन्तर्राज्यीय या राज्य के अन्दर प्राप्त हो वह उपयुक्त राज्यो को मिलना चाहिए। अन्तर्राज्यीय क्षेत्र में राज्य ऐसी पद्धतियों को विकसित करने में स्वतन्त्र हों, जो उसकी विशेष परिस्थितियो के लिए उपयुक्त हो। आयोग का कहना है—"इस प्रकार प्रत्येक राज्य में एक ऐसी पद्धति हो, जिससे उसकी अपनी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, और सारे भारत के लिए एक सयुक्त पद्धति उत्पन्न हो, जिसमें राज्यो में परस्पर और राज्य तथा यूनियन में असरदार तरीके से सहयोग हो सके। यही संक्षेप में हमारी मुख्य सिफारिश है, जिसके सम्वन्ध में और व्याख्या की जरूरत है। वह यथास्थान की जायगी।"

बिक्री-कर को सामने रखते हुए व्यापार और उद्योग-धधे की तुलना के आधार दो हैं। आन्तरिक व्यापार पर कर का जो असर होता है, उसका फिर अन्तर्राज्यीय व्यापार पर असर पडता है। कर देने का भार व्यापारी पर है। इस प्रकार से इस पद्धति के विरुद्ध एक आन्दोलन खडा हुआ है, और इसे हटाने की माँग की जा रही है। इसका विरोध मुख्यत फुटकर व्यापारियो की ओर से हुआ, जिन्हे तरह तरह का हिसाब रखना पडता है। उपभोक्ताओ की ओर से भी इसका विरोध हुआ क्योकि प्रत्यक्ष रूप से उन पर एक उच्च शुल्क का भार पडता है, सारे व्यापारी समाज की ओर से भी इसका विरोध हुआ क्योकि वहुपदी कर का अर्थ माल उत्पादको, आयातकारियो तथा फुटकर वेचनेवालो में व्यापार की कडियों की कमी होना है, जिसका अर्थ कारोवार में कमी तथा वेकारी का वढना है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के वाद जो उपाय किए गए, उनसे व्यापारियों की हालत और विगड गई। इसलिए व्यापार, उद्योग-धन्धो तथा वाणिज्य के प्रतिनिधियो ने बिक्री-कर के केन्द्रीकरण की माँग की है। लगभग सभी राज्यों ने इसका कडाई के साथ विरोध किया है। बिक्री-कर राज्यों की पद्धतियो का एक अविच्छेद्य अग है, और यदि इस तरह के महत्वपूर्ण तथा लचीले अग की हानि हुई, तो सचमुच गड़वड़ी पैदा हो जायगी। बिक्री-कर की प्रधान विशेषता आर्थिक औजार के रूप में इसका लचीलापन है जिससे राज्य सरकारो को विभिन्न राज्यो की वहुत ही भिन्न परिस्थितियो में इसे अपने लायक वनाकर काम करने का मौका मिलता है। उपभोग की श्रेणियाँ तथा कारोवारियो के वर्ग प्रत्येक राज्य में वहुत अलग-अलग हैं। आयोग का कहना है—"यदि बिक्री-कर को रखना है तो यह लचीलापन भी रहेगा। इस कर का केन्द्रीकरण इस आधार पर नही होना चाहिए कि यह लचीलेपन की रक्षा का विरोधी है।"

प्रत्येक राज्य में उपभोग की श्रेणियाँ तथा कारोवारियो के वर्ग वहुत अलग-अलग है। कर-प्रशासन के सम्वन्ध में कठिनाइयाँ सव राज्यो में है, पर उस सम्वन्ध में भी प्रत्येक राज्य

की स्थिति अलग-अलग है, और यदि इन सब को एक साथ लिया जाय तो एक बहुत बडी और भयानक समस्याओ का तांता सामने आता है। केन्द्रीय सरकार के किसी विभाग के लिए इस कर का प्रशासन-भार अपने ऊपर लेना अव्यावहारिक होगा, इसमें भी विशेष महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि केन्द्रीय सरकार की जो कानून तथा नियम बनाने की शक्ति है, उसके द्वारा स्थानीय शिकायतो को फौरन और प्रभावोत्पादक रूप में दूर करना कठिन होगा, जैसा कि बिना किसी विलम्ब के अक्सर करना पडता है। आयोग का कहना है—"इस पृष्ठभूमि में हमारा यह दृढ विचार है कि बिक्री-कर को राज्यीय से केन्द्रीय सरकार को स्थानान्तरित नही किया जा सकता।"

यह तो सही है कि इस कर का लगाना राज्यो के द्वारा जारी रहे, पर इसके कुछ पहलू है जिन पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की दृष्टि से विचार होना चाहिए। वे चीजें हैं वैदेशिक व्यापार, उद्योग तथा वाणिज्य तथा समाज के जीवन के लिए आवश्यक माल पर कर-निर्धारण। विदेशी व्यापार का जहाँ तक सम्बन्ध है सविधान के अनुसार वर्तमान परिस्थिति सतोषजनक है, और किसी भी राज्य ने इस विशेप व्यवस्था के बारे में शायद ही कोई शिकायत की हो। अन्तर्राज्यीय वाणिज्य के सम्बन्ध में जो नियम हैं, उनसे व्यापार के लिए कई बहुत बडी जटिलताएँ उत्पन्न हो गई है, और सभी राज्य सरकारो ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई है। सविधान में यह स्पष्टता के साथ बताया गया है कि कर उपभोग के साथ सम्बद्ध है, और निर्यात व्यापार इसमें से कोई हिस्सा वसूल न करे। इससे उपभोक्ताओ के द्वारा एक विशेष ढग से कर परिहरण किया जाने लगा है तथा कर सग्रह करनेवाले राज्यो के अपजीकृत कारोबारियो का ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया है जो दूसरे राज्यो से क्रय करता रहता है। यदि राज्यों में इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण सहयोग और सयोजन होता, तो कठिनाइयाँ न होती, पर व्यवहार में ऐसा नही रहा। इसके अलावा यह भी कठिनाई थी कि कोई ऐसा ढग नही निकल पाया जो बहुपदी और एकपदी पद्धतियो पर समान रूप से लागू होता। बहुपदी पद्धति वाले राज्य अन्तर्राज्यीय कारोबार का बहुत-सा कर हडप कर जाते है।

राज्यो की शक्तियो को सीमित कर देने के कारण के रूप में अनिवार्यता तथा अन्तर्रा-ज्यीय व्यापार के बीच में एक महत्त्वपूर्ण फर्क है। अन्तर्राज्यीय व्यापार के सम्बन्ध में किसी राज्य की सरकार तथा दूसरे राज्य के उपभोक्ताओ तथा कारोबारियों के बीच साविधानिक रोक है। ससद और केन्द्रीय सरकार अनिवार्यता के सम्बन्ध में एक राज्य की आन्तरिक कर पद्धति में हस्तक्षेप करती रहती है। इसका कोई तर्कसगत कारण नही मालूम होता कि केन्द्रीय सरकार विभिन्न राज्यो के लिए विभिन्न वस्तुओं को आवश्यक क्यो न करार दे, पर केन्द्रीय सरकार सर्वदा अखिल भारतीय ढग से सोचती है, और इसका नतीजा यह होता है कि ऐसे मालों पर छूट दी जाती है, जो राज्यो की अलग-अलग इकाइयो की दृष्टि से नही, बल्कि सब राज्यो के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार अनिवार्यता सम्बन्धी तर्कसगत विभिन्न धारणाओ तथा अन्तर्राज्यीय व्यापार के बीच काफी घुटाला हो जाता है। इसके अलावा साविधानिक व्यवस्थाएँ उन मालो पर लागू नही होती, जिन पर बिक्री-कर लगाए जा चुके हैं। इसका कोई कारण नही मालूम होता कि कोई राज्य अपने बिक्री-कर के

विस्तार तथा दर के सम्वन्ध में निर्णय क्यों न करे, जिसका वोझ उसके निवासी उपभोक्ताओं पर पडता है, और जिसका सग्रह उसके निवासी कारोवारियो द्वारा होता है। आयोग का सुझाव है कि "जहाँ तक किसी एक राज्य के लोगो पर उसी राज्य के विक्री-कर का सम्वन्ध है, हमें यह अनावश्यक मालूम होता है कि केन्द्रीय सरकार ससदीय कानून निर्माण के द्वारा एक ऐसे न्यायाधिकार को उसी राज्य की अपनी शक्तियों के रूप में चालू रखे, जो साथ ही सगामी और एक दूसरे को काटनेवाला है।" सविधान में अन्तर्राज्यीय कारोवार में विक्री-कर के सवध में केन्द्रीय सरकार की हस्तक्षेप-सवधी जो व्यवस्था है, वह अनुपयुक्त है। फिर भी इस पर यह प्रतिवन्ध तो होना ही चाहिए कि विक्री-कर ऐसा न हो कि उसका अर्थ अनिवासी उपभोक्ताओ से वसूली हो। राष्ट्रीय आर्थिक नीति का आनुगत्य ऐसा मामला है जिसका न केवल विक्री कर पर असर पडता है वल्कि राजकोषीय तथा अन्य आर्थिक मामलो पर भी असर पडता है। इसके लिए उपयुक्त तरीका यह होगा कि आर्थिक विकास में जिसमें, राजकोषीय नीति भी आ जाती है, समुचित सयोजन किया जाये, न कि विक्री-कर के सवध में कोई विशेष व्यवस्था हो।

विक्री-कर के भविष्य में विकास के लिए आधारभूत नीति के लिए ये मोटी-मोटी वातें हैं :—

विक्री-कर राज्यीय कर के रूप में ही चालू रहे।

राज्य की जिम्मेदारी और शक्ति उसी जगह समाप्त हो जाय तथा यूनियन की शक्ति और जिम्मेदारी का उसी जगह आरम्भ हो, जहाँ एक राज्य दूसरे राज्य के कारोवारियों पर प्रशासनीय रूप से तथा उपभोक्ताओ पर राजकोषीय रूप से हावी होता हो।

अन्तर्राज्यीय विक्रियाँ यूनियन का काम हो।

माल की विक्री दो प्रकार से विभक्त हो, एक तो अन्तर्राज्यीय व्यापार तथा वाणिज्य के दौरान में हो, और दूसरी जो ऐसी न हो।

वसूली तथा नियंत्रण के सवध में यूनियन की शक्ति इस प्रकार कार्यान्वित हो कि कोई परिहार्य द्विगुणन (डुपलिकेशन) न हो, और राज्यो में परस्पर सयोजन के लिए उत्तेजना वनी रहे।

इन वातो के अधीन प्रत्येक राज्य को यह स्वतत्रता रहे कि वह अपनी परिस्थितियों के अनुसार सवसे अच्छी विक्री-कर पद्धति विकसित करे।

इसके वाद आयोग ने ऊपर वताई हुई विक्री-कर नीति को कार्यान्वित करने के संवध में कुछ साविधानिक सशोधनो का सुझाव दिया है। सक्षेप में इन संशोधनो में सव अन्तर्राज्यीय कारोवार तथा कुछ ऐसे कारोवार के सम्वन्ध में जो भले ही अन्तर्राज्यीय न हो, पर ऐसी वस्तुओ के सवध में, जो अन्तर्राज्यीय व्यापार के लिए महत्वपूर्ण है, केन्द्रीय रूप से कानून वनाने की व्यवस्था की गई है। "केन्द्रीय सरकार कर लगायेगी, साथ ही ससद द्वारा वनाये हुए कानून में इसकी व्यवस्था होगी कि राज्यो को कर-निर्धारण, कर-सग्रह आदि के विपय में केन्द्रीय सरकार के अधिकार दिए जाएँ।"

कुछ अपवादो के अतिरिक्त वाकी सब वसूलियो को अपने पास बनाये रखने की भी एक पद्धति होगी।

यह बहुत ही जरूरी है कि अन्तर्राज्यीय कर-निर्धारण की उन्ही थोडी सी मदो पर नियत्रण रहे, जो अन्तर्राज्यीय व्यापार के लिए महत्त्वपूर्ण तथा पारिभाषित जिन्स है। ये जिन्स कच्चा माल या कच्चे माल के ढग की चीज हो। अन्तर्राज्यीय कारोवार के परिमाण की दृष्टि मे यह विशेष महत्त्वपूर्ण है, और समस्त देश की दृष्टि से और उपभोक्ता तथा उद्योगधधो की दृष्टि से भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसे कार्यान्वित करने के लिए सविधान में कुछ सशोधनो की आवश्यकता है। सशोधन का प्रकार यह होगा कि सब तरह के अन्तर्राज्यीय कारोवार और साथ ही अन्तर्राज्यीय व्यापार के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण मालो का कारोवार केन्द्रीय कानून के अधीन हो जायगा। प्रस्तावित केन्द्रीय कानून में अन्तर्राज्यीय व्यापार में विक्रियो पर किस दर से कर वसूल किया जायगा, यह वर्णित होगा। ये दरे तुलनात्मक रूप से सब मालो पर, सिवा उन मालो के जो विशेष महत्त्व के हैं, लगभग एक प्रतिशत हो। विशेष महत्त्व के माल पर भी एक रुपये पर एक पैसे से अधिक न हो। किसी राज्य के पजीकृत कारोवारियो तथा दूसरे राज्य के अपजीकृत कारोवारियो या उपभोक्ताओ के वीच जो कारोवार हो, उस पर उसी दर से कर लगे, जो निर्यातकारी राज्य अपने इलाके के अन्दर के उसी तरह के कारोबार पर लगाते हैं। कानून में साधारण द्रव्यो तथा विलासिता के द्रव्यो मे किसी प्रकार के भेदभाव करने की आवश्यकता नही है, भले ही आन्तरिक बिक्री के लिए उन राज्य सरकार की अपनी दरें भिन्न हो।

केन्द्रीय कानून का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह हो कि यूनियन तथा राज्यों के तुलनात्मक न्यायाधिकार क्षेत्रो की ब्योरे में परिभाषा की जाय जिससे कि इसमें कोई सदेह न रहे कि बिक्री किस क्षेत्र में हुई। विशेषज्ञ परीक्षण के वाद ही सम्बद्ध सिद्धान्तो का निश्चय हो सकता है। ऐसा किया जाये और वे सिद्धान्त कानून के अन्तर्गत कर लिये जायें।

अन्तर्राज्यीय व्यापार में विशेष महत्त्व वाले मालो पर राज्यीय बिक्री-करो को नियमित करने के लिए केन्द्रीय कानून में ऐसे मालो का स्पष्टीकरण किया जाये तथा उन मालो के आन्तरिक व्यापार पर कर-निर्धारण की शर्तें तथा रोकें लगाई जायें। मुख्य शर्त यह होनी चाहिए कि किसी भी राज्य में किसी पजीकृत कारोबारी के द्वारा की गई बिक्री या क्रय के अन्तिम सोपान पर कर वसूल करने की एकपदी पद्धति के अतिरिक्त और कोई पद्धति न हो।

अन्तर्राज्यीय व्यापार पर प्रस्तावित बिक्री-कर के फलस्वरूप जो प्राप्तियां हो, वह कर वसूल करनेवाले राज्य के द्वारा केन्द्रीय सरकार की ओर से पूर्ण रूप से रख ली जायें, पर जहां किसी राज्य के पजीकृत कारोबारी तथा दूसरे राज्य के अपजीकृत कारोबारी और उपभोक्ता के बीच व्यापार पर कर लगता है, वहां कर लगानेवाला राज्य अन्तर्राज्यीय व्यापार के लिए निर्दिष्ट दर पर वसूली को अपने पास रख ले, और इसके अलावा जो वसूली हो, उसे उस राज्य को सौंप दे, जिसने माल प्राप्त किया हो। राज्य के अन्दर जो माल बिक्री-कर से मुक्त हैं, वे केन्द्रीय कर से भी मुक्त होगे, और राज्य उन विशेष रूप से वर्णित मालों पर भी कोई क्रय-कर नही लेगा, जिन पर अन्तर्राज्यीय बिक्री में केन्द्रीय कर वसूल किया गया है।

कोयला, लोहा, इस्पात, कपास, चमडा, तिलहन तथा पटसन केन्द्रीय कानून में अन्तर्राज्यीय व्यापार में महत्त्वपूर्ण माल करार दिये जायँ। यह सूची सिवाय उन सिद्धान्तो की रोशनी में जिनकी सिफारिश की गई है वढाई न जाये, तथा अन्तर्राज्यीय कर निर्धारण परिषद् की सलाह से ही इस सूची में वृद्धि की जाय।

राज्य और बिक्री-कर

यथेष्ट राजस्व प्राप्त करने के लिए आम बिक्री-कर उपयुक्त है। कम आय वाले वर्गों तक पहुँचने के लिए कर की दर नीची होनी चाहिए और पद्धति भी वहुपदी होनी चाहिए। करदेयता सम्वन्धी आवश्यकताएँ सरल हो और या वे छोटे कारोवारियो की क्षमता के अनुसार हो। यदि कर सारे लेन-देन तक प्रसारित कर दिया जाये, तो इससे यह कारोवारियो तथा मालो, दोनो ही की दृष्टियो से वहुत विस्तृत हो जायगा। कर की दर थोडी होने के कारण दरिद्रतर वर्गों के रहन-सहन की लागत में कोई अनुचित वृद्धि न होगी। वड़े कारोवारियो के लिए यह कर एकपदी करके साथ मिला दिया जाना चाहिए। राज्य-सरकारो को आवश्यक परिवर्तन करने में कुछ समय लगेगा और प्रत्येक राज्य-सरकार के क्षेत्र में परिवर्तन की गति तथा परिवर्तनकाल की अवधि वहाँ की परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न होने के लिए वाध्य है। ५,००० रु० वार्षिक के ऊपर कारोवार के कारोवारियो को वहुपदी कर के अधीन करना चाहिए, ऐसे खेतिहरो के मामले में कुछ अपवाद मानना चाहिए जो अपने आप ही उत्पादन करते और उसे वेचते हैं। फुटकर कारोवारियो के लिए, जिनके लिए प्राथमिक हिसाव भी रखना असम्भव है, एक कम्पोजिशन वाली योजना होनी चाहिए। लेखा भरने के पर्चे सरल और आसानी से समझे जा सकें। वहुपदी-कर की नीची दर किसी भी राज्य के लिए स्वय विक्री-कर की एक उपयुक्त पद्धति नही हो सकती। उच्चतर दर पर किसी कर को वसूल करने का सवसे अच्छा तरीका यह है कि एकपदी पद्धति में कर विक्री के अन्तिम सोपान में वसूल किया जाये। यदि कर योग्य राशि तुलनात्मक रूप से ऊँची सीमा पर, मान लीजिए ३०,००० रु० वार्षिक पर निर्दिष्ट हो, तो कारोवारी मुख्यतः शहरी इलाको के होगे और वे हिसाव-किताव अधिक अच्छी तरह से रख सकेंगे। वहुपदी-कर की दर तथा कर योग्य राशि क्या हो, इस सम्वन्ध में प्रत्येक राज्य अपनी आवश्यकता तथा परिस्थितियो के अनुसार निर्णय करेगा। एकपदी पद्धति की उच्चतर दरें उन वस्तुओ पर लागू हो जो अपेक्षाकृत गरीव वर्गों के रहन-सहन की लागत से सम्वद्ध न हो। यह सव तरह के मालो पर आवश्यक रूप से एक जैसा न होगा। कुछ विलासिता की वस्तुओ पर उच्च शुल्क लगने चाहिएँ। इस समय कुछ राज्यो में साधारण और विलासिता के द्रव्यों में कोई फर्क नही है। इन राज्यो को विलासिता के द्रव्यो पर उच्चतर कर लगाना चाहिए। जिन राज्यो में इस प्रकार भेदमूलक दरें हैं, उन्हे विलासिता के द्रव्यो की सख्या वढानी चाहिए। एकपदी कर से छट केवल कुछ वडे और सुपरिभाषित माल के वर्गों को देनी चाहिए जो गरीव लोगो की जीवन-यात्रा में वहुत जरूरी हैं। स्वयं उत्पादको के द्वारा वेचे जाने वाले कच्चे माल को अपवाद मान लेना चाहिए। इसके अलावा विक्री-कर सम्वन्धी रियायतें किसी

प्रकार के व्यापार या कार्य को वढाने का कोई मुनासिव तरीका नही है। कुछ ऐसे सुपरिभाषित माल-वर्गों को इस रूप में छूट देनी चाहिए कि व्यापारी वर्ग और साथ ही प्रशासक भी इसे समझ सकें। जिन्सो के मूल्य से सम्वद्ध छूटें तभी लागू होती है, जव कि आमवर्ग की कोई जिन्स एक विशेष मूल्य के नीचे विकती है, तो उससे गडवडी पैदा होती है, हिसाव-किताव में जटिलता आती है और करापवचन होता है। इसलिए राज्यो को चाहिए कि वे ऐसी छूटो की विज्ञप्ति न दें।

राज्यो के लिए अनुकूल दरो के अनुसार उच्चतर कारोवार पर एकपदी कर लगाये जाने के साथ ½ प्रतिशत आधारभूत वहुपदी करवाली योजना लागू करने का एक परिणाम यह होना चाहिए कि राज्य सरकार के विक्री-कर-राजस्व में वृद्धि होगी। सभावना यह है कि लचीली कर-प्रणाली अपनाने से कर-प्रणाली सरल और अधिक युक्ति-युक्त होने के साथ-साथ प्रत्येक राज्य के राजस्व में वृद्धि होगी। अन्तर्राज्यीय कारोवार पर लगनेवाले केन्द्रीय कर की प्राप्तियो और अपवचन में कमी होने से राज्य को लाभ पहुँचना चाहिए। राज्यो के लिए अनिवासी व्यापारियो पर कर लगाना अनावश्यक हो जायगा। इस सिफारिश के मान लिये जाने पर यह अनिवार्य होगा कि राज्यो को अनिवासी व्यापारियो पर न तो कर लगाना चाहिए और न क्रय-कर लागू करना चाहिए।

व्यापार और उद्योग-धधो की ओर से विक्री-कर का जो विरोध हुआ, वह विशेषतर कर की प्रशासन-प्रणाली के परिणामस्वरूप हुआ। भ्रष्टाचार के आरोपो को यो ही उडा नही दिया जा सकता। कर-निर्धारण शीघ्र नही हुआ, और 'शेष' वाली राशि वरावर वढती गई। भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए ठोस और शीघ्र फल देने वाले उपाय किये जाने चाहिएँ, और नियम तथा प्रक्रियाएँ ऐसी वनाई जानी चाहिएँ जो स्पष्ट हो और सरलता से समझ में आ सकें। कर अधिनियम में कर-सग्रह सम्वन्धी सभी आवश्यकताओ का उल्लेख नही किया गया, और उनमें से कुछ का उल्लेख तो नियमो में भी नही हुआ। नियमो में प्रस्तावित सशोधनो के अध्ययन के लिए समय-समय पर व्यापार, उद्योग तथा जनता को जो समय दिया गया, वह अक्सर अपर्याप्त था। ऐसी भी शिकायतें आई कि नियमो में वहुत जल्दी-जल्दी परिवर्तन किये जाते रहे। राज्य-सरकारों को इन शिकायतो पर ध्यान देना चाहिए। बिक्री-कर तथा उससे सम्बन्धित आवश्यकताओं की व्यवस्था के सम्बन्ध में जो शिकायतें आईं, उनका सम्वन्ध छूट, हिसाव-किताब तथा विवरण-पत्रो से है। 'छूट' की जो परिभाषा दी गई, वह अस्पष्ट है। बिक्रियो पर छूट इस शर्त के साथ है कि बिक्रियाँ विशेष उद्देश्यो के लिए हो अथवा विशेष वर्ग के खरीदारो की हो। ऐसी बातो से कठिनाई पैदा होती है। आवश्यक यह है कि 'छूट' का क्षेत्र काफी विस्तृत हो तथा इसके साथ ऐसी शर्तें आदि जुडी न हो जिनके लिए प्रमाण पेश करने की आवश्यकता हो।

दूसरी बडी शिकायत हिसाब-किताब के पेचीदा होने की रही है। राज्य-सरकारो ने इन कठिनाइयों को आमतौर पर स्वीकार किया। बहुत से राज्यो में छोटे व्यापारियो के लिए कम्पोजिशन की एक योजना है। अधिकाश राज्यो में विवरण-पत्र दिया जाना आवश्यक है, और कर प्रत्येक तीन महीने के बाद दिया जाता है। इस प्रकार उन व्यापारियो

को अनावश्यक कठिनाई का सामना करना पडता है, जो विशेषकर 'छूट' वाली वस्तुओ का ही कारोवार करते है। ऐसे व्यापारियो के लिए साल मे दो बार विवरण-पत्र तथा कर देना अधिक उचित होगा।

विक्री-कर सम्वन्धी अधिकारियो के प्रशासकीय अधिकार अधिक विस्तृत है। इन पर उच्चतर अधिकारियों द्वारा कडी निगरानी रखी जाने की आवश्यकता है।

अधिकाश राज्यो में कर-निर्धारण का काम शेष पडा हुआ है। कर-निर्धारण में देरी होने के कारण कई पेचीदे झगड़े खड़े हो जाते हैं। शेष राशियो का सग्रह सुगमता से तभी हो सकेगा जव सग्रह करने का काम वर्ष समाप्त होने के तुरन्त वाद कर लिया जाये, नही तो अधिकाश मामलो में शेष राशियाँ प्राप्त ही न की जा सकेंगी। कुछ राज्यो में यह काम इसलिए बचा रह गया कि उनमे कर्मचारी अपर्याप्त थे। इस सम्बन्ध में कर्मचारियो का पर्याप्त सख्या में होना आवश्यक है।

जाँच-पडताल तथा निरीक्षण के कार्य की ओर भी उतना ध्यान नही दिया गया जितना दिया जाना चाहिए था। अपवचन का पता लगाने तथा विभाग और व्यापारियो के वीच सम्पर्क वनाये रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि निरीक्षण-कर्मचारियों का एक विभाग अलग खोला जाये।

राज्य में व्यापार के प्रकार तथा उपभोग आदि के सम्वन्ध में आँकडे रखने तथा व्यापारियो के कारोवार के सम्वन्ध में रेलवे तथा कर-अधिकारियो से जानकारी प्राप्त करके कर देने से बचने वालो का पता लगाने में सहायता देने के लिए प्रत्येक विक्री-कर विभाग में गुप्तचर विभाग का खोला जाना सर्वथा उचित है। सम्वन्धित्त लोगो की जानकारी के लिए आय-कर सम्वन्धी प्रक्रियाओं के विषय में राज्य सरकारें यदि विश्वसनीय पुस्तिकाएँ निकालने लगे, तो इससे भी काफी सहायता मिलेगी।

विक्री-कर लागू किये जाने पर पजीकृत व्यापारियो ने ग्राहको से विक्री-कर अलग से लेना शुरू कर दिया, इसे राज्य-सरकारो ने चुपचाप स्वीकार कर लिया। यह अनुचित था क्योकि ग्राहक विक्री-कर न देने के लिए व्यापारियो के साथ सौदेवाजी करने लगे, और व्यापारी भी विक्री-कर न लेने के लिए इस शर्त पर राजी होने लगे कि ग्राहक उनसे वाउचर न माँगें। वाउचरो तथा नकदी चिट्ठो का दिया जाना तो अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए, पर उनमें अलग से विक्री-कर के उल्लेख को प्रोत्साहन न दिया जाये।

कर-अपवचन की रोक-थाम के लिए प्रशासकीय आवश्यकताओ को, जिनमें हिसाव-किताव तथा विवरण-पत्र आदि आ जाते हैं, सरल वनाने की अधिक आवश्यकता तथा गुजाइश है। विभाग के उच्चतर अधिकारियो द्वारा निरीक्षण तथा आकस्मिक जाँच-पडताल की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, तथा छोटे अधिकारियो द्वारा किये गये कर-निर्धारणो का भी परीक्षण करवाया जाना चाहिए। अनुभव से पता चला कि कर-प्रणाली जितनी अधिक पेचीदा होगी, भ्रष्टाचार उतना ही अधिक वढेगा और लोगो में अपवचन की प्रवृत्ति का विस्तार होगा।

व्यापार तथा उद्योग-क्षेत्र के साथ उचित सम्पर्क वनाये रखने के लिए प्रत्येक राज्य

मे उपभोक्ता तथा व्यापार और उद्योग-क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक छोटी समिति स्थापित की जानी चाहिए। ऐसी विक्री-कर सलाहकार-समितियो द्वारा राज्य-हित-सम्बन्धी मामलो पर ही विचार किया जाना चाहिए न कि व्यक्तिगत झगडो तथा कठिनाइयो पर।

विभाग तथा व्यापारी के बीच के विक्री-कर सम्बन्धी झगडो की अन्तिम अपीलों का निर्णय करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक स्वतत्र अधिकारी होना चाहिए। अधिकाश राज्यो में सुनवाई के लिए ऐसी अपीलें उच्चतर कार्यपालिका अधिकारियो के पास जाती हैं, जिन पर व्यापारियो को उतना विश्वास नही होता, जितना उन्हे स्वतन्त्र अपील सुनने वाले अधिकारी पर होगा। कुछ राज्यो में विक्री-कर न्यायाधिकरण है, और उनका काम सतोषप्रद है। ऐसे न्यायाधिकरण सभी राज्यों में स्थापित किये जाने चाहिए।

विक्री-कर के प्रशासन के सम्बन्ध में राज्यो के बीच पारस्परिक जानकारी के विनिमय की आवश्यकता है। कई बार समान हित के मामलो में विभिन्न राज्यो के विक्री-कर विभागों के बीच पारस्परिक परामर्श आवश्यक पाया गया। इसके अलावा साल मे कम से कम एक बार सभी राज्यो के बिक्री-कर विभागो के अध्यक्षो का सम्मेलन भी वाछनीय है। ऐसे वार्षिक सम्मेलन अन्तर्राज्यीय कर-परिषद् के तत्वावधान में किये जाने चाहिएँ।

अन्तर्राज्यीय कर-परिषद् को वास्तविक दरो, विक्री-सीमाओ तथा छूट आदि के अलावा बिक्री-कर सम्बन्धी कानून, नियम तथा प्रक्रिया आदि के मामलो मे यथासभव एकरूपता लाने का प्रयास करना चाहिए। परिषद् इस कार्य को अपने विक्री-कर सम्बन्धी कार्यों में सर्वप्रथम कार्य समझे।

मोटरगाडियो तथा मोटर स्पिरिट पर राज्यीय कर

मोटरगाडियो तथा मोटर स्पिरिट पर केन्द्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय अधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रकार के कर लगाये जाते हैं। केन्द्र सीमा-शुल्क तथा उत्पाद-कर लगाता है, राज्य बिक्री-कर तथा मोटरगाडी-कर लगाते है तथा स्थानीय निकाय वाहन-कर और मार्ग-कर लगाते हैं।

मोटरगाडी-कर सारे भारत में पहले-पहल शुल्क (फीस) के रूप में भारतीय मोटरगाडी कानून, १९१४ के अन्तर्गत लगाया गया था। समय-समय पर इस शुल्क में वृद्धि की जाती रही। १९२७ में सडक विकास समिति ने सिफारिश की थी कि केन्द्रीय सरकार को मोटर स्पिरिट पर दो आना प्रति गैलन के हिसाब से विशेष कर लगाना तथा उससे जो कुछ भी राजस्व प्राप्त हो, उसे केन्द्रीय सडक कोष के नाम जमा करना चाहिए। इसी के साथ-साथ सिफारिश में यह भी कहा गया था कि राज्यो को सडक-विकास के लिए वित्त की व्यवस्था करने की दृष्टि से मोटरगाडियो पर कर लगाने की सभावना पर विचार करना चाहिए। ये सिफारिशें स्वीकार कर ली गई, और १९३० में मोटर स्पिरिट पर दो आना प्रति गैलन का अतिरिक्त कर लगा दिया गया। इस प्रकार प्राप्त होनेवाली राशि से केन्द्रीय सडक कोष का निर्माण हुआ। राज्यो ने मोटरगाडियो पर कर लगाने

के लिए अलग से कई कानून बनाये। सडक-विकास समिति ने सुझाया कि मोटरगाड़ियो पर समेकित (कनसोलिडेटेड) कर लगाया जाना चाहिए, तथा मार्ग-कर जैसे कर समाप्त कर दिये जाने चाहिए। इस सिफारिश पर कई राज्यो मे कार्रवाई की गई। उनमें से कुछ मे अलग से सड़क-कोष का निर्माण हुआ, और शेष राज्यो ने कर से होनेवाली वसूली को सामान्य राजस्व के रूप में दिखाया।

मोटरगाडियो पर लगाये जानेवाले कर का आधार भिन्न-भिन्न राज्यो में भिन्न-भिन्न है। मोटर स्पिरिट पर बिक्री-कर सबसे पहले १९३७ में मध्य प्रदेश में लगाया गया। अन्य राज्यो ने भी ऐसा ही किया, और 'ग' भाग के कुछ राज्यो को छोडकर भारत के अन्य सभी राज्यो ने मोटर स्पिरिट की बिक्री पर कर लगाया। विभिन्न राज्यों की दरें भिन्न-भिन्न थी।

सडक-विकास का सर्वप्रथम योजनात्मक कार्यक्रम १९४३ में नागपुर में होनेवाले मुख्य इजीनियरो के एक सम्मेलन में तैयार किया गया था। इस कार्यक्रम में ३१८ करोड़ रुपये की कुल लागत पर ३,६४,००० मील पक्की सडकें और बनवाने के दस वर्षीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया। वित्त तथा सामान की कमी के कारण योजना को पूर्ण रूप से कार्यान्वित नही किया जा सका। बाद के मूल्य-स्तरो के आधार पर योजना आयोग ने अनुमान लगाया कि नागपुर-योजना पर ७४४ करोड़ रुपये व्यय हो जायेंगे, जिसमें से १३३ करोड़ रुपये राष्ट्रीय मार्गों पर तथा शेष अन्य सड़को पर व्यय होगे।

केन्द्र ने १ अप्रैल, १९४७ से राष्ट्रीय मार्गों को कायम रखने के लिए वित्त-सम्बन्धी उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सडक-विकास योजनाएँ नागपुर-योजना से बहुत छोटी थीं। विशेषकर, ग्राम-संचार साधनो का विकास पूरी समस्या की तुलना में बहुत छोटे पैमाने का था।

मोटरगाडियो तथा मोटर स्पिरिट पर कई कर लग जाने तथा दरो में अधिक भिन्नता के कारण १९५० में मोटरगाडी-कर जांच समिति की नियुक्ति हुई। समिति द्वारा की गई जाँच-पडताल से पता चला कि भिन्न-भिन्न राज्यो में न केवल मोटरगाड़ी-करो की दरें ही भिन्न-भिन्न हैं, बल्कि कई अतिरिक्त कर जैसे प्रवेश कर, यात्रियों तथा सामान पर कर अथवा उपकर, अनुमतिपत्र आदि, बिक्री-कर, वाहन-कर, चुगी, आवागमन-कर तथा मार्ग-कर लगाये गये थे।

समिति ने सिफारिश की थी कि जहाँ तक राज्य सरकारो तथा स्थानीय निकायों का सम्बन्ध है, केवल ईंधन-कर तथा मोटरगाड़ी-कर लगाये जाने चाहिए, और अन्य सभी कर समाप्त कर दिये जाने चाहिए। मोटरगाड़ी-कर की उच्चतम दरें निर्दिष्ट हो, जिन्हें मद्रास में प्रचलित दरो से कम रखने की बात कही गई। मद्रास में ही उच्चतम दरें थी। कर के आधार के सम्बन्ध में समिति ने सिफारिश की थी कि मोटर साइकिलो पर सामान्य दरो पर, मोटर-कारों पर खाली अवस्था में वजन के अनुसार, सामान ढोनेवाली गाड़ियो पर लदी हुई अवस्था में वजन के अनुसार तथा बसो पर बैठने के स्थानो की सख्या के अनुसार कर लगाये जाने चाहिए। अन्य गाड़ियो के सम्बन्ध में समिति ने भूमि-राजस्व के प्रत्येक रुपये पर एक आने

के हिसाब से सडक-उपकर लगाने की मिफारिश की थी। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के प्रतिनिधियो से निर्मित परिवहन सलाहकार परिषद् ने समिति की सिफारिशो पर विचार किया। राज्यो के प्रतिनिधि मद्रास की दरो के स्तर पर उच्चतम दरो के लिए इस बात पर राजी हो गये कि प्रत्येक पांच वर्षों के अन्त में उस पर पुर्नविचार किया जाये। चुगी तथा अन्य स्थानीय करों तथा नगरपालिकाओ द्वारा लगाये जानेवाले वाहन-कर के उन्मूलन का आम तौर पर विरोध हुआ।

कई करो का लगाया जाना भारत के लिए कोई विचित्र बात नही। चुगी तथा टर्मिनल करों और मोटरगाडियो पर लगनेवाले कर के बीच बहुत कम सम्बन्ध है, क्योंकि पूर्वोक्त कर सामान पर लगाये जाते हैं, और शेपोक्त कर गाडियो पर लगाये जाते हैं। चुगी तथा अन्य करो के उन्मूलन के लिए जो तर्क दिये जाते है, उनका मोटर-गाडियो पर लगाये जानेवाले कर से कोई विशेप सम्बन्ध नही है। चुगी तथा अन्य करो से भिन्न नगरपालिकाओ द्वारा लगाया जानेवाला वाहन-कर परोक्ष कर है, जो राज्य सरकारो द्वारा मोटरगाडियो पर लगाये जानेवाले कर से अलग है। अपेक्षित यह है कि दोनो करो को समेकित कर दिया जाये, नगरपालिका द्वारा लगाया जानेवाला कर समाप्त कर दिया जाय, मोटरगाडी-कर बढा दिया जाये तथा अतिरिक्त कर को एक निश्चित सूत्र के आधार पर विभिन्न नगरपालिकाओ में बाँट दिया जाये। यह व्यवस्था बडे निगमो के अनुकूल न होगी। इनके क्षेत्र में ऐसे करो को मोटरगाडी-कर में मिला देने का प्रयास न किया जाय। पर राज्य-सरकारो को ऐसी मोटरगाडियो पर लगाये जानेवाले कर के सम्बन्ध में कुछ कमी करनी चाहिए, जिनका आवागमन केवल ऐसे निगमो की सीमाओ के अन्तर्गत ही होता हो।

अन्य सम्बन्धित राज्य-कर है—मोटरगाडियो तथा उनके पुर्जों पर बिक्री-कर, सामान तथा यात्रियो के ले जाये जाने पर कर तथा प्रवेश-कर जैसे विविध कर। जहाँ तक बिक्री करों का सम्बन्ध है, यह मान लेना कठिन है कि मोटरगाडियाँ उन वस्तुओ की सूची के उपयुक्त नही हैं, जिन पर राज्य सरकारें विशेष दरो पर कर लगाती है।

आसाम, बिहार, मद्रास तथा पजाब में यात्रियो तथा सामान पर कर लिया जाता है। राज्य सरकारें माल तथा यात्री ढोनेवाली गाडियो पर लगने वाले करो के उन्मूलन के विरुद्ध हैं जैसा कि मोटरगाडी-कर जाँच-समिति ने सुझाया था। यहाँ प्रासगिक विचारणीय बात यह है कि क्या इन करो तथा इनसे सम्बन्धित करो का सयुक्त प्रभाव ऐसा होगा जिससे मोटर परिवहन के विकास में बाधा पडेगी। जहाँ मोटरगाडी-कर स्वय ही बहुत अधिक है, वहाँ यात्रियों तथा सामान पर अलग से कर लगाना न्यायोचित नही होगा।

कुछ राज्य प्रवेश-कर वसूल करते है। दुबारा कर लगाने की समस्या के निपटारे के लिए 'क' भाग के कुछ राज्यो में पारस्परिक व्यवस्थाएँ है। किन्तु दूसरे राज्य में पजीकृत मोटरगाडियो पर लगने वाले प्रवेश-कर अथवा फीस, लाइसेन्स-शुल्क आदि समाप्त किये जाने चाहिए।

मोटर स्पिरिट के यातायात के किराये की दरों को एक समान करने के लिए मोटर-गाडी-कर जाँच-समिति ने परिवहन उपकर की सिफारिश की थी। सामुद्रिक राज्यों ने पेट्रोल के मूल्यो के समानीकरण का विरोध किया। उनके इस तर्क में कुछ वल अवश्य था कि मूल्यो के समानीकरण के लिए केवल पेट्रोल को ही न चुना जाये, और इसीलिए पेट्रोल पर परिवहन उपकर का लगाया जाना स्वीकार नही किया गया। पेट्रोल पर बिक्री-कर के सम्वन्ध मे प्रति गैलन ६ आने की दर एकसार की अपेक्षा उच्चतम मानी जानी चाहिए।

समिति ने यह भी सिफारिश की थी कि भूमि-राजस्व के प्रति रुपये पर एक आना के हिसाव से वैलगाडियों पर सडक-उपकर लगाया जाये। ग्राम-संचार-साधनों के लिए ग्राम-क्षेत्र से धन उपलव्ध होना चाहिए, क्योकि किसानो पर लगाये गये कर से होने वाली प्राप्ति की अपेक्षा इसके लिए कही अधिक वित्त की आवश्यकता है। ऐसे किसी भी प्रकार के उपकर के उपयोग का भार स्थानीय सस्थाओ पर छोड दिया जाना चाहिए।

मोटरगाडी-कर जाँच-समिति ने केन्द्रीय तथा राज्य-करो का एक भाग सड़क-विकास के लिए सुरक्षित रखने की एक विस्तृत योजना की सिफारिश की थी। समिति ने केवल केन्द्रीय सरकार के लिए ही नही, वल्कि राज्य सरकारों के लिए भी सडक-कोषो के निर्माण की तथा राज्यो के सामान्य राजस्वो मे से सडक व्यय का लगभग एक तिहाई उनके अपने सड़क-कोषो में लगाने की सिफारिश की थी।

यद्यपि राजस्व में से विशेष उद्देश्य के लिए धन सुरक्षित करने की प्रवृत्ति को साधारणतया प्रोत्साहन नही दिया जाना चाहिए, पर सडक-विकास के लिए इसे अपवाद मानना चाहिए। मोटरगाडियो तथा मोटर स्पिरिट पर लगनेवाले करो से होनेवाली प्राप्ति में से धन सुरक्षित करने की निम्न व्यवस्था अधिक उचित होगी—

(क) केन्द्रीय सडक-कोप मे केन्द्र अपना वर्तमान वार्पिक दान देता रहे।

(ख) राज्यो को अपने सडक-कोष में मोटर स्पिरिट पर लगने वाले कर से होने वाली अपनी प्राप्तियो में से कम से कम २५ प्रतिशत देना चाहिए; इसके अतिरिक्त मोटरगाडी-कर से होने वाली प्राप्ति के शेप का भी कम से कस २५ प्रतिशत इस कोप में दिया जाना चाहिए।

(ग) केन्द्रीय सरकार को केन्द्रीय सडक कोप में से राज्य सरकारो को अनुदान देते रहना चाहिए।

(घ) ग्राम-सचार-साधनो का काफी विस्तार किया जाना है; एक विशेपज्ञ-समिति को ग्राम-सचार-सावनो के विकास के लिए एक विस्तृत योजना के प्रोद्यौगिक तथा वित्तीय पहलुओ का सर्वेक्षण करना चाहिए।

(ङ) एक अखिल भारत ग्राम-सचार-साधन कोप स्थापित किया जाना चाहिए। केन्द्र को सीमा शुल्को और उत्पाद-करो में से ४½ आने प्रति गैलन के वरावर राशि इस कोप में डालनी चाहिए, जिसमें से सभी राज्यो को अशदान मिलने चाहिएं। राज्य सरकारों को ग्राम-सचार-सावनो पर होनेवाले व्यय के लिए केन्द्रीय अनुदान का कम से कम २५ प्रतिशत अंशदान देना चाहिए। स्थानीय वोर्डो तथा ग्राम-पचायतो को भी नि शुल्क श्रम तथा नि शुल्क सामान आदि के रूप में यथोचित अनुदान देना चाहिए।

मोटरगाडी-कर जांच-समिति ने आन्तरिक परिवहन नीति के सिद्धान्तो के सम्बन्ध में १९५० मे सयुक्त राष्ट्र सघ को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मडल द्वारा दिये गये सुझावों का साधारणतया समर्थन किया था। ये सुझाव सिद्धान्तो की उचित तथा पर्याप्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते है।

मोटरगाडी-कर जांच-समिति द्वारा सुझाया गया कर का आधार बहुत से राज्यो में पहले से ही प्रचलित और स्वीकृत हो चुका था।

मोटरगाडी-कर के लिए अधिकतम दरों का निर्धारित किया जाना मुख्यतः राज्यीय करों तथा यूनियन की नीतियो के समन्वय का प्रश्न है।

उन मामलो पर, जिनका समावेश परिवहन सलाहकार परिषद् की चर्चा में नही हुआ था, अन्तर्राज्यीय कर परिषद् द्वारा अतिम रूप से विचार किया जाना चाहिए। मोटरगाडियो पर कर लगाने के राज्याधिकार पर रोक लगाने वाले कानून बनाते समय इस परिषद् की सम्मति को ध्यान मे रखना चाहिए।

स्टाम्प-शुल्क (मुद्राक कर) तथा न्यायालय-शुल्क स्टाम्प-शुल्क

स्टाम्प-शुल्क का उपयोग विशेष करो के सग्रह के साधन तथा एक प्रकार के कर के रूप में होता है। इन शुल्को के आपात के सम्बन्ध में आम नियम बनाया जाना सभव नही है। दूसरे देशो में इनका उपयोग हो रहा है, और इन्हें कानून तथा लोकाचार का बल मिला हुआ है।

विलेख (इन्स्ट्रूमेण्ट) पर स्टाम्प-शुल्क दो सिद्धान्तों के आधार पर लगता है। शुल्क सौदे के मूल्य के आधार पर निर्धारित किया जाता है, किन्तु वह विलेख पर ही लगाया जाता है, सौदे पर नही। १९२२ से, जब स्टाम्प-शुल्क कुछ शर्तो के साथ प्रान्तीय सूची में हस्तान्तरित कर दिया गया था, कई राज्य स्टाम्प कानून की अनुसूची में आये हुए अधिकाश विलेखो पर शुल्क बढा चुके हैं। 'ख' भाग के राज्यो की दरें बहुत कुछ पडोस के 'क' भाग के राज्यो की जैसी ही हैं।

स्टाम्प-शुल्क मुख्यत सम्पत्ति के हस्तान्तरण के विलेखो, व्यापार-सम्बन्धी सौदे के विलेखो तथा स्टाक तथा जिन्स बाजार-सम्बन्धी विलेखो पर ही लिया जाता है। बम्बई सरकार वायदों के सौदो पर लगाये गये शुल्को से प्रतिवर्ष लगभग ५० लाख रुपये प्राप्त करती है। राजस्व की दृष्टि से अन्य सौदो से सम्बन्वित विलेख कम महत्त्व के हैं।

छूट तथा रियायतें विभिन्न राज्यो में भिन्न-भिन्न हैं।

शुल्क-अपवचन मुख्यत, सौदो के कम मूल्याकन किये जाने अथवा सही विलेख के स्थान पर दूसरे किसी ऐसे विलेख के, जिस पर कम शुल्क लगता हो, प्रस्तुत किये जाने तथा रिक्त-हस्तातरण के कारण होता है। अपवचन यद्यपि बहुत अधिक नही, तो भी काफी है। जब कि कर लगाने का कार्य काफी सन्तोषजनक ढग से हुआ, विभिन्न राज्यो में शुल्क-दरें तथा छूट की दरें भिन्न भिन्न हैं।

उन सौदो के, जो किसी राज्य की सीमा के बाहर नही होते, विलेखो के सम्बन्ध में स्टाम्प-

शुल्को की दर में एकरूपता न तो अनिवार्य है और न अपेक्षित, इन मामलो मे केन्द्रीय कानून के द्वारा उच्चतम अथवा एकसार दर लागू करके पारस्परिक अन्तर हटाया या दूर किया जा सकता है। किन्तु इसकी अत्यधिक आवश्यकता नही है, और इसे अन्तर्राज्यीय कर-परिषद् के लिए छोड़ा जा सकता है।

अधिकाश राज्यो मे शुल्क की दरें काफी ऊँची है, और 'ख' भाग के कुछ राज्यों को छोड़कर, उनमें आगे वृद्धि करने की गुजाइश वहुत थोडी है। चली आ रही छूटो तथा रियायतो के कुछ हद तक समाप्त किये जाने की गुजाइश है। राज्य सरकारो को छूट सम्वन्धी सूची की जाँच घ्यानपूर्वक करनी चाहिए, और उनमे से ऐसी छूटें रद्द कर दी जानी चाहिएं जिनका सरकार की किसी महत्त्वपूर्ण नीति के साथ सम्वन्ध न हो।

इस देश में वैंको तथा चेक की प्रथा अभी पूरी तरह से प्रचलित नही हुई है। इस दृष्टि से चेको पर स्टाम्प-शुल्क नहीं लगाया जाना चाहिए।

भारत के वाहर भरे जाने वाले किन्तु भारत ही में लागू होने वाले सामुद्रिक बीमा पत्रको पर भारतीय स्टाम्प-शुल्क नही लगता। चूकि सामुद्रिक वीमा का अधिक काम वाहर ही होता है, और इससे होने वाली राजस्व हानि वचाई जा सकती है, इसलिए सरकार को इससे सम्वन्धित कानून में उचित संशोधन करने के प्रश्न पर विचार करना चाहिए।

कुछ राज्य मनोरजन-शुल्को, मोटरगाड़ियो और यात्रियो तथा सामान पर लगने-वाले करो का सग्रह स्टाम्प के माध्यम से करते हैं। यह सुझाया गया था कि बिक्री-कर भी इसी प्रकार एकत्रित किया जाना चाहिए, परन्तु ऐसा करने में प्रशासन-सम्वन्धी कोई विशेष लाभ नही दिखाई पडता।

स्टाक तथा विनिमय वाजारो के सौदे सम्वन्धी विलेखो पर भी स्टाम्प-शुल्क लगाया जा सकता है। विभिन्न राज्यो में वायदा-वाजारो को जैसे-जैसे नियत्रण में लाया जाये, उनमें वैसे-वैसे वम्वई की भाँति कर लगाये जाने की सभावना होनी चाहिए।

न्यायालय-शुल्क

न्यायालय-शुल्क लगाने की वर्तमान प्रणाली का जन्म १७९५ में हुआ था। 'क' भाग के राज्यो में न्यायालय-शुल्क १८७० के भारतीय न्यायालय-शुल्क कानून के अन्तर्गत लगाया जाता है, इसमें विभिन्न राज्यो ने समय-समय पर संशोधन किये। 'ख' भाग के कुछ राज्यो ने अपने अलग कानून वना रखे है, जव कि अन्य राज्यो ने अखिल भारतीय कानून को ही अपना रखा है।

विभिन्न राज्यो में न्यायालय-शुल्क की दरें भिन्न-भिन्न है। उन्हे कई वार वदला जा चुका है। युद्ध-काल में मुद्रास्फीति-निरोधक उपाय के रूप में उनमें काफी वृद्धि की गई थी। कुछ राज्यो में २५ प्रतिशत से ५० प्रतिशत तक अधिभार लगाया गया था तथा अधिकांश मामलो में अधिभार प्रचलित दरो में ही सम्मिलित था। छूट तथा रियायतें मुख्यत प्रार्थनापत्रो अथवा आवेदनपत्रो पर निर्धारित शुल्क (फीस) के सम्वन्ध में दी जाती थीं।

विभिन्न राज्यो में न्यायालय-शुल्क की प्राप्तियो तथा न्याय-प्रशासन पर किये गये

व्यय के आंकडो से यह धारणा उन्मूलित हो गई कि राज्य सरकारो को न्याय-प्रशासन से काफी लाभ रहता है। न्यायालय-शुल्क, यदि लगाया भी जाये तो, उसका आधार यह होना चाहिए कि उससे न्याय प्रशासन पर होने वाला व्यय पूरा हो जाये। इसकी दरो में एकरूपता लाना अत्यन्त आवश्यक नही है। न्यायालय-शुल्क में कमी किये जाने से ही न्याय पर आने वाला व्यय कम नही होगा। किन्तु उन राज्यो को जिन्हे न्याय-प्रशासन पर आने वाले व्यय से कही अधिक राजस्व प्राप्त होता है, न्यायालय-शुल्क पर तुरत पुनर्विचार करना चाहिए, जिससे उसमें यथासभव उचित कमी की जा सके। न्यायालय-शुल्क कानून की अनुसूचियो में वृद्धि की गुजाइश बहुत अधिक नही है। कई छूटो के रद्द किये जाने से कुछ अतिरिक्त राजस्व भी प्राप्त किया जा सकता है। न्यायालय-शुल्क लिये जाने के सम्बन्ध में पूरा पूरा ध्यान रखे जाने तथा समय-समय पर कर्मचारियो द्वारा विशेष जाँच किये जाने के फलस्वरूप अपवचन कम हो जायगा।

अन्य राज्यीय कर

मनोरजन-कर

मनोरजन-कर साधारणतया उस मूल्य पर लगाया जाता है, जो किसी भी मनोरजन के स्थान में प्रवेश पाने के लिए दिया जाता है। ऐसे कर से प्राप्त होने वाला अधिकाश राजस्व सिनेमा से प्राप्त होता है। यह कर या तो नकद लिया जाता है, या चिपकाई हुई विशेष टिकटो के द्वारा। बिहार को छोडकर यह कर खड-प्रणाली के अनुसार लगाया जाता है। फिल्म जाँच-समिति ने सिफारिश की है कि यह कर आम प्रतिशत के आधार पर लगाया जाना चाहिए जैसे सकल प्राप्ति पर २० प्रतिशत के हिसाब से। वर्तमान मनोरजन-शुल्क-प्रणाली की निंदा इन आधारो पर की जाती है कि दरें बहुत ऊँची है, खड-प्रणाली प्रदर्शक के प्रतिकूल है, दरो में बहुत अधिक अन्तर हो जाता है, तथा कर का भार अधिकतर स्वदेशी उद्योग पर पडता है। राज्य सरकारें यह बात मानने के लिए तैयार नही हैं कि वर्तमान दर बहुत ऊँची हैं, अथवा दरो में एकरूपता लाना आवश्यक है। हाँ, इस शिकायत में कुछ औचित्य अवश्य है कि खड-प्रणाली के फलस्वरूप जैसी कि आजकल कुछ राज्यो में प्रचलित है, प्रवेश दरें ठीक नही की जा सकती तथा प्रतिशत के आधार पर लगाया जाने वाला कर अधिक उचित होगा। शुल्क की दरें प्रतिशत के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए तथा दरों को प्रतिशत के आधार पर अधिक से अधिक तीन श्रेणियो में विभाजित किया जाना चाहिए।

मनोरजन-कर से छूट की योजना अधिकाश राज्यो में थोडी-बहुत एक सी ही है। यदि मनोरजन के दो भाग—व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक—कर दिये जायें और अव्यावसायिक मनोरजन पर पूरी छूट दे दी जाये, तो सम्पूर्ण प्रणाली पहले से अच्छी और सरल हो जायेगी। छूट के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए सरकार की सहायता के लिए गैरसरकारी छोटी सलाहकार समितियाँ स्थापित की जानी चाहिए जिनमें मुख्यत समाज-सेवको को रखा जाये। व्यावसायिक क्षेत्र में छूट तभी दी जाये जब कि मनोरजन से होनेवाली प्राप्तियाँ धर्मार्थ अथवा लोकहितैषी कार्य में व्यय की जाये।

पारितोषिक-प्रतियोगिताओ पर कर

पारितोषिक-प्रतियोगिताओ पर वम्बई तथा मैसूर में कर लगाया जाता है। राज्यो की कर-व्यवस्था में यह कर वहुत थोड़े महत्त्व का है। प्रतियोगिताओ तथा लाटरियो सम्वन्धी कानूनी उपायो का प्रारम्भिक उद्देश्य प्रतियोगिताओं पर नियन्त्रण रखना तथा दूसरा उद्देश्य कर लगाना और राजस्व की प्राप्ति है। पारितोषिक-प्रतियोगिताओ पर लगाया जाने वाला नियन्त्रण प्रभावकारी तभी हो सकता है, जव कि इसे समूचे देश के आधार पर लगाया और लागू किया जाये। इसलिए, पारितोषिक-प्रतियोगिताओ पर नियन्त्रण तथा कर लगाने का काम केन्द्रीय सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। केन्द्रीय सरकार कर लगाने तथा प्राप्तियाँ लेने के दोनो काम कर सकती है, अथवा कर, सविधान के अनुच्छेद २६९ के अन्तर्गत करो की सूची में जोडा जा सकता है।

पण (बेटिंग) कर

आसाम, पश्चिम वगाल, वम्वई, मद्रास, उत्तर प्रदेश, हैदरावाद, मैसूर तथा दिल्ली के राज्यो में घुडदौडो पर पण-कर लगा है। सवसे पहले पण-कर १९२२ में वगाल में लगाया गया था। इसके वाद अन्य राज्यो ने अनुसरण किया। दिल्ली में यह कर १९५३ में लगाया गया। वहुत से राज्यो में युद्धकाल में तथा उसके वाद कर की दरें वढाई गई। किन्तु जहाँ वृद्धि वहुत अधिक की गई, वहाँ ऊँचे दरो के फलस्वरूप गैरकानूनी जुए को प्रोत्साहन मिला। पण-कर-सम्वन्धी कानून मुख्यत नियन्त्रणात्मक है, तथा राज्य सरकारो का एक उद्देश्य यह है कि गरीव लोगो को घुडदौड पर जुआ खेलने का प्रोत्साहन न दिया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो भी उपाय किये गये, उनमें ऊँचा प्रवेश-शुल्क (फीस), भारी मनोरजन-शुल्क, न्यूनतम शर्तों की इकाइयो का निर्धारण तथा घुडदौड के दिनो पर रोक का लगाया जाना है। कर की दरो तथा इसके सग्रह की व्यवस्था पर टीका-टिप्पणी करने की कोई आवश्यकता नही है। किन्तु जीते गये धन के साथ-साथ दाँवो पर लगाये गये धन पर भी कर लगाया जाना चाहिए, केवल जीते गये धन पर ही नही, जैसा कि कुछ राज्यो में हो रहा है।

विद्युत्-शुल्क

तट-करो (टैरिफ) के प्रतिशत के रूप में शुल्क की दरो में काफी अन्तर है। उच्चतम दर ६० प्रतिशत से अधिक की और निम्नतम दर ६·३ प्रतिशत की है, जो क्रमश वम्वई और मद्रास मे लागू है। औद्योगिक शक्ति पर केवल कुछ ही राज्यो में कर लगा हुआ है। सविधान के अनुच्छेद २८७ और २८८ के अतर्गत मिलनेवाली छूट के अलावा विभिन्न राज्यो में विभिन्न प्रकार की छूटें है।

विजली की खपत पर कर लगाये जाने का समर्थन इस आधार पर किया गया है कि प्रकाश तथा शक्ति के अन्य साधनो की अपेक्षा विजली साधारणतया सस्ती पड़ती है। प्रचुर मात्रा में तथा सस्ती जल-विद्युत्-शक्ति उपलब्ध होने पर उपभोक्ता पर अनावश्यक भार के रूप में लागू न करके थोडी मात्रा में लगाये जानेवाले कर से सरकार को लाभ होना चाहिए।

कर संग्रह करने में अधिक व्यय नहीं आता, और इससे राज्य सरकारो को अधिक राजस्व प्राप्त होता है। छोटे उपभोक्ताओ को इससे छूट मिल सकती है या प्राप्त है।

प्रकाश तथा पखो के लिए बिजली की खपत पर कर लगाये जाने का विरोध अधिक नहीं हुआ है, किन्तु व्यापार तथा उद्योग के प्रतिनिधियो ने औद्योगिक खपत पर लगाये जाने-वाले कर का विरोध किया है। यह स्वीकार नही किया जा सकता कि बिजली की औद्योगिक खपत पर बहुत थोडी दर पर लगाया जानेवाला कर भी अनुचित है। ऐसी खपत पर भी शुल्क लगाया जाना चाहिए। आधार तथा दरो में अन्तर के विषय में कुछ आलोचना हुई है। दरो के वर्गीकरण के विषय में मुख्य विचार ये है—प्रकाश तथा पखो के लिए निम्न दरें, अन्य घरेलू उपयोग की बिजली की वस्तुओ के लिए निम्नतर दरें तथा औद्योगिक खपत के लिए निम्नतम तथा बहुत नीची दरें हो। प्रकाश तथा पखो के लिए खपत में आनेवाली शक्ति पर लगने-वाले कर की दर ऐसी होनी चाहिए कि बिजली-व्यय का कुल भार अधिक न हो तथा छोटे कस्बो और गाँवों में बिजली के उपयोग को प्रोत्साहन मिले।

औद्योगिक कार्यों के लिए उपयोग में आई बिजली पर लगाये जाने वाले कर की दरों के सम्बन्ध में करापात बहुत ही कम तभी होगा जब बिजली पर होने वाला व्यय उत्पादन-व्यय का एक छोटा भाग ही हो। यदि बिजली पर होने वाला व्यय काफी हुआ, तो कर की दर विशेषकर, कम ही रखनी होगी। कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगो के लिए भी छोटी दरें ही उचित होगी, जिससे उनका उत्पादन अधिक हो सके।

अन्य विविध राज्यीय कर

व्यवसाय-कर तथा सम्पत्ति-कर का विशेष सम्बन्ध, चाहे वे राज्य सरकारो द्वारा ही क्यो न लगाये गये हों, स्थानीय सस्थाओं के साथ हैं। उन पर स्थानीय-करो के साथ ही विचार किया जायेगा। विविध करो में पजीकरण-शुल्क, तम्बाकू-शुल्क, गन्ना-उपकर, कच्चा पटसन-उपकर तथा अन्तर्राज्यीय आवागमन-कर आते हैं। पजीकरण-शुल्क की दरें विभिन्न राज्यो में भिन्न-भिन्न हैं, और मूल्य के अनुसार लगाई जाती हैं। ये एक प्रकार के विशेष प्रभार हैं, जो विशेष सेवाओ पर होने वाले व्यय के लिए लगाये जाते हैं तथा दरो के निर्धारण के समय इस सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाना चाहिए। कुछ राज्य विशेष कानूनो के अन्तर्गत तम्बाकू की बिक्री पर कर लगाते थे। इन राज्यो से यह कर हटाने के लिए कहा गया, और १ अप्रैल १९४३ से तम्बाकू पर भारत-सरकार द्वारा उत्पाद-कर लगाये जाने से उनके राजस्व की हानि की पूर्ति हुई। वित्त-आयोग ने सिफारिश की कि क्षतिपूर्ति की व्यवस्था समाप्त की जानी चाहिए तथा राज्यो को तम्बाकू पर अपना कर लगाने की स्वतत्रता दे दी जाये। सरकार ने यह सिफारिश स्वीकार कर ली, तथा १ अप्रैल, १९५३ से उपरोक्त व्यवस्था समाप्त कर दी गई। आजकल आध्र, मध्य प्रदेश, मद्रास, पजाब, पेप्सू तथा तिरुवाकुर-कोचीन राज्यो ने विशेष कानूनो के अन्तर्गत तम्बाकू पर शुल्क लगा रखा है। तम्बाकू-करो के सबध में मुख्य विचारणीय प्रश्न यह है कि इनका केन्द्रीय उत्पाद-शुल्कों के साथ क्या सबध है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार और स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा तम्बाकू पर लगाये गये विभिन्न करो में उचित समन्वय होने

की आवश्यकता अब स्पष्ट है। अन्तर्राज्यीय कर परिषद् ही ऐसा समन्वय कर सकती है।

बिहार, बम्बई, उत्तर प्रदेश तथा हैदराबाद ने आजकल गन्ने पर उपकर लगा रखा है। बम्बई में उपकर से होनेवाली प्राप्तियाँ गन्ना-उद्योग के विकास, गन्ने तथा सिंचाई एवं अन्य फसलो के विकास तथा कृषि के सुधार एव विकास के लिए जमा की जा रही है। अन्य राज्यो में ऐसी प्राप्तियाँ सामान्य राजस्व में जमा की गई हैं।

कृपिजन्य अथवा खनिज पदार्थों अथवा कच्चे सामान पर कर लगाने के लिए राज्य सूची में प्रवेश सख्या ५२ का उपयोग कई कारणो से अवांछनीय है। राज्य सरकार को इसका उपयोग अपने कर लगाने के लिए न करके, इसे स्थानीय प्राधिकारियो के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

कच्चे पटसन पर लगा उपकर वास्तव में पटसन पर लगाया हुआ एक क्रय-कर है जो पजीकृत मिलो तथा निर्यातकारियो से लिया जाता है। सुझाई गई बिक्री-कर-योजना के अन्तर्गत पश्चिम बंगाल में रुपये पर एक पैसे की दर से अधिक ऊँची दर पर यह कर न लग सकेगा।

सघीय वित्तीय सयोजन (फेडरल फाइनेन्शियल इण्टिग्रेशन) की योजना के अन्तर्गत हैदराबाद, मध्य भारत, राजस्थान तथा सौराष्ट्र मे सक्रातिकालीन उपाय के रूप में अन्तर्राज्यीय आवागमन-शुल्को की अनुमति दे दी गई है। राजस्थान को छोड कर अन्य राज्य इन शुल्को के उन्मूलन तथा इनके स्थान पर कर लगाने के अन्य साधनो के प्रयोग के लिए कार्रवाई कर रहे हैं। इन शुल्को के उन्मूलन की अवधि वर्तमान वित्तीय वर्ष के अन्त में समाप्त होगी। मध्य भारत सरकार वर्तमान चुने हुए बिक्री-कर के बदले में सामान्य बिक्री-कर लागू करने के प्रश्न पर विचार कर रही है। राजस्थान मे सामान्य बिक्री-कर लगाये जाने से सम्बन्धित एक विधेयक हाल ही में पेश किया जा चुका है। ये शुल्क एक निश्चित अवधि के भीतर उन्मूलित किये जाने चाहिएं, तथा उन राज्यो को जिन्होने ये शुल्क लागू कर रखे थे, कर लगाने के अन्य साधनो का उपयोग करके राजस्व की हानि की पूर्ति करने के लिए यथासंभव प्रयत्न करना चाहिए।

राज्यीय उत्पाद-कर

मानवीय उपभोग में आनेवाले मादक द्रव्यों पर लगाये जानेवाले उत्पाद-कर राज्य सरकारो के राजस्व के बडे स्रोत हैं। १९५४-५५ में इस स्रोत से होनेवाला राजस्व राज्य सरकारो के कुल अनुमानित कर राजस्व का ८ ७ प्रतिशत था। इस देश में उत्पाद-कर राजस्व बढाने की अपेक्षा मादक द्रव्यो की खपत की रोकथाम के लिए ही लगाया जाता है। अधिकाश राज्यो में मादक-द्रव्यो पर लगे उत्पाद-कर का स्थान राजस्व के स्रोतो की दृष्टि से दूसरा है। और कुछ राज्यो में उत्पाद-कर से होने वाली प्राप्ति भू-राजस्व से भी अधिक होती है।

उत्पाद-कर साधारणतया सुधार तथा नशीले पेयो की खपत की रोकथाम के लिए

लगाया जाता है। राज्य सरकारो ने अधिक कर लगा कर खपत में कमी करने का प्रयत्न किया। शराव की बिक्री, शराव वनाये जाने अथवा ताड के पेडो से ताड का रस निकालने के लिए लाइसेंस फीस ली जाती है। देशी शराव, सरकारी भट्ठो में अथवा उत्पादकर-कर्मचारियो की देख-रेख में ही तैयार की जाती है। शराव सरकारी गोदामो से मिलती है, तथा लाइसेंस प्राप्त विक्रेता ही निश्चित समयावधि में तथा निश्चित भाव पर देशी शराव वेचते है। अन्य मादक पेयों तथा नशीली दवाओ की बिक्री भी लाइसेंस प्राप्त व्यापारी ही करते है।

सर्वप्रथम सावधानिक सुधारो के लागू किये जाने के साथ-साथ मद्यनिषेध आदोलन को वल प्राप्त हुआ, तथा कई राज्यो के विधानमडलो ने इस आशय के प्रस्ताव पास किये कि मद्यनिषेध उनका अतिम उद्देश्य है। कई राज्य-सरकारो ने शराव की खपत कम करने के उपाय किये और कुछ राज्यो में उत्पादकर से होनेवाले राजस्व में कमी करने अथवा मद्यनिषेध लागू करने की सभावनाओ की जाँच के लिए समितियाँ नियुक्त की गई। पर इन उपायो से न तो खपत में ही काफी कमी आई और न राजस्व कम हुआ।

१९३७ में प्रान्तीय स्वशासन के स्वीकार किये जाने तथा वगाल और सिन्ध को छोडकर अन्य प्रान्तो में काग्रेस-मन्त्रिमडलो की स्थापना के साथ-साथ, कई प्रान्तीय सरकारो ने पूर्ण मद्यनिषेध नीति की घोषणा की। इनमें से कुछ ने इस नीति को कार्यान्वित करना आरम्भ भी कर दिया था, पर काग्रेस-मन्त्रिमडलो के पद-त्याग के फलस्वरूप उन प्रान्तो में मद्यनिषेध का काम रुक गया। जव लोकप्रिय मन्त्रिमडलो ने पुन कार्य-भार सँभाला, तव अधिकाश राज्य सरकारो ने मद्यनिषेध-नीति की घोषणा एक वार फिर की। तदनुसार मद्यनिषेध को सविधान में राज्यीय नीति के निर्देशो में सम्मिलित कर लिया गया।

१९४९ के अखिल भारतीय अफीम सम्मेलन के एक प्रस्ताव में दवा के रूप में अथवा वैज्ञानिक उद्देश्यो के अलावा अफीम की खपत निषिद्ध करार दी गयी। खपत में प्रतिवर्ष दस प्रतिशत कमी करके इस उद्देश्य को दस वर्षो में पूरा किया जाना है। अन्य नशीली वस्तुओ के सबध में बम्बई, मद्रास, आध्र तथा सौराष्ट्र में पूर्ण निषेध है, और उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, मैसूर, उडीसा, तिरुवाकुर-कोचीन तथा कुर्ग में आशिक निषेध है। आसाम तथा पजाब के कुछ क्षेत्रो में भी मद्यनिषेध लागू है। बिहार, पश्चिम बगाल तथा मध्य भारत में उदार नीति अपनायी जा रही है। शेष राज्यो की इस सबध में कोई नीति नही है, और न उनमें आशिक मद्यनिषेध या मद्यनिरोध आन्दोलन है। ये राज्य अधिकतर उत्पादन-कर से होने वाले राजस्व पर ही निर्भर हैं, और इसलिए ये इस स्रोत से होनेवाले राजस्व की समाप्ति के विरोधी हैं।

पूर्ण मद्यनिषेध के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस समय अखिल भारतीय नीति अथवा अखिल भारतीय कार्यक्रम जैसी कोई व्यवस्था नही है। आयोग का कहना है कि उसने उत्पाद-कर सम्बन्धी भावी नीति की रूपरेखा पर काफी विचार-विमर्श किया, किन्तु उसके सभी सदस्य एकमत न हो सके। आयोग के तीन सदस्यो का मत यह है कि सविधानिक निर्देश शीघ्र से शीघ्र कार्यान्वित किये जायं और देश भर के लिए एक अवधि निर्धारित की जानी चाहिए, जिसके अन्दर सभी राज्य पूर्ण मद्यनिषेध लागू करने की पूरी तैयारी कर लें।

राजस्व अर्जन को गौण स्थान दिया जाना चाहिए। राजस्व में अधिकतम वृद्धि करने तथा खपत में कमी करने की नीति परस्पर विरोधी थी और व्यावहारिक रूप में असफल रही। प्रशासन की दृष्टि से शराव की राशनिंग अव्यावहारिक है। यह जानने के लिए कि संविधान में इस विषय पर दिये गये निर्देश प्रभावकारी ढग से किस प्रकार कार्यान्वित किये जा सकते है, योजना आयोग विस्तार के साथ विचार-विमर्श कर चुका है। भविष्य की कार्रवाई का क्या रूप हो, इस पर इस जाँच-पडताल का काफी असर होगा। इसी के आधार पर मद्यनिषेध लागू करने का उचित कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। इसके लिए एक निश्चित अवधि का सुझाव न देते हुए आयोग के सदस्य पूरे देश के लिए एक निश्चित तिथि निर्धारित किये जाने के पक्ष में है। मद्यनिषेध की सफलता के लिए उचित रूप से प्रशासनात्मक तैयारी तथा लोकप्रिय शिक्षा द्वारा प्रचार किये जाने की आवश्यकता है।

आयोग के अन्य तीन सदस्यो ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया है कि मद्यनिषेध ऐसे निर्देशो में से एक ही है। किस गति से इसे लागू किया जाय, इसे अलग-थलग नही, वल्कि सविधान में आये हुए विभिन्न उद्देश्यो को प्राथमिकता देने के व्यापक प्रश्न के एक अग के रूप में ही करना है। अलग-अलग राज्यो में इस कार्य की प्रगति पर प्रशासन सम्वन्धी साधनों की उपलब्धि और प्रयत्नो का प्रभाव पड़ेगा। प्रभावकारी रूप से लागू किया जाना सविधान में दी गई विशेष निर्देश-नीति का साराश है। आर्थिक पहलू को स्थान तो दूसरा ही दिया जाना चाहिए, पर इसका अर्थ यह नही है कि यह पहलू कम महत्त्व का है क्योकि कई राज्यो को अपनी वर्तमान आर्थिक स्थिति की अवस्था में इस पर अनिवार्य रूप से विचार करना होगा। मद्यनिषेध के उद्देश्य को विभिन्न राज्यो में किस प्रकार प्राप्त किया जाये, इसका निर्णय विभिन्न राज्यो को अलग-अलग रूप से कर लेना चाहिए। इस विचार के पोपक, आयोग के सदस्यों का कहना है कि स्वय आयोग को ही ऐसा कोई तथ्य प्राप्त न हो सका, जिसके आधार पर वह साधारण अथवा विशेष रूप से देश भर में मद्यनिषेध लागू करने के लिए एक निश्चित तिथि स्वीकार करने की सिफ़ारिश कर सके।

भारत में अपनायी जानेवाली आवकारी नीति के भविप्य पर सदस्यो की सम्मति वरावर विभाजित होने के कारण आयोग इस सम्वन्ध में कुछ भी सिफ़ारिश न कर सका।

लगान

लगान की पृष्ठभूमि : मुख्य प्रथाएँ

संसार के लगभग सभी देशो में सरकार विभिन्न उद्देश्यो के लिए भूमि का उपयोग करने-वाले लोगो की आय में से कुछ अश अपने लिए वसूल करती है। भारत में लगान वसूल करने की प्रथा अत्यत प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रारम्भ में लगान जिन्स में लिया जाता था, किन्तु जनसख्या में वृद्धि होने तथा कृपि में विस्तार होने के साथ साथ वहुत सी कठि-नाइयाँ सामने आईं। उस समय से नकद लगान लेने की प्रथा चल पड़ी। पहले पहल इस प्रथा

में सुधार करने का प्रयत्न शेरशाह ने किया, किन्तु महत्त्वपूर्ण परिवर्तन अकबर के शासन काल में ही हो सका। तदनुसार एक ऐसी प्रथा का आरम्भ हुआ जो पीढियो तक लगान-सम्बन्धी नीति का आधार बनी रही। उर्वरता की दृष्टि से वर्गीकृत भूमि एक निश्चित पैमाने द्वारा नापी जाती थी और कुल उपज पिछले दस वर्षो की उपज के आधार पर आंकी जाती थी। तब औसतन कुल उपज को पिछले १९ वर्षो से चले आने वाले मूल्यो के आधार पर नकदी में आंका और उसका तीसरा भाग राजा के भाग के रूप में निश्चित किया जाता था। बिना किसी फेर-बदल के यह लगान १० वर्ष के लिए निर्धारित किया गया था पर बाद में अनिश्चित समय तक चलता रहा। मुगल साम्राज्य के विस्तार के साथ साथ तत्कालीन प्रशासन-तन्त्र शिथिल होता गया। प्रान्तीय अधिकारियो ने भूमि पर अतिरिक्त वसूली लादनी शुरू की और लगान वसूल करने के लिए रखे गये मध्यवर्ती लोग अधिक बलशाली हो गये और वे किसानो का शोषण करने लगे। कुछ समय बाद ये लोग जमीदार अथवा जमीन के मालिक बन गये।

जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के विभिन्न क्षेत्रो पर अपना अधिकार जमाना शुरू किया, तो उन्होंने इसे आवश्यक समझा कि राजस्व की प्राप्ति के साधन नियमित हो, किसानो से लगान सीधे वसूल करने का झझट मिटे तथा ऐसे लोगो का एक वर्ग तैयार किया जाये जिसकी राजभक्ति पर वे विश्वास कर सके। इन सब बातो के कारण उनको उन सभी क्षेत्रो में (जो आजकल बगाल में तथा आशिक रूप से बिहार और उडीसा में आते है) इस्तमरारी बन्दोबस्त लागू करने के पक्ष में निर्णय करना पडा। इसके पूर्व जमीदारो को बहुत लगान के भार के कारण काफी नुकसान सहना पडा। किन्तु खेती के विस्तार तथा मूल्यो में वृद्धि के कारण जमीदारो पर लगान का भार कुछ कम हो गया। बहुत से जमीदारो ने अपनी जमीदारी या उसका कुछ अश किराये पर दूसरो को उठा दिया।

इस्तमरारी बन्दोबस्त व्यवस्था बनारस, मद्रास के कुछ भागो तथा असम में भी लागू कर दी गई। बाद में जब कम्पनी का शासन अच्छी तरह से जम गया, तब उन्हें यह विचार सूझा कि राष्ट्र को मियादी बन्दोबस्त अधिक लाभकारी होगा। कुछ क्षेत्रो में वहाँ की सुसगठित गाँवसभाओं के साथ बन्दोबस्त की बातचीत की जा सकी। अन्य क्षेत्रो में लगान सीधे किसानो के साथ ही तय कर लिया गया।

भारत में उस समय जो बन्दोबस्त किये गये, वे दो प्रकार के थे। पहले—इस्तमरारी बन्दोबस्त अथवा वे जिनके लिए कोई निश्चित समय नही था, और दूसरे, मियादी बन्दोबस्त अथवा वे जो एक निश्चित समय तक के लिए ही होते थे। दूसरे शब्दों में इन्हे इस प्रकार भी कहा जा सकता है—जमीदारी, जिसमें कर-निर्धारण जमीदारी की सम्पत्ति के आधार पर किया जाता था, महलवारी, जिसमें कर-निर्धारण गाँव के अथवा सयुक्त रूप से 'महल' के आधार पर किया जाता था तथा रैयतवारी, जिसमें कर-निर्धारण प्रत्येक किसान के व्यक्तिगत खेत के आधार पर होता था।

वैसे तो मोटे तौर पर भारत में बन्दोबस्तो के इन्ही प्रकारो का प्रचलन था, किन्तु सभी राज्यो में उनके विकास की रूपरेखा एक सी नही थी।

इस्तमरारी बन्दोवस्त वाले क्षेत्रो को छोडकर भारत के अन्य सभी भागों में कर-निर्धारण मियादी बन्दोवस्त के आधार पर तथा कर-निर्धारण पर पुनर्विचार निश्चित अवधि के समाप्त होने के वाद होता था। कर-निर्धारण १५ से लेकर ४० वर्षों तक के लिए किया जाता था। सामान्य अवधि ३० वर्षों की मानी जाती थी।

सरकार को दिये जाने वाले लगान के आगणन के लिए विभिन्न राज्यो में विभिन्न तरीके थे। इन तरीकों को नीचे लिखे अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है :—

(१) शुद्ध सम्पत्ति अथवा आर्थिक लगान
(२) शुद्ध उत्पादन अथवा वार्षिक मूल्य
(३) प्रयोगात्मक
(४) भाटकीय (रेन्टल) मूल्य
(५) पूँजीगत मूल्य
(६) सकल उत्पादन

इस्तमरारी बन्दोवस्त वाले क्षेत्रों को छोडकर अन्य सभी राज्यो मे कर वसूल करने का प्रशासनतत्र एक सा ही था। अधिकांश राज्यों में 'वोर्ड आफ रेवेन्यू', राजस्व सम्वन्धी मुख्य अधिकृत सस्था थी। राज्य सावारणतया डिवीजनो तथा जिलो में वँटे हुए हैं, जो क्रमशः कमिश्नरों और कलक्टरो के अधिकार में थे। जिले, तहसीलो और ताल्लुको में वँटे हुए हैं, जिनकी देखरेख तहसीलदार, एक या दो नायव-तहसीलदारो की सहायता से करता था। इनके नीचे कुछ गाँव-अधिकारी होते थे, जो लगान वसूल करते, हिसाव-किताव तैयार करते तथा रेकार्ड (लेखा-जोखा) रखते थे। पहले उनमें से अधिकाश अधिकारी पैतृक-उत्तराधिकार के आधार पर नियुक्त होते थे, किन्तु पिछले कुछ वर्षों में इनके स्थान पर वेतनभोगी अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

इस्तमरारी वन्दोवस्त वाले क्षेत्रो मे गाँव के स्तर पर लगान वसूल करने के लिए अव तक कोई ठीक प्रशासन-तत्र नही था क्योकि जमीदार ही राज्य को लगान दे दिया करते थे।

सभी राज्यों में लगान की अदायगी में रियायत उस समय दी जाती थी, जव फसल नष्ट हो जाये। भारत-सरकार ने लगान के मुल्तवी तथा छूट सम्वन्धी सामान्य आदेश १९०५ में जारी किया था। कुछ राज्यो मे मुल्तवी तथा छूट के लिए अनुविहित व्यवस्था है। अन्य राज्यो में इनकी व्यवस्था कार्यकारी आदेशों द्वारा की जाती है। सावारणतया छूट फसलो के नष्ट हो जाने पर दी जाती थी, किन्तु हाल के वर्षो में कुछ राज्यो में मूल्यो में गिरावट आने के परिणाम का सामना करने के लिए भी छूट दी गई।

हाल के फेर वदल

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के वाद से देश में जो फेर वदल हुए, उनसे राज्यो के राजस्व-प्रशासन के सम्मुख कई नये और महत्वपूर्ण काम आये। काम वढ गया है तथा कुछ वातो के

फलस्वरूप देश की कृषि का ढाँचा ही वदल गया है। पहला परिवर्तन था रजवाडो का राज्यो मे विलयन और दूसरा था राज्य सरकारो द्वारा किये गये काश्तकारी-सुधार।

प्रान्तीय स्वायत्त शासन दिये जाने के समय से विभिन्न कारणो मे लगभग सभी राज्यो में भूमि के वन्दोवस्त सम्वन्धी कार्यक्रम स्थगित कर दिये गये। यद्यपि कुछ राज्यो ने हाल ही में लगान पर अधिभार लगाया, तथापि वहुत से राज्यो के लिए लगान का समायोजन अव भी एक समस्या वना हुआ है।

भूतपूर्व रजवाडो के विलयन से भी कई समस्याएँ पैदा हो गई है। उनकी राजनीतिक तथा प्रशासकीय कार्यकुशलता में वहुत अन्तर था, तथा लगान की प्रणालियो में भी काफी अन्तर है। आज की काश्तकारी कानून सम्वन्धी स्थिति पहले से कोई अच्छी नही है। कुछ क्षेत्रो में लगान वहुत अधिक लिया जाता है। जमीदार किसानो से वहुत से गैरकानूनी उपकर वसूल करते है और कुछ पिछडे हुए क्षेत्रो मे तो किसानो से वेगार भी लिया जाता है।

भूमिव्यवस्था तथा कर-निर्धारण की विभिन्नता के कारण उत्पन्न समस्याएँ तुरत हल नही की जा सकी। कर-निर्धारण में एकरूपता लाने के लिए राज्यो ने कई अतरिम उपाय किये। कुछ ने फिर से तात्कालिक वन्दोवस्त लागू किये, और कुछ ने एतदर्थ वन्दोवस्त। कुछ क्षेत्रो में दरो को एक सा किया जा रहा है। इसी प्रकार काश्तकारी-अधिकारो की रक्षा के लिए न केवल वेदखली रोकने की ही कार्रवाई की गई, वल्कि उन लोगो को फिर से जमीन दिलाने की भी कोशिश की गई, जिन्हे विना किसी उचित कारण के वेदखल किया गया था।

भूमि व्यवस्था-सुधारो द्वारा विचवैयो के उन्मूलन जैसे कई वडे परिवर्तन किये जा चुके है। इससे ३८,००,००० लोगो पर प्रभाव पडा, और लगभग ४०० करोड रुपये की क्षतिपूर्ति देनी पडी। विचवैयो का उन्मूलन तो किया गया, किन्तु उन्हे वह भूमि अपने अधिकार में रखने का अधिकार दे दिया गया जिस पर वे स्वय खेती करते अथवा करवाते थे। असम तथा पश्चिमी वगाल को छोडकर ऐसी भूमि के लिए कोई अधिकतम सीमा निर्धारित नही की गई है। जहाँ तक जमीदारो का सम्वन्व है, भूमिव्यवस्था-सुधारो का प्रभाव सम्पत्ति के आकार की अपेक्षा पट्टेदारी पर अधिक पडा, यद्यपि उन जोतो के क्षेत्र पर कुछ प्रतिवध लगाये गये है, जो दो राज्यों में स्थित हो। कुछ राज्यो में और भूमि लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। इन सुधारो के फलस्वरूप असली किसानो की स्थिति सुधरी, और उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षा प्राप्त हुई। मद्रास और असम को छोडकर, जहाँ लगान कम कर दिया गया है, अन्य क्षेत्रो में किसान अब भी उतना ही लगान जमीदार के स्थान पर राज्य को देता है। शिकमी काश्तकारो के सम्वन्ध मे अधिकाश राज्यो ने पट्टे की न्यूनतम अवधियाँ निर्धारित कर दी है, जो ५ से १२ वर्ष तक की है, और जिनका इतने ही समय के लिए नवीकरण किया जा सकता है। लगभग सभी राज्यों ने किसान द्वारा दिये जाने वाला अधिकतम लगान भी निर्धारित कर दिया है। भूमिव्यवस्था सुधार भूमिहीन मजदूरो पर लागू नही होते, किन्तु जमीदारो से ली गई भूमि, साफ करके कृषि योग्य बनाई गई भूमि तथा स्वेच्छा से भूदानयज्ञ में दी गई भूमि के आवटन के समय साधा-रणत भूमिहीन मजदूरो को प्राथमिकता दी जाती है।

विचवैयो के उन्मूलन के वाद प्रत्येक किसान से लिए जानेवाले लगान की दर का प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हो गया है।

भूमिव्यवस्था-सुधारो का सम्वन्ध केवल जमीदारी और जागीरदारी-उन्मूलन से ही नही है, वल्कि इनाम के रूप में दी जानेवाली भूसम्पत्ति से भी है, जो पहले दी जाती थी। अधिकाश राज्यो मे राजनीतिक तथा व्यक्तिगत इनामो की व्यवस्था समाप्त की जा चुकी है।

पट्टेदारी के सुधारो को कार्यान्वित किया जाना कुछ समय के लिए रुका रहा, क्योकि न्यायालयो में इसकी वैधता पर आपत्ति उठायी गयी थी। प्रश्न यह है कि लगान वसूल करने, गाँव के रेकार्डों का सकलन करने तथा अन्य प्रशासकीय कार्य करने के लिए राज्य किस अभिकरण की सहायता ले। कुछ राज्यो में ये काम सरकारी अभिकरणो को सौंपे गये है जवकि अन्य राज्यों में इसके लिए गाँव-सभाओ आदि को चुना गया है।

पिछले २० वर्षों में, जिन क्षेत्रो में इस्तमरारी वन्दोवस्त नही था, उनमें फिर से वन्दोवस्त किये जाने थे। १९३० से १९३९ तक के प्रारंभिक वर्षों में मूल्यो मे भारी गिरावट आने तथा वाद को युद्धकाल में मुद्रास्फीति की स्थिति के कारण यह कार्य नही किया जा सका। इसके अलावा वन्दोवस्त के प्रौद्योगिक कार्य के लिए आवश्यक प्रशिक्षित कर्मचारी भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध न हो सके। परिणाम यह हुआ कि विभिन्न राज्य सरकारो ने लगान के निर्धारण तथा समायोजन के लिए विभिन्न उपाय किये। पजाव में कर-निर्धारण में उतार-चढाव आया। तिरुवाकुर मे १९४६ मे सभी प्रकार की भूमि पर एकसार प्रभार लागू करने का प्रयत्न किया गया। कृषि से होनेवाली आय पर कर लगाने के लिए कृषि-आयकर भी लागू किया गया। अन्य राज्यो ने लगान पर अधिभार लगाने का प्रयत्न अथवा विचार किया।

कृषि-आयकर

कुल मिलाकर ९ वर्षों की दो छोटी अवधियो को छोडकर, कृषि से होनेवाली आय पर सामान्य आयकर नही लगता था और अभी हाल तक, कोई भी आयकर नही लगता था। कृषि से होने वाली आय पर सवसे पहले विहार ने कर लगाया, और थोड़े-थोड़े समय वाद अन्य कई राज्यो ने भी कृषि-आयकर लगाने शुरू किये। कृषि-आय पर १२ राज्यो ने कर लगाया। इनमें से कुछ राज्यो की सरकारो ने वडे जमीदारो अथवा वड़े व्यापारी वागानो पर कर लगाना वाछनीय समझा।

कृषि-आयकर प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए पिछले वर्ष की सम्पूर्ण कृषि-आय पर लगता है। कुछ राज्यो में कर की दरें स्वय अविनियमो में ही दी हुई है। और अन्य कुछ राज्यो में दरें वित्त-अधिनियमो के अन्तर्गत प्रति वर्ष निर्धारित की जाती हैं। छूट की सीमाएँ दी हुई है। ये सीमाएँ तथा दरें किसी भी राज्य में हमेशा एक सी नही रहती। समय के अनुसार कभी-कभी सीमाओ में कमी कर दी जाती है, तथा दरें वढ़ा दी जाती हैं। कुछ राज्यो में आय पर अधिकर (सुपर टैक्स) भी लगता है।

कर की दरें सभी राज्यो में खडो के आधार पर निर्धारित की जाती है। आय के उन स्तरो के अलावा, जिन पर छूट रहती है, कई प्रकार की कृषि-आयो पर भी छूट मिलती है।

कर योग्य आय का आगणन करते समय राज्य कुल कृषि-आय में से कई कटौतियों की भी अनुमति देते है। प्रत्येक करदाता को साधारणतया लम्बा चौडा हिसाब-किताब रखना पडता है, जो छोटे किसानो के लिए बहुत कठिन है। कुछ राज्यो में भूतकाल में कर-निर्धारण का सरल तरीका था, किन्तु बाद को उसे छोड देना पडा। सयुक्त हिन्दू परिवार, ट्रस्टी, मैनेजर, अनिवासी करदाता आदि जैसो की विशेष प्रकार की कृषि-आयो के लिए कर-निर्धारण की अलग-अलग प्रक्रिया रखी गयी है, जो अधिकाश राज्यो में सामान्यतया एक सी है।

उत्तर प्रदेश में कृषि आयकर के प्रशासन का भार जिला के राजस्व-अधिकारियो पर है। अन्य राज्यो में कृषि आयकर विभाग अलग है।

सभी राज्यो के कानूनो में कर-निर्धारण अथवा अपील सुननेवाले छोटे अधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील करने तथा उस पर पुनर्विचार करवाने की व्यवस्था है। पश्चिमी बगाल तथा हैदराबाद में अपील सुनने वाले न्यायाधिकरण है, तथा अन्य राज्यो में 'बोर्ड आफ रेवेन्यू' अपील की सुनवाई तथा पुनर्विचार करने के लिए अतिम अधिकृत सस्था है।

भावी नीति की समस्याएँ

भावी नीति को दृष्टि में रखते हुए लगान की प्रगति से सम्बन्धित कुछ बातो पर विचार किया जाना चाहिए। इसी प्रसग में वित्त की एक मद के तथा किसानो पर एक भार के रूप में, लगान के महत्त्व में जो परिवर्तन हुए है, उनके सम्बन्ध में भी कुछ बताना आवश्यक है। कृषि-अर्थव्यवस्था में कई बडे परिवर्तन हुए है, और इस दृष्टि से लगान काफी कम हो गया है। सरल आर्थिक प्रणाली, जिसका भूमि राजस्व मुख्य अवलम्बन था, अब पहले से अधिक व्यापक और विस्तृत कर दी गई है।

भावी नीति की समस्याएँ कई प्रकार से सामने आती है। लगान के स्थान पर दूसरी वैकल्पिक कर-प्रणाली लागू करने के कई सुझाव रखे गये। वर्तमान प्रणाली को सुधारने के भी कई सुझाव रखे गये, जिससे मूल्यो के नीचे गिरने की स्थिति में लगान देनेवाले पर कम भार पडे, और मूल्यो में वृद्धि होने की स्थिति में सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त हो। लगान पर अधिभार भी लगाये गये। क्रमश वृद्धिशील दर तथा अधिभार, दोनो का उद्देश्य है उच्चतर कृषि-मूल्यो की स्थिति में उच्चतर कृषि-आय से अधिक अशदान मिले।

लगान के स्थान पर सुझाये गये विकल्पो में से राज्य सरकारो के वित्त की दृष्टि से कोई भी प्रभावकारी नही हो सकता, यद्यपि उनमें से कुछ लगान के पूरक के रूप में बहुत हद तक उचित होगे। भूमिव्यवस्था-सुधार की नीतियो के फलस्वरूप बडे-बडे खेतो तथा बडी कृषि-आयो की सख्या और भी कम हो गई है। भूमि पर लगने वाले लगान तथा अन्य भूमि-करो को न्यायोचित ठहराने की दृष्टि से कृषि-आयकर निस्सदेह काफी महत्त्व का है। किन्तु राज्य सरकारो की आय के स्रोत की दृष्टि से यह स्पष्ट रूप से लगान का स्थान नही ले सकता।

तिरुवाकुर-कोचीन में प्रचलित प्रणाली को ऐसे क्षेत्रों में लागू करना, जिनकी स्थिति भूमि की लगभग एकरूपता, खेती के तरीको तथा बागानो की अधिकता की दृष्टि से भिन्न है और जिन पर वहाँ कृषि-आयकर लिया जाता है, न्याय विरुद्ध होगा।

कृषि उत्पादन पर कर लगाना तीसरा विकल्प है। आज सभी राज्यो में स्थिति यह है कि किसान को अपनी निज की उपज बेचने पर कर से छूट प्राप्त है। यह छूट कायम रहनी चाहिए। प्रशासन, वित्त-सम्बन्धी कठिनाइयो, यहाँ तक कि सभव है ज्यादती की आशका से लगान के स्थान पर बिक्री-कर लागू करने का विचार बिल्कुल छोड देना पडे।

विकास योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकारो की वित्तीय आवश्यकताओ की दृष्टि से लगान के स्थान पर दूसरा कोई उचित पूरक नही खोजा जा सका। राज्यों को इससे लगभग ७० करोड़ रुपये की आय होती है, और अब तक सुझाये गये किसी भी वैकल्पिक तरीके से इतनी आय होने की सभावना नही दिखाई देती।

एक तरह से क्रम वृद्धिशील दरें तथा अधिभार लागू करके मूल्यो तथा आयो में होने वाले परिवर्तनो को भूमि राजस्व प्रणाली में प्रतिफलित करने का प्रयास किया गया है। किन्तु राजकोषीय प्रणाली में विस्तार हो चुका है, और कृषि-आयकर तथा बिक्रीकर जैसे करो का उपयोग उन उद्देश्यो के लिए किया जा सकता है, जिनके लिए लगान का उपयोग ठीक न हो। ऐसे दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में जो महत्त्वपूर्ण पहलुओ की दृष्टि से एक से ही हो, यदि कर निर्धारण अधिक भिन्न हो, तो कर-निर्धारणो के स्तरो में समानता लाने अथवा अन्तर कम करने के लिए लगाये जानेवाले अधिभार पर साधारण अधिभार की तरह आपत्ति नही की जायगी। और न यह स्थानीय सेवाओ के लिए स्थानीय निकाय द्वारा लगान पर लगाये गये अधिभार के सम्बन्ध में आपत्ति का कारण होगा।

मद्रास तथा बम्बई के रैयतवारी वाले राज्यो में लगान-बन्दोबस्त प्रणाली का जिस प्रकार विकास हुआ, वह ब्रिटिश शासन की एक बडी सफलता थी। आज इस प्रणाली का परीक्षण हो रहा है। देश भर में रैयतवारी भूमि-व्यवस्था तथा इससे सम्बन्धित लगान-बन्दोबस्त का प्रसार हो रहा है। हमें कई परिवर्तनो में से गुजरना होगा, तथा कई सक्रान्ति कालीन समस्याओ को हल करना होगा। अन्ततोगत्वा सर्वत्र रैयतवारी वाले राज्यो में प्रचलित एक अथवा एकाधिक तरीको से ही कर निर्धारण करना पडेगा, और जो प्रणाली विकसित होगी, वह किसी एक राज्य में प्रचलित प्रणाली जैसी होगी। दूसरी सक्राति कालीन समस्या है कुछ राज्यो में पडे उन विस्तृत क्षेत्रो की, जिनका न तो सर्वेक्षण हुआ और जो न तो अभी बसे ही है। एक ही राज्य सरकार के प्रशासन के अन्तर्गत लाये गये भिन्न-भिन्न क्षेत्रो के बीच कर-निर्धारण के स्तर की भिन्नता भी एक समस्या है।

भूमिव्यवस्था-सुधारो तथा विलयन के फलस्वरूप भूमिव्यवस्था का ढाँचा तथा इसके साथ-साथ लगान का ढांचा लगभग वैसा ही होता जा रहा है जैसा कि रैयतवारी वाले राज्यो में है। मियादी-रैयतवारी-बन्दोबस्तो के भविष्य की समस्या सब जगह है। १९३० से १९३९ तक की मदी के दिनो मे इस प्रणाली के अनुसार कार्य बडी सुगमता से चलता रहा। तब से बन्दोबस्त पर पुनर्विचार बराबर स्थगित होता रहा। मूल्य की विशेष स्थिति में लम्बे समय, सामान्यतया ३० वर्षो के लिए थोडा-बहुत स्थिर मूल्य-स्तर कायम न रखा जा सका। मदी के कारण इस धारणा की सत्यता पर शंका की जाने लगी। १९४० से १९४९ तक के दशक में पैदा होने वाली मुद्रा-स्फीति वाली विपरीत स्थिति का भी फिर से बन्दोबस्त किये जाने

की सभावनाओ पर उसी प्रकार का प्रभाव पडा। मदी के परिणामस्वरूप जैसे पजाव में उतार-चढाव वाली दरो का प्रयोग आरभ हुआ, वैसे ही मुद्रास्फीति से अधिभार के प्रयोग को वढावा मिला। पर विभिन्न क्षेत्रो के कर-निर्धारण विभिन्न थे, और कुल मिला कर वे मोटे तौर पर भी प्रचलित मूल्यो के अनुरूप न हो सके। जिस विशेष दवाव के कारण पुराने राजस्व-वन्दोवस्त टूट से गये, वह दवाव मूल्यो के उतार-चढाव का था।

वन्दोवस्त तथा पुनर्वन्दोवस्त विशेष कर छोटी इकाई के लिए लम्बे समय के कार्य हैं। मूल्य तो वहुत से विचार्य विषयो में से एक था। प्रारम्भिक वन्दोवस्त, जिसमें सर्वेक्षण, वर्गीकरण तथा कर-निर्धारण का सयुक्त कार्य था, उन सव इकाइयो के लिए किया जाना पडा, जिनका अभी तक न तो सर्वेक्षण हुआ था, न वर्गीकरण और न वन्दोवस्त। पर पुनर्वन्दोवस्त बिल्कुल अलग ही आधार पर है, तथा महत्त्वपूर्ण प्रश्न ये दो हैं—एक तो यह कि पुनर्बन्दोवस्त का सम्वन्ध क्या केवल छोटी इकाई के साथ रहेगा तथा दूसरे यह कि क्या दरो की गारन्टी तीस वर्षो के लिए दी जायगी?

१९वी शताब्दी में अर्थव्यवस्था के वदलने के साथ-साथ उसमें लगान के स्थान में भी परिवर्तन हुआ। व्यापारिक कृषि तथा अन्य विकास कार्यो से लगान का भार कम हो गया। व्यापारिक फसलें अधिक महत्त्वपूर्ण हो गईं, और उनके फलस्वरूप, अनाज की फसलो की अपेक्षा पूरी अर्थव्यवस्था का वहुत हद तक मौद्रिकीकरण हो गया।

इन परिवर्तनो से मूल्य वढे, और इसलिए लगान-सम्वन्धी कानून तुलनात्मक दृष्टि से नरम हैं। युद्धकाल में होनेवाली अधिक मूल्य-वृद्धि से लगान का भार कम हुआ। १९२९ से मूल्यो में गिरावट आने से लगान का भार वढ गया, जो द्वितीय महायुद्ध के परिणामस्वरूप अन्न के मूल्य वढ जाने से एक बार फिर कम हो गया। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक काल से लगान का भार लम्बे समय तक एक सा और बाद को घटता रहा। १९१८-१९ में सम्पूर्ण राजस्व के अनुपात में लगान ७३ १ प्रतिशत था, १९५२-५३ में घटकर वह ९ ३ प्रतिशत रह गया। यह कमी केन्द्र तथा राज्यो में नये प्रकार के कर लागू किये जाने तथा उनके महत्त्व में हुई वृद्धि के परिणामस्वरूप हुई। राज्य के राजस्वो में भी ये वातें प्रतिफलित हुई।

नये प्रकार के करो के फलस्वरूप, जिनका अब कुछ हद तक विकास हो रहा है, अच्छी स्थिति वाले किसानो से अधिक अशदान प्राप्त हो सकेगा। समानता बनाये रखने के लिए कृषि आय-कर का भी उपयोग किया जायेगा, किन्तु भिन्न-भिन्न समय पर वन्दोवस्त तथा पुन वन्दोबस्त किये जाने के परिणामस्वरूप एक ही प्रकार की भूमियो के कर-भार में अव भी अन्तर बना रहना नियमविरुद्ध है। पुनर्बन्दोवस्त किये जाने के स्थगन से ये अन्तर और भी बढ गये है। मूल्यो का उतार-चढाव इस प्रकार का है कि समानता लाने की दृष्टि से कुछ न कुछ पुनर-समायोजन आवश्यक है।

प्रशासन तथा आर्थिक, दोनो दृष्टिकोणो से वर्तमान प्रणाली में कुछ विशेष सुधार आवश्यक प्रतीत होते हैं।

लगान तथा कृषि-आयकर का भावी रूप

सिफ़ारिशें

बहुत से मामलो में विभिन्न राज्यो की लगान प्रणालियो में भिन्नता न्यायोचित है। महत्त्वपूर्ण विषय सम्बन्धी सामान्य नीति के आधार का जहाँ तक प्रश्न है, उसे लगान की एक मूलभूत प्रणाली कहा जा सकता है। उस प्रणाली की एक मोटी रूपरेखा का सुझाव स्वीकृति के लिए राज्यों के सामने रखा जायेगा। आगे इसे विस्तृत रूप से व्यावहारिक रूप देने का काम उन्ही राज्यो का होगा।

हाल की प्रगतियो के फलस्वरूप एक ऐसी व्यापक सामान्य प्रणाली की कल्पना का विकास हुआ है जिसमें इकाईगत भेदो का समावेश हो जाय।

बन्दोबस्त तथा पुनर्विचार की मूलभूत प्रणाली, जो अधिकांश रूप में वर्तमान रैयतवारी व्यवस्था जैसी है, महत्त्वपूर्ण विषयो में कुछ भिन्न होनी चाहिए। बन्दोबस्त का पुनर्विचार पारिभाषित इकाइयो के अन्तर्गत हो, तथा उसका सम्बन्ध स्थानीय मूल्यो के साथ होना चाहिए। इसकी परिभाषा पूरे राज्य के लिए अथवा अंचल के आधार पर की जानी चाहिए।

पुनर्विचार की सीमा के अन्दर प्रमापीकृत कर-निर्धारण अनिश्चित काल तक चलते रहना चाहिए। राज्य सरकारो को अधिभार नही वसूल करना चाहिए तथा प्रमापीकृत कर-निर्धारणो पर सभी अधिभार स्थानीय सेवाओ के लिए स्थानीय निकायो द्वारा लगाये जाने चाहिए। राज्य सरकारो के लिए भूमि राजस्व के प्रमापीकृत कर-निर्धारण स्तर के कुछ उतार-चढाव के अन्दर हिमीकृत किया जाना चाहिए, तथा कर से होने वाले अन्य सभी अशदानो का उपयोग स्थानीय निकायो पर छोड देना चाहिए।

सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण सहित प्रारम्भिक बन्दोबस्त अनिवार्य है, और इसे उन सभी क्षेत्रो में लागू किया जाना चाहिए, जहाँ इनमें से एक या अधिक कार्य किये जाने शेष है। यह काम इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके लिए अखिल भारतीय पैमाने पर सगठित प्रयत्न किया जाना चाहिए।

जिन राज्यो ने उच्चतर कृषि-आय पर कृषि-आयकर अभी तक न लगाया हो, उन्हें कृषि-आयकर लगाना चाहिए।

अन्ततोगत्वा उद्देश्य यह होना चाहिए कि कृषि-आय को अन्य आय में विलीन कर, एक ही आयकर लगाया जाय तथा आयकर से प्राप्त होनेवाली राशि दोनो प्रकार की आयो के अनुपात से केन्द्र तथा प्रत्येक राज्य में विभाजित की जाय। ऐसा दीर्घकालीन उद्देश्य ही हो सकता है। प्रारम्भिक कार्रवाई के रूप में राज्यो द्वारा करदाता की कृषि-आय के अतिरिक्त आय की दृष्टि से कृषि-आयकर पर अधिभार लगाया जाना सभव होना चाहिए।

सभी राज्यो में ३,००० रुपये वार्षिक से अधिक की सभी कृषि आय पर आयकर लगाया जाना चाहिए।

भारत में कृषि-आय तथा कृषि-आय से अतिरिक्त आय अलग-अलग मानी जाती है, और कई राज्यो द्वारा कृषि-आयकर न लगाये जाने के कारण कई गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो गई

है। निकट भविष्य मे दरो में एकरूपता लाना सभव नही है, किन्तु कुछ राज्यो में दरें बहुत ही कम है, जिन्हे उचित स्तर तक वढाया जाना चाहिए।

करदाताओ की कृषि व्यतिरिक्त आय के आधार पर मभी राज्यो को कृपि-आयकर पर अधिभार लगाना चाहिए। अधिभार के लिए कृपि व्यतिरिक्त आय के सम्वन्ध में भी कुछ छूट दी जा सकती है। कृपि व्यतिरिक्त आय के खडो के, जिनमे अधिभारो का सम्वन्ध रहेगा, तथा प्रत्येक खड के अनुकूल दर के विपय मे निर्णय प्रत्येक राज्य को करना होगा।

आवश्यक होने पर राज्यो को ऐमा अधिभार लगाने का पूर्ण अधिकार है तथा इस विषय पर किसी प्रकार की भी शका न रहने देने के उद्देश्य से सविधान मे उचित अनुवन्ध सम्मिलित किया जा सकता है।

सर्वेक्षण, वर्गीकरण तथा प्रारभिक वन्दोवस्त आवश्यक ह, पर वन्दोवस्तो पर पुनर्विचार के सम्वन्ध में, जिस प्रकार वें भूतकाल में कार्यान्वित किये गये ठीक यह वात नही कही जा सकती। कर-निर्धारण के वर्तमान स्तरो को पहले पूरे राज्य की दृष्टि से प्रमापीकृत किया जाना चाहिए, और फिर प्रमापीकृत किये गये कर-निर्धारण पर राज्यीय अथवा क्षेत्रीय पैमाने पर समय-समय पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। प्रमापीकरण का उद्देश्य भिन्नताओ में कमी करना होना चाहिए, न कि दूर करने का, क्योकि भिन्नता दूर करना न तो आवश्यक है और न सभव। प्रमापीकरण राज्यीय पैमाने पर सरल और तदर्थ होना चाहिए। शीघ्र कार्यान्वित किये जाने योग्य एक तदर्थ उपाय यह है कि वन्दोवस्त अथवा पुनर्वन्दोवस्त से सम्वन्वित मूल्यकाल की, जिस समय वर्तमान कर-निर्धारण किया गया हो, दृष्टि से वृद्धि का श्रेणीकरण हो।

कर-निर्धारण के स्तरो के एक बार प्रमापीकृत किये जाने पर मूल्य-स्तर के परिवर्तनो की दृष्टि से दस वर्षों में एक वार लगान पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। पुनर्विचार का समय ३० अथवा ४० वर्ष लम्वा नही होना चाहिए जैसा कि आजकल है।

मूल्यो में जो परिवर्तन हुए, उनकी दृष्टि से किया गया पूर्ण अथवा लगभग पूर्ण समायोजन न्यायोचित नही है। मूल्य-परिवर्तनो के मामूली अनुपात पर समायोजन किया जाना चाहिए। मूल्य परिवर्तनो को मापने के लिए यदि उस क्षेत्र के मुख्य अन्नो के मूल्यो को ही लिया जाये, तो यह साधारणतया पर्याप्त होगा। व्यापारिक फसलो के मामले में समिश्र सूचक अक की आवश्यकता पड सकती है। सूचक अक का सम्वन्ध पूरे राज्य अथवा प्रत्येक नये-क्षेत्र के साथ जोडना सभव होना चाहिए।

प्रमापीकृत कर-निर्धारण पर सर्वप्रथम पुनर्विचार किये जाने के लिए उस मूल्य-काल को आधार वनाना चाहिए, जिसका प्रमापीकृत कर-निर्धारण सम्बन्धित माना गया हो। आधार कम से कम दस वर्षों के काल को वनाना चाहिए और प्रमापीकरण के तुरन्त पूर्व बीस वर्षो से अधिक के काल को नही। मूल्यो में २५ प्रतिशत उतार या चढाव होने पर ही लगान की माँग का कोई समायोजन नही किया जाना चाहिए। यदि मूल्य २५ प्रतिशत से अधिक वढ जायें, तो लगान एक रुपये पर कम से कम दो पैसे से लेकर अधिक से अधिक

दो आने तक बढाया जाना चाहिए। यदि मूल्य कम हो जायें, तो लगान रुपये पर कम से कम एक आने से लेकर अधिक से अधिक चार आने तक कम किया जाना चाहिए।

समय-समय पर प्रमापीकृत तथा पुनर्विचारित लगान पर लगने वाले अधिभार स्थानीय निकायो के लिए ही छोड दिये जाने चाहिए। लगान मे से कम से कम १५ प्रतिशत राशि उसी क्षेत्र के स्थानीय निकाय को दे दी जानी चाहिए।

प्रमापीकरण अथवा इसके परिणामस्वरूप किये जानेवाले पुनर्विचार के समय यदि लगान में काफी वृद्धि हो जाय, तो अतिरिक्त राजस्व मे से यथासम्भव अधिक से अधिक भाग स्थानीय निकायो को दिया जाना चाहिए, जिससे वे स्थानीय निर्माण कार्य कर सकें।

लगान को पूर्ण रूप से स्थानीय प्राधिकारियो को हस्तान्तरित किये जाने को न्यायोचित ठहराने की विशेष आवश्यकता नही है। प्रारंभिक वन्दोवस्त की अवस्था में लगान निश्चित करने के लिए किसी विशेष आधार की सिफारिश नही की गयी है। पड़ोसी राज्य अथवा क्षेत्र में प्रचलित आधार अपनाया जा सकता है। इससे लगान के कर-निर्धारण में अधिक एकरूपता आयेगी। सहकारी समितियो से लगान वस्तु के रूप में वसूल किये जाने की पद्धति व्यावहारिक होगी ऐसी आशा है, वशर्ते कि कार्यकुशल समितियाँ हो।

लगान वसूल करने का वर्तमान प्रशासन-यन्त्र वर्षों से चला आ रहा है और एक प्रकार से सफल ही रहा है। यदि राज्यो के वर्तमान 'राजस्व वोर्डों' को प्रतिस्थापित करना है, तो अपीलें सुनने के काम के लिए राजस्व तथा अन्य न्यायाधिकरण स्थापित करने पड़ेंगे।

कुछ राज्यो में ग्राम-अधिकारियो के स्थान पर सरकारी नौकरो की नियुक्ति होने पर लगान-वसूली का काम ढीला पड गया है। कमीशन के आधार पर लगान वसूल करने का काम ग्राम-पंचायतो को सौंपे जाने के सम्वन्ध में आयोग को कोई आपत्ति नही है। ऐसा जहाँ भी संभव हो, वहाँ किया जा सकता है। पैतृक उत्तराधिकार के आधार पर चले आनेवाले ग्राम-अधिकारियो के स्थान पर वेतन-भोगी ग्राम-अधिकारी रखे जाने चाहिए।

कृषि व्यतिरिक्त भूमि का कर-निर्धारण

कृषि व्यतिरिक्त कर-निर्धारण की प्रथा विभिन्न राज्यो में अलग-अलग है। कुछ राज्यों में कोई कर-निर्धारण नहीं हुआ। अन्य राज्यो में कर-निर्धारण अनुविहित कानून अथवा कार्यपालिका आदेशो से होता है। केवल पश्चिम वगाल में इसके लिए एक विशेष कानून है।

ग्रामीण क्षेत्रो में कृषि-व्यतिरिक्त भूमि के कर-निर्धारण का सम्वन्ध प्रारम्भ में किसानों के घरो से ही था। अलग-अलग राज्यो में तथा एक राज्य के अन्दर भी भिन्न-भिन्न प्रथाएँ थी। निवासभूमि के अलावा कई राज्यो में ऐसी भी भूमि थी, जिस पर कर-निर्धारण से या तो पूर्ण छूट प्राप्त थी, अथवा वहुत साधारण सा किराया लिया जाता था। ऐसी प्रथा भी विभिन्न राज्यो में भिन्न-भिन्न थी।

कृषि व्यतिरिक्त भूमि के कर-निर्धारण के लिये विभिन्न राज्यो ने शहरी क्षेत्रो में विभिन्न प्रणालियाँ अपना रखी थी। कुछ राज्यो में ग्राम तथा शहरी क्षेत्रो में कोई भेद नही माना जाता

था। बम्बई राज्य में ग्राम तथा शहरी क्षेत्रो में कृपि व्यतिरिक्त कर-निर्धारण के लिए अलग व्यवस्था थी।

कृषि व्यतिरिक्त भूमियो के कर-निर्धारण की दर के आधार काफी भिन्न हैं। अलग-अलग राज्यो में भी विभिन्न उपयोगो के लिए विभिन्न आधार है। दरो के आधार में पेचीदगी राजस्व के भूतपूर्व इतिहास तथा उस समय की प्रचलित विभिन्न भू-प्रणालियो के फलस्वरूप पैदा हुई। कृपि व्यतिरिक्त भूमियो के लिए पुनर्कर-निर्धारण की अवधि सामान्यतया १० से ३० वर्ष तक की रही।

जमीदारी तथा जागीरदारी आदि के उन्मूलन के कानून लागू होने के बाद राज्य सरकारो ने लगान सम्बन्धी वर्तमान कानूनो के पुनर्विचार अथवा नये कानूनो की रचना की ओर ध्यान दिया।

कृषि व्यतिरिक्त कर-निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्त तथा प्रक्रियाएँ मुख्यत भूमि के उपयोग तथा मूल्य पर आधारित है। कृपि व्यतिरिक्त उपयोग में आनेवाली भूमि से प्राप्त होने वाली अनर्जित आय पर कर लगाने के सम्बन्ध में अधिकाश राज्यो ने पर्याप्त ध्यान नही दिया है। जिन राज्यो में राजस्व के इस स्रोत का विकास अभी तक नही हुआ है, उन्हें अब इस स्रोत का विकास करना चाहिए और बम्बई की प्रचलित प्रणाली के अनुसार कृपि व्यतिरिक्त भूमि के कर-निर्धारण की नियमित प्रणाली लागू करनी चाहिए। जिस भूमि का जैसा उपयोग किया जायेगा, उस भूमि का कर-निर्धारण वैसा ही होगा। कर-निर्धारण का सम्बन्ध सम्पत्ति के बाजार-मूल्य से होना चाहिए, और जहां यह सभव न हो, वहां वार्षिक मूल्य के साथ होना चाहिए।

बन्दोवस्त की शर्तों में भी एकरूपता नही है। भूमि का बाजार-मूल्य समय समय पर घटते-बढते रहने के कारण कर-निर्धारण की अवधि युक्तियुक्त होनी चाहिए, न बहुत अल्प और न बहुत दीर्घ। लगान सम्बन्धी कानूनो में निर्धारित दरो पर समय-समय पर पुनर्विचार किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

कुछ राज्यो में कृपि व्यतिरिक्त भूमियो के कर-निर्धारण से होनेवाली प्राप्तियो का एक भाग स्थानीय प्राधिकारियो को दे दिया जाता है। चूंकि अधिक प्राप्तियां शहरी क्षेत्रो में ही होती हैं, इसलिए नगरपालिकाओ को स्थानो के मूल्यो में होनेवाली वृद्धि से लाभ होना ही चाहिए। कृषि व्यतिरिक्त कर-निर्धारणो से होनेवाली प्राप्तियो का एक भाग अनुदान के रूप में उन स्थानीय निकायो को दिया जाना चाहिए जिनके क्षेत्रो में प्राप्तियां वसूल की गई हो।

सिंचाई तथा सुधार सम्बन्धी प्रभार

जल-उपशुल्क

सिंचाई के प्रभारो की वर्तमान प्रणाली का विकास भिन्न-भिन्न राज्यो में भिन्न-भिन्न रूप से हुआ है, जिसके फलस्वरूप सिद्धान्त तथा कर-निर्धारण की दरें कई प्रकार की हो गई है।

अधिकाश सिंचाई-राजस्व, पानी के उपशुल्को, पानी-उपकर या अधिकारी की दर (आकुपायर्स रेट) से प्राप्त होता है। उत्पादक योजनाओ में पानी के प्रभार भिन्न-भिन्न तरीकों से लगते हैं तथा उनकी दरें भिन्न-भिन्न होती हैं। पानी के प्रभार भिन्न-भिन्न तरीको से, दिये गये पानी की मात्रा अथवा पानी के शुल्क के समेकित किये जाने अथवा भिन्न दर से वसूल किये जाने अथवा वास्तविक रूप से सिंचित क्षेत्र के आधार के अनुसार, लगाये जाते हैं। ये फसल अथवा फसलो की किस्मो अथवा कुछ वर्षों के लिए समझौते द्वारा निर्धारित दरो के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। इन प्रणालियो में से कुछ छोटे सिंचाई कार्यों के लिए भी लागू होती हैं।

नये कार्यों का निर्माण-व्यय तथा नये-पुराने कार्यों के रखरखाव का व्यय, सामान, मजदूरी तथा वेतन के मूल्यो में भारी वृद्धि होने के कारण काफी वढ गया है। कई राज्य पर्याप्त प्रभार लगाने अथवा वर्तमान दरो को वढ़ाने की कार्रवाई कर चुके हैं। युद्ध-काल मे तथा उसके वाद कृपिजन्य वस्तुओ के मूल्यो में वृद्धि होने के कारण पुनर्विचार के लिए काफी गुजाइश हो गई है। यह कहना सम्भव नही कि क्या पानी के उपशुल्को में हाल ही में की गयी वृद्धि से सरकारें सिंचाई-कार्यों पर आनेवाले व्यय कम कर सकेंगी, पर आशा यह है कि इन कार्यों पर आनेवाले अधिक व्यय की पूर्ति करना अधिक सभव हो जायेगा। पानी के उपशुल्क वढाये जाने के अलावा सुधार सम्वन्धी प्रभार तथा कुछ राज्यो के योजना क्षेत्रो मे न्यूनतम धारण व्यय के लिए लगाये गये अनिवार्य पानी प्रभार जैसे अन्य उपाय भी किये गये है।

उत्पादक तथा सुरक्षाप्राप्त कार्यों के वीच का भेद काफी कुछ समाप्त हो चुका है और ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि भविष्य में सिंचाई-कार्यों पर किये जानेवाले विनियोग पर वदले में तुरन्त कुछ नगद लाभ प्राप्त करने की अपेक्षा योजनाओ की उपयोगिता पर अधिक ध्यान दिया जायेगा। यह स्पष्ट है कि भविष्य में पानी पर उपशुल्क लगाने की प्रणाली ऐसी होगी जिससे नहरो के पानी का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके तथा ऐसी परिस्थितियाँ पैदा की जा सके ताकि सिंचाई-कार्यों का रखरखाव तथा उनका विकास करना आज की अपेक्षा अधिक सम्भव हो सके।

यह नही कहा जा सकता कि पानी का उपशुल्क एक सेवा-प्रभार है या कर का एक साधन है। सामान्यतया पानी के उपशुल्क में धारण-प्रभार आ जाने चाहिएँ। किन्तु अभाव वाले क्षेत्र के लिए सिंचाई-कार्य के सम्वन्ध में कुछ घाटा उठाने की नीति भी न्यायोचित होगी। अच्छे क्षेत्र के लिए अथवा ऐसे क्षेत्र के लिए, जहाँ सिंचाई-कार्य पहले से ही था, और जिससे लाभ उठाया जा चुका हो तथा अभी भी उठाया जा रहा हो, सिंचाई-कार्य के सम्वन्ध में लाभ की नीति न्यायोचित होगी।

उत्पादक सिंचाई-कार्यों से साधारणतया सामान्य राजस्व को कोई हानि नही पहुँचनी चाहिए। इसके लिए पानी-प्रभारो का सम्वन्ध धारण-व्यय के साथ जोड दिया जाना चाहिए। पानी-प्रभार दो प्रकार के होगे : मरम्मत तथा स्थिर रखने के लिए सिंचाई-कार्य के अन्तर्गत आनेवाले प्रत्येक जमीदार से, चाहे वह पानी लेता हो या न लेता हो, लिया जानेवाला छोटा-प्रभार तथा उनसे पानी की पूर्ति के लिए लिया जानेवाला अतिरिक्त-प्रभार जिन्होने ऋण सम्वन्धी व्यय तथा फुटकर व्यय के लिये इसका उपयोग किया हो।

अनिवार्य धारण-प्रभार आवश्यक रूप से छोटी राशि का होगा। ऐसा ही छोटे सिंचाई-कार्यों के विषय में भी होना चाहिए।

पानी लेने वाले व्यक्तियो द्वारा दिये जाने वाले पानी के उपशुल्क निश्चित किये जाने के लिए ऋण सम्बन्धी व्यय तथा फुटकर व्यय के अलावा दिये गये पानी की मात्रा, उपजी हुई फसल, किसान द्वारा उठाये गये लाभ की मात्रा तथा किसान की अदायगी करने की क्षमता आदि का भी ध्यान रखा जाता है।

पानी के उपशुल्क निश्चित करने का सरल तरीका उपजी हुई फसल के मूल्य के आधार पर करने का है। अन्य देशो में भी इसी सिद्धान्त से मिलता-जुलता तरीका अपनाया जाता है। यह पानी के सामान्य उपशुल्क की अपेक्षा अधिक न्यायोचित है तथा इसमें उपयोग में लाये गये पानी की मात्रा के अनुसार भिन्नता रखे जाने की गुंजाइश है। उपयोग में लाये गये पानी की मात्रा के आधार पर लगाया जाने वाला प्रभार अधिक वैज्ञानिक है तथा बहुमत भी इसी आधार के अपनाये जाने के पक्ष में है। यह लिफ्ट-सिंचाई वाले क्षेत्रो में चालू है, किन्तु नहर से सिंचाई किये जाने वाली भूमियो में इसे लागू करने में कई कठिनाइयां है। विभिन्न स्थितियो तथा विभिन्न आवश्यकताओ के लिए उपयोगी एक ही आधार नही निकाला जा सका है।

लम्बे अर्से के लिए निर्धारित पानी के उपशुल्क में कृषिगत मूल्यो में होने वाली वृद्धि अथवा कमी का ध्यान नही रखा जाता तथा आज के विकास काल में ऐसा किये जाने से सरकार राजस्व में काफी वृद्धि नही कर सकेगी। थोडे थोडे समय के बाद जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ पानी के उपशुल्को पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

वैज्ञानिक सिद्धान्तो और कुछ हद तक सरकार के राजस्वो का हनन किये बिना पूर्ति के विभिन्न स्रोतो के बीच एकसार दरें निर्धारित करना सम्भव नही है। एक ही राज्य में तथा विभिन्न राज्यो के बीच एक-से सिंचाई-कार्यों के क्षेत्रो में पानी की पूर्ति पर आने वाले व्यय में आज जो अन्तर है, उसे यथासम्भव दूर करने की आवश्यकता है।

रखरखाव के लिए कुओ तथा तालाबो जैसे छोटे सिंचाई-कार्यों के पचायतो, सहकारी समितियो आदि को हस्तान्तरित किये जाने का प्रश्न हाल के वर्षों में बडे महत्त्व का हो गया है। कुंओ तथा तालाबो के मामलो में यह व्यवस्था सुचारु रूप से चल सकती है, किन्तु महत्त्वपूर्ण कार्यों के हस्तातरण में कठिनाई आ सकती है। सिंचाई-उपकर तथा पानी के उपशुल्को की वसूली के लिये ग्राम पचायतो की सेवाओ का उपयोग किया जाना लाभदायक हो सकता है।

सुधार-सम्बन्धी प्रभार

भूमि-मूल्यो की अनर्जित वृद्धियो पर कर लगाना एक अच्छा सिद्धान्त है। इससे भूमि के मूल्यो में स्थिरता आती है, तथा कार्यों के पूंजीगत व्यय के लिए सरकार को अतिरिक्त राजस्व मिलता है।

गैर-इस्तमरारी बन्दोबस्त वाले राज्यो में बन्दोबस्त पर पुनर्विचार किये जाने के समय अथवा विशेष प्रभार लगा कर लगान में वृद्धि करके सरकारी कार्य से मिलनेवाले मूल्य में से कुछ

भाग सरकार को देना परम्परागत रहा है। सुधार-सम्बन्धी प्रभार की प्रथा मैसूर में १८८८ में प्रचलित थी। दूसरे देशो में कृषि योग्य बनाये जाने वाली भूमि के कार्यों से प्राप्त अनुभव के फलस्वरूप सिंचाई-कार्यों के पूंजीगत व्यय वहन किये जाने के लाभप्रद उदाहरण मिलते है।

कई राज्य सरकारो ने नये कार्यों पर प्रभार लगाने का अधिकार ले लिया है। पहले-पहल ऐसे कानून बम्बई, हैदराबाद, पंजाब, पेप्सू तथा राजस्थान में लागू किये गये।

सुधार सम्बन्धी प्रभारो के निर्धारण के लिए केवल पूंजीगत मूल्य में होने वाली वृद्धि को ही ध्यान में नहीं रखा जाता बल्कि सिंचाई की सुविधा, सिंचाई-व्यवस्था के सुधार आदि को भी ध्यान मे रखा जाता है।

बहुत से राज्यो ने यह मान लिया है कि सुधार सम्बन्धी प्रभार, मूल्य मे होनेवाली वृद्धि के ५० प्रतिशत से अधिक नही होना चाहिए, ऐसे मूल्य के आगणन के लिए चाहे कैसा भी आधार क्यो न हो। उच्चतम दर के निर्धारण के लिए चाहे जो भी आधार अपनाया जाये, किन्तु उसमें लचीलापन होना चाहिए। केवल हैदराबाद को छोडकर, जहाँ किश्तें व्याज-मुक्त है, अन्य सभी राज्यो में विभिन्न स्तरो पर ब्याज लगाया जाता है। मैसूर में ७ प्रतिशत से लेकर मद्रास में २० प्रतिशत तक की पेशगी वाली अदायगियो पर रियायतें दी जाती है। विभिन्न राज्यो में अदायगी की अवधि १० से ३० वर्ष तक की है। अदायगी काफी लम्बे अर्से में की जा सकती है।

कृषि-मूल्यो में भारी गिरावट आने से पैदा होने वाली स्थिति का सामना करने के लिए विभिन्न राज्यो के कानूनो में कोई व्यवस्था नही है। ऐसी स्थिति में सभी राज्यो को विशेष रियायत देनी चाहिए।

छोटे सिंचाई-कार्यों की. स्थिति कुछ भिन्न है। अक्सर ऐसे कार्य पर्याप्त सुरक्षा नही देते तथा सुधार न स्थायी होता है और न महत्त्वपूर्ण। निर्माण-व्यय थोड़ा होता है, और धारण-व्यय कम। इसलिए कुओ तथा तालावो से सिंचित भूमि पर सुधार-सम्बन्धी प्रभार लगाना न्यायोचित नही है। नलकूप तथा तालाव जैसे छोटे सिंचाई-कार्य दूसरे प्रकार के है, किन्तु इनके लिए भी सुधार-सम्बन्धी प्रभार की अपेक्षा पानी के शुल्को में कुछ वृद्धि करना अधिक उचित होगा।

स्थानीय वित्त तथा कर

ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ से लेकर स्वतन्त्र होने तक तथा उसके बाद स्वायत्त शासन निकायो के विकास को चार कालो में बाँटा जा सकता है—आरम्भ से १८८२ तक, १८८२ से १९१९ तक, १९१९ से १९३५ तक तथा १९३५ से आज तक। स्वायत्त शासन का विकास पहले-पहल मद्रास, कलकत्ता तथा बम्बई में हुआ। अधिकाश प्रान्तो के कई शहरो में नगरपालिकाएँ स्थापित की गईं, पर ग्राम-क्षेत्रो में स्वायत्त शासन-संस्थाओं का विकास १८७१ तक नही के बराबर हुआ। १८७१ में लार्ड मेयो ने प्रशासन के विकेन्द्रीकरण की अपनी योजना पेश की। शहरी तथा देहाती, दोनो प्रकार की समितियाँ

अधिकतर सरकारी और नामनिर्दिष्ट की हुई है। स्थानीय स्वायत्त शासन में 'स्वायत्त शासन' वाले पहलू की अपेक्षा अधिक बल 'स्थानीय' वाले पहलू पर दिया गया है।

लार्ड रिपन के १८८२ के प्रस्ताव से देहाती क्षेत्रो में स्वायत्त शासन के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। कार्यो में वृद्धि होने के साथ-साथ अधिकारो को तथा वित्तीय उत्तरदायित्व तथा वित्तीय साधनो को भी बढाया गया। प्रान्तीय राजस्व की उपयुक्त मदो के साथ साथ व्यय की विशेष मदें स्थानीय निकायो को हस्तातरित की गईं। देहाती क्षेत्रो में स्थानीय बोर्डों के स्थापन के साथ-साथ प्रगति हुई। अधिकारो तथा कार्यों की दृष्टि से देहाती बोर्ड शहरी सस्थाओ से काफी पिछडे हुए है। उनके राजस्व का एकमात्र ठोस स्रोत भूमि पर लगनेवाला उपकर है, किन्तु अधिकाश राज्यो में उपकरो की दरें बढ़ाने या लगाने का अधिकार उन्हे नही है।

१९१९ में स्वायत्त शासन एक हस्तातरित विषय बन गया। बाद के कानूनो से उन सस्थाओ का लोकतन्त्रीकरण हुआ, और स्थानीय निकायो के कार्य तथा अधिकार बढ गये। कराधिकारो की कोई विशेष सीमा नही है। लगभग सभी राज्यो में ग्राम पचायतो अथवा सघीय बोर्डों की रचना के लिए कानून पास हो चुके है।

प्रान्तीय स्वायत्त शासन से स्वायत्त शासन को और भी प्रोत्साहन मिला। स्वतन्त्रता मिलने के बाद लोकतन्त्रीकरण की प्रगति का अन्त वयस्क मताधिकार के स्वीकार किये जाने तथा नामजदगी के उन्मूलन में हुआ। स्थानीय निकायो के कार्य भी बढा दिये गये। किन्तु स्थानीय निकायो को सुलभ वित्तीय साधन अपर्याप्त थे, और इनका व्यय, आय के अनुपात से बहुत बाहर चला गया। परिणामस्वरूप कई स्थानीय निकाय अपने मूलभूत कार्य-पालन में भी असफल रही। सघीय सूची में रेलो द्वारा ले जाये जाने वाले सामान पर लगनेवाले सीमा-करो के सम्मिलित किय जाने, व्यवसाय कर की राशि सीमाबद्ध किये जाने तथा सघीय सम्पत्ति पर स्थानीय करो से छूट मिलने से कर लगाने के उनके अधिकार सकुचित हो गये।

राज्यो में लोकप्रिय सरकारो की स्थापना से ग्राम-पचायतो के विकास को प्रोत्साहन मिला। स्वायत्त-शासन अब राष्ट्र के प्रशासनतन्त्र का ही एक अग बन गया। प्रान्तीय स्वायत्त शासन के प्रारम्भ तक स्वायत्त-शासन सस्थाओ ने विदेशी शासन के विरुद्ध लोकप्रिय जनमत का प्रतिनिधित्व किया। किन्तु प्रान्तीय स्वायत्त शासन के मान लिये जाने के बाद यह धारणा लुप्त हो चली। लोकप्रिय सरकारो ने भी स्थानीय निकायो पर नियन्त्रण रखने तथा प्रशासन के स्तरो को ऊँचा उठाने की आवश्यकता का अनुभव किया।

स्वायत्त शासन सस्थाएँ मुख्यत चार प्रकार की है—ग्राम-पचायतें, स्थानीय जिला बोर्ड, नगरपालिकाएँ तथा नगर निगम।

ग्राम पंचायत

एक पचायत के अधिकार क्षेत्र में सामान्यतया एक राजस्व-ग्राम होता है, किन्तु कभी कभी एक के अन्तर्गत दो या तीन गाँवो को भी मिला दिया जाता है। कुछ राज्यो में

जनसख्या तथा राजस्व के आधार पर पचायतो को दो या तीन वर्गों में बाँट दिया गया है। अधिकाश राज्यो में कराधिकार सौपने के लिए ऐसा कोई वर्गीकरण नही किया गया।

सविधान दो प्रकार के हैं। कुछ मे गाँव की समस्त वयस्क जनसख्या की एक पंचायत बना दी जाती है। दूसरो में गाँव की वयस्क जनसख्या केवल मतदाता रहती है जो पचायत के सदस्यो का चुनाव करती है। पहली स्थिति में पचायत के दैनिक कार्य-सचालन के लिए सामान्यतया एक कार्यकारिणी समिति की नियुक्ति किये जाने की व्यवस्था है।

प्रत्येक ग्राम-पचायत का एक अध्यक्ष होता है, तथा अधिकाश राज्यो मे एक उपाध्यक्ष भी। अधिकाश पचायतो में निर्वाचित पदाधिकारियो के अलावा सचिव होते है। अधिकाश राज्यो में वेतनभोगी सचिव को पचायत निधियो से वेतन दिया जाता है। कुछ राज्यो मे सरकार पूरा या आशिक व्यय उठाती है। पचायतो के मार्गदर्शन, निर्देशन तथा नियन्त्रण के लिए लगभग सभी राज्यो ने या तो नये विभाग खोले है, या वर्तमान विभागो का विस्तार किया है। कुछ राज्यो मे पचायतो के सगठन या तो पिरामिडनुमा है या उनका ढाँचा ऐसा बनाने का विचार किया गया है। पचायत को प्राप्त होनेवाले राजस्व स्थानीय वोर्डो के राजस्वो की अपेक्षा नगरपालिकाओ के राजस्व जैसे है। अधिकाश राज्यों मे कर से प्राप्त होनेवाला राजस्व पचायतो के लिए आय का सबसे बडा एकमात्र स्रोत है। सभी राज्यो की ग्राम पचायतो को कर लगाने का अधिकार दे दिया गया है। कर के आधार, जिनसे इन अधिकारो का सम्बन्ध ह, विस्तृत ह तथा उनके अन्तर्गत व्यक्ति, सम्पत्ति तथा कारोबार आते हैं। सभी राज्यो में इन अधिकारो के प्रयोग पर विशेष शर्ते लगी हुई है, जो विभिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न हैं। अधिकाश राज्यो में पचायतो का विस्तार अभी हाल ही में हुआ है, इस कारण या तो उनका काम शुरू नही हुआ, या कराधिकारो का प्रयोग उन्होने अभी-अभी शुरू किया है। अधिकाश राज्यो मे पंचायतो ने अब तक सामान्य सम्पत्ति-कर, लगान पर लगनेवाले कर अथवा भूमि का किराया, व्यवसाय-कर तथा पशु तथा वाहन-कर जैसे केवल एक या दो अथवा अधिक से अधिक तीन करो का ही उपयोग किया है। पचायतो को सौंपे गये कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के है, जैसे न्यायपालिका, पुलिस, नागरिक तथा आर्थिक आदि-आदि। सच तो यह है कि किये जानेवाले कार्य, सूची मे दिये जानेवाले कार्यो की तुलना मे वहुत सीमित है। अधिकाश मामलो में ग्राम पचायतें दो या तीन कार्य ही करती हैं।

स्थानीय जिला वोर्ड

जिला वोर्ड अथवा स्थानीय वोर्ड का अधिकारक्षेत्र सामान्यतया एक राजस्व-जिले का होता है। नगरपालिकाओ से भिन्न जिला वोर्ड अपना राजस्व सरकार के सहायता अनुदानो से प्राप्त करते है। इस पर भी जिला वोर्ड के पास नगरपालिकाओ से कम वित्त होता है। नगरपालिकाओ की औसत प्रति व्यक्ति आय जिला वोर्डो की औसत प्रति व्यक्ति आय की लगभग आठ गुनी होती है, जब कि नगर कर का प्रति व्यक्ति करानुपात जिला वोर्ड के प्रति व्यक्ति के करानुपात का १२ गुना होता है।

जिला बोर्डों के कर लगाने के अधिकार बहुत ही सीमित हैं। कर-राजस्व का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत है—भूमि-उपकर। दूसरे नम्बर का स्रोत विभिन्न राज्यो में अलग-अलग है।

भूमि-उपकर तथा व्यवसाय-कर प्रयोग में अनमनीय सिद्ध हुए हैं। हाल ही में कुछ राज्यो ने लगान का कुछ भाग जिला बोर्डों को देने का निश्चय किया, किन्तु केवल बम्बई को छोडकर अन्यत्र यह निश्चय कार्यान्वित नही किया गया। कुछ राज्यो में जिला बोर्डों से प्रारम्भिक शिक्षा तथा चिकित्सा एव सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओ जैसे कुछ कार्य छीन लिये गये। अधिकाश राज्यो मे ग्राम-पचायतो की स्थापना बडे पैमाने पर किये जाने से जिला बोर्डो की स्थिति पर भी प्रभाव पडा है।

नगरपालिकाएँ

विभिन्न राज्यो की नगरपालिकाओ मे काफी एकरूपता पाई जाती है। किन्तु राज्य सरकारो द्वारा रखे जाने वाले नियन्त्रण की मात्रा, कर लगाने के अधिकारो तथा कार्यो के क्षेत्र एव विभिन्न कार्यों में महत्त्वपूर्ण अन्तर है। लगभग सभी राज्यो में सबसे अधिक नगर-राजस्व की प्राप्ति करो से ही होती है। सभी नगरपालिकाओ का औसत कर-राजस्व, कुल राजस्व का ६३ २ प्रतिशत होता है।

नगरपालिकाओ द्वारा लगाये जाने वाले मुख्य करो मे सम्पत्ति-कर, सामान-कर, व्यक्तिगत-कर, वाहन तथा पशु-कर तथा थिएटर अथवा प्रदर्शन-कर आते हैं। कुछ राज्यो में नगरपालिकाओ को मनोरजन-करो की प्राप्तियो में से भी कुछ भाग मिलता है।

'ख' भाग के राज्यो में नगरपालिकाएँ परोक्ष कर लगा कर अभी भी जनता को नाराज करने के पक्ष में नही हैं। अपरोक्ष कर लगाने के सम्बन्ध में यह बात नही है। भूतपूर्व रजवाडो को मिलाकर सगठित किये गये 'ख' भाग के राज्यो की स्थिति अधिक सन्तोषप्रद है।

महत्त्वपूर्ण नागरिक सेवाओ पर होने वाले व्यय की दृष्टि से नगर-राजस्व सामान्यतया अपर्याप्त रहता है। नगरपालिकाओ के आय-व्ययको (बजटो) की स्थिति बडी नाजुक रहती है। कुछ राज्यो में परिव्यय वर्तमान राजस्व से अधिक होता है।

नगर-निगम

अभी हाल तक नगर-निगम केवल बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता में ही थे। अब ऐसे १२ नगर-निगम है। इनके साधनो तथा इनसे लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्तियो की सख्या की दृष्टि से इनमें काफी अन्तर रहता है। नगर-निगमो को नगरपालिकाओ की तुलना में अधिक कार्य करने पडते हैं, तथा इनके अधिकार भी अधिक होते हैं। इनको कर लगाने के काफी अधिकार हैं, तथा आय-व्ययको के निर्माण तथा नगर-कार्यों की स्वीकृति के सम्बन्ध में इन्हें अधिक स्वतन्त्रता मिली हुई है। विचार प्रधान कार्यों का कार्यकारी कार्यों से पूर्णत अलग होना तथा निर्वाचित समिति से स्वतन्त्र आयुक्तो को पूर्ण कार्यकारी अधिकार प्राप्त होना नगर-निगमो की विशेषता है।

विभिन्न निगमो पर नियन्त्रण रखने वाले कानून, निगमो के अधिकारो को करो

की एक विशिष्ट संख्या तक सीमित करते हैं। हाल के कानूनो का उद्देश्य अनुविहित व्यवस्था के विस्तार का है, जिससे सरकार के लिए नये कर लगाने का अधिकार देना सभव हो सके।

अधिकाश नगर-निगमो के राजस्व का सबसे बडा स्रोत सम्पत्ति-कर है। नगरपालिकाओ की तुलना में नगर निगमो में नागरिक सेवाओ पर होनेवाला व्यय अधिक होता है।

स्थानीय वित्त तथा कर के बारे में दृष्टिकोण

सामान्य सिफारिशे

योजना आयोग ने ग्राम-पचायतो के योग्य कार्य गिनाये है, तथा जिन क्षेत्रो मे पंचायतें हो, उनमें पचायतो से सम्बन्धित रहने वाली ग्राम-विकास-परिषदो की रचना का सुझाव रखा है। एक विचार ऐसा प्रकट किया गया है कि ग्राम-पचायते आर्थिक आयोजन की केन्द्र-बिन्दु हो और उनका विकास उन्ही केन्द्र-बिन्दुओ के चारो ओर हो। विभिन्न कार्यों के सबध में आवश्यकता से अधिक आशावादिता की अपेक्षा पचायतो को आर्थिक तथा अन्य कार्य सौंपने के मामले में सतर्कता से काम लिया जाना अधिक अच्छा होगा।

अधिकाश राज्यो के पचायत-अधिनियमो में अनिवार्य कार्यों की लम्बी सूची सम्मिलित है। ग्राम-पचायतो के कार्यों मे से ऐसे कार्य अलग कर दिये जाने चाहिएँ, जो सहकारी समितियो जैसी अन्य सस्थाओ द्वारा अधिक उचित ढग से किये जाते हो। कुछ भली भाँति चुने गये तथा स्पष्ट रूप से पारिमापित कार्य उन्हें सौंप दिये जाने चाहिए तथा इनको स्थानीय बोर्डो अथवा अन्य ग्राम बोर्डो को सौंपे गये ऐसे ही कार्यों के साथ समन्वित किया जाना चाहिए। स्कूलो, सचार-साधनो, सफाई, जल-पूर्ति, छोटे सिंचाई-कार्य आदि से सम्बन्धित स्थानीय विकास-योजनाओ के साथ पचायतो का प्रभावकारी ढग से सम्बन्ध जोडने की काफी गुजाइश है। स्थानीय शासन के ढाँचे में स्थानीय जिला बोर्डों की स्थिति अधिकाधिक अस्थिर होती जा रही है, यहाँ तक कि अधिकार के बाहर भी। कुछ समय तक यह धारणा चलती आई कि स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में एक साधारण जिले के लिए एक बोर्ड अनुपयुक्त होगा। 'विकेन्द्रीकरण आयोग' उपजिला-बोर्डों की स्थापना के पक्ष में रहा, यद्यपि उसने जिला बोर्डो के सीधे उन्मूलन का प्रस्ताव नही रखा है। आयोजन की आवश्यकता के फलस्वरूप जिला बोर्ड के आकार तथा उसकी कार्यकुशलता की ओर भी ध्यान दिलाया गया है। बहुत से राज्यो में इसके कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य कभी-कभी स्वयं सरकार को ही हस्तातरित कर दिये गये। वित्त तथा कार्य की दृष्टि से प्रत्येक पचायत, जिला-बोर्ड के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है। कुछ राज्यो में ऐसे कर तथा शुल्क हैं, जिन्हें जिला बोर्ड तथा पचायत दोनो ही साथ-साथ लगाते रहे है। इन प्रतियोगी अधिकार-क्षेत्रो मे समन्वय करने के उपाय किये जा रहे है। अब प्रश्न केवल जिला बोर्ड के आकार का ही नही है, किन्तु ग्राम-पचायतो तथा अन्य ग्राम-निकायो के वित्तीय साधनो तथा कार्यो के बीच उचित समन्वय करने की समस्या का प्रश्न अधिक मूलभूत है। यह स्पष्ट है कि जिला बोर्ड वर्तमान रूप में अब आगे नही कायम रह सकते। सभी के बारे में एक प्रकार का ही पुनर्गठन लागू नही हो सकता। मध्यप्रदेश में जिला बोर्डो के स्थान पर प्रतिस्थापित छोटी सस्थाओ का

काम सतोषप्रद नही रहा। जिला बोर्डों के असतोषजनक कार्य सचालन के लिए उत्तरदायी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि राज्य सरकारें इन सगठनो के लिए पर्याप्त वित्त देना नही चाहती या दे नही पाती। स्थानीय वित्त के एक स्रोत का विस्तार स्थानीय करो मे काफी आगे तक है, किन्तु यह स्पष्ट है कि स्थानीय वित्त की ठोस प्रणाली को स्थानीय करो के ठोस बुनियाद पर ही आधारित होना चाहिए। मूलभूत राजस्व का आधार स्थानीय करो से होनेवाली प्राप्तियाँ होनी चाहिए और आवश्यक अतिरिक्त वित्त की पूर्ति अन्य उपायो मे की जानी चाहिए।

ग्राम पचायतो के विकास के लिए अभी उचित वातावरण तैयार करना है, इसलिए उन्हें शुरू में ही प्रभार लगाने के लिए बाध्य नही करना चाहिए, और राज्य सरकारो को शुरू के कुछ वर्षों में अपने वित्त का एक अच्छा खासा भाग नई ग्राम-पचायतो के हाथो में सौंप देना चाहिए।

माँग की गई है कि स्थानीय निकायो के लिए कर-राजस्व का एक निश्चित स्रोत होना चाहिए, और सविधान में करो की एक अलग सूची सम्मिलित करके गारण्टी दी जानी चाहिए। ऐसा कहा गया है कि इसके कारण राज्य सरकारें स्वायत्त शासन तथा उसके आधार को नुकसान में डालकर स्थानीय वित्त के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रही है। इस कथन में तथ्य अवश्य है, पर हस्तक्षेप इतना अधिक नही किया जा रहा है, और न इतना हानिप्रद है, जितना कि समझा गया है। यह विश्वास, कि चूंकि सभी अनुरूप कर राज्यीय सूची में है, इसलिए राज्य सरकार द्वारा अपने लाभ के लिए लगाये जाने वाले समानान्तर-प्रभार से कोई भी स्थानीय कर बच नही पाता। स्वायत्त शासन के सुचारु रूप से चलने के लिए यदि उचित वातावरण तैयार करना है, तो यह धारणा दूर की जानी चाहिए। इसलिए यह आवश्यक तथा वाछनीय है कि कुछ कर केवल स्थानीय निकायो के द्वारा या उनके लिए उपयोग में लाये जाने के लिए ही सुरक्षित किये जाने चाहिए। जब सविधान में कोई सशोधन नही किया जा रहा है, राज्य सरकारो को इसका ध्यान रखना चाहिए कि कुछ करो का विकास केवल स्थानीय निकायो द्वारा या उनके लिए ही हो, और इस समय जहाँ राज्य सरकारे ही उनका उपभोग कर रही हो, वहाँ उन्हें उनका उपयोग करना क्रमश छोड देना चाहिए तथा इस बीच उनसे होनेवाली प्राप्तियाँ सम्बन्धित स्थानीय निकायो को दे देनी चाहिएँ। आयोग का कहना है कि "उसे विश्वास है कि उसने जो भी सिफारिशें की हैं, उनसे विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार होगी, तथा आशा है कि सिफारिशें राज्य सरकारो के लिए सुझाव के रूप में पर्याप्त होगी, और अन्ततोगत्वा सविधान में सशोधन करने की आवश्यकता न पडेगी।"

निम्नलिखित करो को केवल स्थानीय निकायो द्वारा या उनके लिए ही उपयोग में लाये जाने के लिए सुरक्षित रखना चाहिए—

(१) भूमि तथा भवनो पर लगने वाले कर,

(२) उपभोग, उपयोग अथवा बिक्री के लिए स्थानीय प्राधिकारी के क्षेत्र में सामानो के प्रवेश पर लगने वाले कर, जिन्हें साधारणतया चुगी (नगर शुल्क) कहा जाता है,

(३) यन्त्रचालित वाहनो के अतिरिक्त दूसरे वाहनो पर लगने वाले कर;
(४) पशुओ तथा नावो पर लगने वाले कर;
(५) व्यवसाय, कारोवार और नौकरियो पर लगने वाले कर; तथा
(६) समाचार पत्रो में प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनो से अतिरिक्त विज्ञापनो पर लगने वाले कर।

इसके अतिरिक्त स्थानीय निकायो को थिएटर अथवा प्रदर्शन-कर तथा सम्पत्ति के हस्तातरण पर शुल्क लगाने की भी अनुमति दी जानी चाहिए। साथ ही इनको सड़क या किसी भी जलमार्ग से ले जाये जानेवाले यात्रियो तथा सामानो पर कर तथा पथ-कर लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए।

करो में परिवर्तन करने का निर्णय करते समय कर की उपयुक्तता तथा पर्याप्त रूप में एव कुशलता से प्रशासन सम्वन्वी कर लगाने की स्थानीय निकाय की क्षमता को ध्यान में रखना चाहिए। यह निश्चित होना आवश्यक है कि अनुपयुक्त करो का हस्तातरण नही हुआ। परिवर्तन उचित समय पर शीघ्र किया जाना चाहिए तथा यह नमनीय तथा तरह-तरह का होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन सीमाओ पर भी पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए जिन तक विभिन्न अधिकारो में कमी की जा सकती हो। असमन्वित कराधिकार-क्षेत्र की आड़ में सीमा का अतिक्रमण रोका जाना चाहिए। ऐसे राज्यीय कर के उदाहरण के लिए जिसमें नगरपालिकाओ तथा नगर-निगमो का भी भाग हो, हम आध्र, मद्रास, मैसूर तथा कुर्ग के मनोरजन-कर को ले सकते है। स्थानीय प्राधिकारी मोटर गाड़ीकर के सम्वन्ध मे क्षतिपूर्ति प्राप्त करते हैं। कुछ राज्यो में ऐसे प्राधिकारियो का लगान की प्राप्तियो में भी भाग होने लगा है।

वे कर, जिनसे स्थानीय निकाय कुछ लाभ प्राप्त करते हैं, ऐसे होने चाहिएँ जिनके प्रति स्थानीय निकाय उत्तरदायी भी हो। करो में हिस्सा वँटाने की अपेक्षा सहायता-अनुदानो को वरीयता दी जानी चाहिए। मोटरगाडी-कर तथा लगान के सम्वन्व में दो अपवाद होने चाहिएँ। स्थानीय निकायो को राज्य सरकारो की मोटरगाडी-कर से होने वाली प्राप्तियो से पर्याप्त भाग मिलना चाहिए और इन प्राप्तियों में से कम से कम एक चौथाई ऐसे वितरण के लिए सुरक्षित किया जाना चाहिए। पचायतो तथा ग्राम-वोर्डो के क्षेत्र में लगान-वसूली का कम से कम १५ प्रतिशत तत्सम्वन्वी पचायनो तथा ग्राम-वोर्डो को आवण्टित किया जाना चाहिए। आयोग का कहना है कि वह ऐसे विकास के लिए निश्चित वित्त के न्यूनतम आधार तथा ग्रामक्षेत्रो के लिए अधिक मनोवैज्ञानिक महत्त्व के होने की दृष्टि से इस सिफारिश पर विशेष जोर देता है। सभवत. ट्राम तथा वसो जैसी सार्वजनिक सेवावो अथवा विजली के वितरण से होनेवाली आय नगर-राजस्व की एक महत्त्वपूर्ण मद है। स्थानीय निकायो तथा नगरपालिकाओ को उनके राजस्व के करातिरिक्त स्रोत का विस्तार तथा विकास करने के लिए हर सभव प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। वड़ी नगरपालिकाओ तथा वड़े निगमो को जनोपयोगी सेवाओ को अपने हाथ में ले लेने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। वाध्य होकर अन्तिम उपाय के रूप में छोड़कर

रापय सरकारो को ऐसी सेवाएँ तत्सम्बन्धी नगरपालिकाओ मे छीनकर अपने अधिकार में नही लेनी चाहिएँ।

सहायता-अनुदान, जिला बोर्डों को छोडकर, स्थानीय निकायो के राजस्व के महत्त्वपूर्ण भाग नही हैं। निम्नलिखित सिद्धान्तो के आधार पर सहायता-अनुदान की प्रणाली लागू की जानी चाहिए —

(१) बडी नगरपालिकाओ तथा बडे निगमो के अतिरिक्त प्रत्येक स्थानीय निकाय के मूलभूत सामान्य उद्देश्यो के लिए अनुदान दिये जाने चाहिएँ।

(२) ऐसे अनुदान प्राप्त करने योग्य स्थानीय निकायो को जनसख्या, क्षेत्र तथा साधन आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जाना चाहिए तथा अनुदान भी इन्ही के आधार पर आय-व्ययक के आकार की दृष्टि से होने चाहिएँ।

(३) मूलभूत अनुदान ऐसे होने चाहिएँ कि साधनो को ध्यान में रखने के बाद स्थानीय निकायो के पास अनिवार्य तथा कार्यकारी कार्यो के लिए पर्याप्त वित्त रहे।

(४) यह निश्चित वर्षों के लिए होना चाहिए।

(५) विशेष मदो तथा सेवाओ के लिए इसके अतिरिक्त विशेष अनुदान भी होने चाहिएँ।

ग्राम पचायतो के मामले में, विशेष अनुदानो तथा स्थानीय निकाय के प्रयासो के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या, लगाये गये शारीरिक श्रम की दृष्टि से की जानी चाहिए। स्थानीय कर के रूप में श्रम-कर लगाने का विचार बिल्कुल छोड ही दिया जाना चाहिए।

नगरपालिकाओ की अनिवार्य आवश्यकताओ में से एक जलपूर्ति, नालियो की व्यवस्था तथा गन्दी बस्तियो की सफाई आदि के लिए पूंजी कोष सम्बन्धी है। ऋण जारी करने के लिए राज्य सरकारो की सहायता आवश्यक है। नगरपालिका ऋणो को सरकारी गारण्टी देने की प्रणाली लागू किये जाने से काफी सहायता मिलेगी। छोटी नगरपालिकाओ के लिए राज्य सरकारो को ऋण देने होगे। कुछ सहायता श्रेणीकृत राजकीय सहायता के रूप में दी जानी होगी।

नगरपालिकाओ तथा नगर-निगम सम्बन्धी कानूनो में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे सभी करो का लगाया जाना स्थानीय निकायो के लिए सुरक्षित रहे।

जिला बोर्डों तथा अन्य ग्राम बोर्डों के लिए उपयुक्त दो मुख्य कर भूमि-उपकर तथा सम्पत्ति के हस्तातरण पर लगने वाले शुल्क है। उन्हें सरकार द्वारा वसूल किये गये लगान का भी एक भाग मिलना चाहिए। अन्य आवश्यक अतिरिक्त वित्त सामान्यतया सहायता-अनुदानो के रूप में मिलना चाहिए।

ग्राम पचायतो के लिए जिन चार मुख्य करो की सिफारिश की गई है, वे सामान्य सम्पत्ति-कर, सेवा-कर, भूमि-उपकर और सम्पत्ति के हस्तातरण पर लगनेवाले शुल्क हैं। इसके अतिरिक्त वाहन-कर, व्यवसाय-कर तथा थिएटर अथवा प्रदर्शन-कर लगाने के अधिकार प्रत्येक पचायत को अलग-अलग सौंपे जा सकते है।

स्थानीय निकायो का एक सबसे बडा दोष कर-प्रशासन की अकुशलता है। सभी नगरपालिकाओ में मुख्य कार्यपालिका अधिकारी (चीफ एक्जीक्यूटिव अफसर) होने चाहिए जिनको प्रशासन सम्बन्धी उत्तरदायित्व के कार्यपालिका-अधिकार अनुविहित व्यवस्था द्वारा

मिले होने चाहिएँ तथा इन अधिकारियो का चुनाव और इनकी नियुक्तियाँ सरकार अथवा स्वतंत्र अनुविहित बोर्ड द्वारा की जानी चाहिए। सभी उच्चतर कार्यकारी तथा प्राविधिक कर्मचारी राज्यीय सवर्ग में से भरती किये जाने चाहिएँ।

केवल राज कर्मचारी वर्गों के केन्द्रीकरण से ही प्रभावकारी नियन्त्रण का लागू होना निश्चित नही है। ऐसे केन्द्रीकरण के फलस्वरूप कार्यपालिका अधिकारी द्वारा नियन्त्रण में अपर्याप्तता तथा समन्वय का अभाव—ये दो कमियाँ आ सकती है। जब राज्य राज कर्मचारी संवर्गों की स्थापना कर दी जाये, तब भी नगरपालिका सम्बन्धी दायित्व कार्यकारी अधिकारी में निहित होना चाहिए और पूरा कर्मचारी वर्ग उसके नियन्त्रण में होना चाहिए। भरती किये गये कर्मचारी केवल पूर्ण रूप से प्रशिक्षित ही न हो, बल्कि उन्हे पर्याप्त पारिश्रमिक भी मिलना चाहिए। राज्य सरकारो को या तो ऐसे स्थापन-व्यय का कुछ भाग स्वयं वहन करना चाहिए या सामान्य उद्देश्यो के लिए अनुदान निर्धारित करते समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

कर-प्रशासन के दो पहलू है—कर-निर्धारण तथा कर-वसूली। सम्पत्ति-कर के अलावा कर-वसूली तथा कर-निर्धारण के सम्बन्ध में अधिकार कार्यपालिका अधिकारी में निहित होने चाहिए।

सम्पत्ति-कर निर्धारण के लिए एक स्वतन्त्र अभिकरण होना चाहिए। नगर-क्षेत्रो में सम्पत्ति के मूल्य निरूपण के लिए राज्यव्यापी मूल्य निरूपण-विभाग खोला जाना चाहिए। नगर-निगमों तथा ग्राम-पंचायतो को इस कार्य में सम्मिलित नही किया जाना चाहिए—नगर-निगमो को इसलिए कि वे आवश्यक प्रशिक्षित कर्मचारी रख सकते है, और पचायतो को इसलिए कि उनकी संख्या बहुत अधिक है तथा कर-निर्धारण की समस्याओ का विस्तार उतना नही है।

स्थानीय निकायो का सचालन सुचारु रूप से होने के लिए राज्य सरकार को महत्त्वपूर्ण योग देना है। उनका काम केवल नकारात्मक नही है। उन्हे स्थानीय निकायो के सक्रिय प्रोत्साहन तथा विकास में निश्चयात्मक योग देना है। यह ग्राम क्षेत्रो के लिए महत्त्वपूर्ण है क्योकि ग्रामक्षेत्र के स्थानीय निकाय स्वयं संगठन करने तथा साधनो का उपयोग करने के अयोग्य है। सरकारी नियन्त्रण अनावश्यक रूप से इतना अधिक नही होना चाहिए कि स्थानीय निकायो की स्वतन्त्रता अथवा आत्म-निर्भरता नष्ट हो जाये। वह लक्ष्य, जिसके लिए सरकार प्रयत्नशील रहे तथा वह उद्देश्य, जिसकी प्राप्ति के लिए नियन्त्रण रखा जाये, स्वायत्त शासन सम्बन्धी सस्थाओ का विकास प्रशासन के ऐसे यन्त्रो के रूप में करने का होना चाहिए, जो समान रूप से नीतियो को बनाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने योग्य हो।

स्थानीय कर

नगर-पालिकाओ द्वारा भूमि तथा भवनो पर लगाये जाने वाले कर, साधारण कर तथा सेवा-कर होते है। कुछ मामलो में वे समेकित दर के रूप में मिला दिये जाते है। कुछ राज्यो में शिक्षा-कर, पुस्तकालय-उपकर अथवा स्वास्थ्य-उपकर जैसा अतिरिक्त कर सम्पत्ति-कर पर अधिभार के रूप में लगाया जाता है। कुछ राज्यो में नगर-निगमो द्वारा सम्पत्ति-कर

रापय सरकारो को ऐसी सेवाएँ तत्सम्बन्धी नगरपालिकाओ मे छीनकर अपने अधिकार में नही लेनी चाहिएँ।

सहायता-अनुदान, जिला वोर्डों को छोडकर, स्थानीय निकायो के राजस्व के महत्त्वपूर्ण भाग नही हैं। निम्नलिखित सिद्धान्तो के आधार पर सहायता-अनुदान की प्रणाली लागू की जानी चाहिए —

(१) वडी नगरपालिकाओ तथा वडे निगमो के अतिरिक्त प्रत्येक स्थानीय निकाय के मूलभूत सामान्य उद्देश्यो के लिए अनुदान दिये जाने चाहिएँ।

(२) ऐसे अनुदान प्राप्त करने योग्य स्थानीय निकायो को जनसख्या, क्षेत्र तथा साधन आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जाना चाहिए तथा अनुदान भी इन्ही के आधार पर आय-व्ययक के आकार की दृष्टि से होने चाहिएँ।

(३) मूलभूत अनुदान ऐसे होने चाहिएँ कि साधनो को ध्यान में रखने के वाद स्थानीय निकायो के पास अनिवार्य तथा कार्यकारी कार्यों के लिए पर्याप्त वित्त रहे।

(४) यह निश्चित वर्षों के लिए होना चाहिए।

(५) विशेष मदो तथा सेवाओ के लिए इसके अतिरिक्त विशेप अनुदान भी होने चाहिएँ।

ग्राम पचायतो के मामले में, विशेष अनुदानो तथा स्थानीय निकाय के प्रयासो के वीच के सम्वन्ध की व्याख्या, लगाये गये शारीरिक श्रम की दृष्टि से की जानी चाहिए। स्थानीय कर के रूप में श्रम-कर लगाने का विचार विल्कुल छोड ही दिया जाना चाहिए।

नगरपालिकाओ की अनिवार्य आवश्यकताओ में से एक जलपूर्ति, नालियो की व्यवस्था तथा गन्दी बस्तियो की सफाई आदि के लिए पूंजी कोप सम्वन्धी है। ऋण जारी करने के लिए राज्य सरकारो की सहायता आवश्यक है। नगरपालिका ऋणो को सरकारी गारण्टी देने की प्रणाली लागू किये जाने से काफी सहायता मिलेगी। छोटी नगरपालिकाओ के लिए राज्य सरकारो को ऋण देने होगे। कुछ सहायता श्रेणीकृत राजकीय सहायता के रूप में दी जानी होगी।

नगरपालिकाओ तथा नगर-निगम सम्बन्धी कानूनो में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे सभी करो का लगाया जाना स्थानीय निकायो के लिए सुरक्षित रहे।

जिला बोर्डों तथा अन्य ग्राम बोर्डों के लिए उपयुक्त दो मुख्य कर भूमि-उपकर तथा सम्पत्ति के हस्तातरण पर लगने वाले शुल्क हैं। उन्हें सरकार द्वारा वसूल किये गये लगान का भी एक भाग मिलना चाहिए। अन्य आवश्यक अतिरिक्त वित्त सामान्यतया सहायता-अनुदानो के रूप में मिलना चाहिए।

ग्राम पचायतो के लिए जिन चार मुख्य करो की सिफारिश की गई है, वे सामान्य सम्पत्ति-कर, सेवा-कर, भूमि-उपकर और सम्पत्ति के हस्तातरण पर लगनेवाले शुल्क हैं। इसके अतिरिक्त वाहन-कर, व्यवसाय-कर तथा थिएटर अथवा प्रदर्शन-कर लगाने के अधिकार प्रत्येक पचायत को अलग-अलग सौंपे जा सकते हैं।

स्थानीय निकायो का एक सबसे बडा दोष कर-प्रशासन की अकुशलता है। सभी नगरपालिकाओ में मुख्य कार्यपालिका अधिकारी (चीप्फ एक्जीक्यूटिव अफसर) होने चाहिए जिनको प्रशासन सम्बन्धी उत्तरदायित्व के कार्यपालिका-अधिकार अनुविहित व्यवस्था द्वारा

मिले होने चाहिएँ तथा इन अधिकारियो का चुनाव और इनकी नियुक्तियाँ सरकार अथवा स्वतंत्र अनुविहित वोर्ड द्वारा की जानी चाहिए। सभी उच्चतर कार्यकारी तथा प्राविधिक कर्मचारी राज्यीय सवर्ग में से भरती किये जाने चाहिएँ।

केवल राज कर्मचारी वर्गों के केन्द्रीकरण से ही प्रभावकारी नियन्त्रण का लागू होना निश्चित नही हैं। ऐसे केन्द्रीकरण के फलस्वरूप कार्यपालिका अधिकारी द्वारा नियन्त्रण में अपर्याप्तता तथा समन्वय का अभाव—ये दो कमियाँ आ सकती हैं। जब राज्य राज कर्मचारी संवर्गों की स्थापना कर दी जाये, तब भी नगरपालिका सम्बन्धी दायित्व कार्यकारी अधिकारी में निहित होना चाहिए और पूरा कर्मचारी वर्ग उसके नियन्त्रण में होना चाहिए। भरती किये गये कर्मचारी केवल पूर्ण रूप से प्रशिक्षित ही न हो, वल्कि उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक भी मिलना चाहिए। राज्य सरकारो को या तो ऐसे स्थापन-व्यय का कुछ भाग स्वयं वहन करना चाहिए या सामान्य उद्देश्यो के लिए अनुदान निर्धारित करते समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

कर-प्रशासन के दो पहलू हैं—कर-निर्धारण तथा कर-वसूली। सम्पत्ति-कर के अलावा कर-वसूली तथा कर-निर्धारण के सम्बन्ध में अधिकार कार्यपालिका अधिकारी में निहित होने चाहिए।

सम्पत्ति-कर निर्धारण के लिए एक स्वतन्त्र अभिकरण होना चाहिए। नगर-क्षेत्रो में सम्पत्ति के मूल्य निरूपण के लिए राज्यव्यापी मूल्य निरूपण-विभाग खोला जाना चाहिए। नगर-निगमो तथा ग्राम-पचायतो को इस कार्य में सम्मिलित नही किया जाना चाहिए—नगर-निगमो को इसलिए कि वे आवश्यक प्रशिक्षित कर्मचारी रख सकते है, और पंचायतो को इसलिए कि उनकी संख्या वहुत अधिक हैं तथा कर-निर्धारण की समस्याओ का विस्तार उतना नही हैं।

स्थानीय निकायो का संचालन सुचारु रूप से होने के लिए राज्य सरकार को महत्त्वपूर्ण योग देना हैं। उनका काम केवल नकारात्मक नही है। उन्हें स्थानीय निकायो के सक्रिय प्रोत्साहन तथा विकास में निश्चयात्मक योग देना है। यह ग्राम क्षेत्रों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योकि ग्रामक्षेत्र के स्थानीय निकाय स्वय संगठन करने तथा साधनो का उपयोग करने के अयोग्य हैं। सरकारी नियन्त्रण अनावश्यक रूप से इतना अधिक नही होना चाहिए कि स्थानीय निकायो की स्वतन्त्रता अथवा आत्म-निर्भरता नष्ट हो जाये। वह लक्ष्य, जिसके लिए सरकार प्रयत्नशील रहे तथा वह उद्देश्य, जिसकी प्राप्ति के लिए नियन्त्रण रखा जाये, स्वायत्त शासन सम्बन्धी संस्थाओ का विकास प्रशासन के ऐसे यन्त्रों के रूप में करने का होना चाहिए, जो समान रूप से नीतियो को वनाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने योग्य हो।

स्थानीय कर

नगर-पालिकाओं द्वारा भूमि तथा भवनो पर लगाये जाने वाले कर, साधारण कर तथा सेवा-कर होते हैं। कुछ मामलो में वे समेकित दर के रूप में मिला दिये जाते हैं। कुछ राज्यो में शिक्षा-कर, पुस्तकालय-उपकर अथवा स्वास्थ्य-उपकर जैसा अतिरिक्त कर सम्पत्ति-कर पर अधिभार के रूप में लगाया जाता है। कुछ राज्यो में नगर-निगमो द्वारा सम्पत्ति-कर

अनिवार्य रूप से लगाये जाने की व्यवस्था है। वैकल्पिक होते हुए भी नगरपालिकाएँ सम्पत्ति-कर लगाती है तथा जिला वोर्ड अथवा अन्य ग्राम वोर्ड सम्पत्ति-कर नहीं लगाते।

सम्पत्ति-कर सम्पत्ति के वार्षिक अथवा पूंजीगत मूल्य पर आधारित है तथा केवल अचल सम्पत्ति पर ही लगाया जाता है।

युद्धकाल में तथा उसके वाद कई राज्यो ने 'किराया नियन्त्रण अधिनियम कानून' के अन्तर्गत नगरो में भवनो के किरायो पर नियन्त्रण लगाया। कुछ राज्यो में नगरपालिकाएँ केवल नियन्त्रित किरायो के आधार पर ही सम्पत्ति-कर निर्धारित कर सकती है। सुझाया गया है कि किराया नियन्त्रण के वावजूद नगरपालिकाओ को उचित किराये के आधार पर सम्पत्ति-कर निर्धारित कर देना चाहिए। इससे प्रश्न यह उठता है कि समय समय पर किराया किस स्तर पर नियन्त्रित किया जाये। यह स्पष्ट है कि सरकार द्वारा स्तर निर्धारित किये जाने के वाद नगरपालिकाओ को कर-निर्धारणो के पुर्नविचार द्वारा इस प्रश्न पर अलग-अलग निर्णय नही करने दिया जा सकता।

कई राज्यो में वार्षिक मूल्य प्रत्येक तीन या पांच वर्षो के वाद फ़िर से निर्धारित किया जाता है। सम्पत्ति-कर के निर्धारण का दूसरा महत्त्वपूर्ण आधार पूंजीगत मूल्य है। भारत में इसके प्रयोग पर रोक लगी हुई है। तीसरे आधार का सम्वन्व, जो ग्राम-पचायतो के लिए मद्रास में निर्दिप्ट है, मकान की कुर्सी के क्षेत्र तथा वनावट की किस्म से है।

कुछ देशो में स्थानीय करो का आधार सम्पत्तियो का पूंजीगत मूल्य है। कुछ ने कर निर्धारण के आधार के लिए वार्षिक मूल्य के स्थान पर पूंजीगत मूल्य के प्रतिस्थापन का सुझाव रखा है। भाटकीय मूल्य निर्धारित करना पूंजीगत मूल्य मालूम करने से अधिक सरल है। वास्तविक तथा उचित किराये के आधार पर कर लगाना पूंजीगत मूल्य पर आधारित कर की अपेक्षा अधिक न्यायोचित है।

कुछ राज्यो में नगरपालिकाओ तथा निगमो द्वारा लगाये जाने वाले सम्पत्ति-कर के अधिकतम दर दिये हुए हैं। सम्पत्ति-कर विभिन्न भाटकीय मूल्यो के लिए साधारणतया एक ही दर पर लगाया जाता है। 'स्थानीय वित्त जाँच समिति' वृद्धिशील दर के पक्ष में है। इस कर में वृद्धि किया जाना हाल ही के वर्षो की खोज है।

कुछ राज्यो में मूल्यवान भवनो पर कर रियायती दर पर लगाया गया। अदायगी की योग्यता के सिद्धान्त के लागू किये जाने पर तथा स्थानीय सस्थाओ के लिए अधिक राजस्व प्राप्त करने के एक उपाय के रूप में सम्पत्ति-करो को वृद्धिशील करने का सुझाव रखा गया है। इस सुझाव की उपयोगिता व्यावहारिक क्षेत्र में बहुत ही सीमित है। कुछ स्पष्ट कारणो से सम्पत्ति-कर के सम्बन्ध में अदायगी की कुल योग्यता का विचार नही किया जा सकता—यह कार्य आयकर का है। वृद्धि के लिए सिद्धान्त रूप से किये जानेवाले प्रयत्न के फलस्वरूप छूट की सीमा पहले से ऊँची हो गई। ऐसी व्यवस्था कुछ नगरपालिकाएँ आजकल करती हैं। कलकत्ता निगम के मामले में क्रम वृद्धि लागू किये जाने से आय काफी कम हो गई और खण्ड प्रणाली से कर-निर्धारण तथा प्रशासन सम्बन्धी कठिनाइयाँ बढ गई। मोटे तौर पर स्थानीय निकायो द्वारा लगाये जानेवाले सम्पत्ति-कर की एक विशेषता के रूप में क्रम वृद्धि उचित

रूप से लागू नही की जा सकती। बडी नगरपालिकाएँ तथा बडे नगर-निगम इसे सम्पत्ति-कर की दर के ढाँचे के भाग के रूप में लागू कर सकते है।

सम्पत्ति-करो से कुछ छूटे दी जाती है। वाछनीय यह है कि छूट के सिद्धान्त स्थानीय सस्थाओ सम्बन्धी कानूनो में निर्दिष्ट किये जाने चाहिए, कार्यकारी आदेशो द्वारा सचालित नही। समय समय पर उन सम्पत्तियो की सूची की जाँच की जानी चाहिए, जिन पर छूट प्राप्त है, और उसे जनता के लिए सुलभ करना चाहिए।

अधिकाश राज्यो में उन सम्पत्तियो का पूरा-पूरा कर-निर्धारण नही किया जाता जिनमें उनके मालिक रहते हैं। इसके अलावा एक या दो राज्यो में ऐसी सम्पत्तियों के लिए प्रभार की रियायती दरो की व्यवस्था रखी गई है। सम्पत्तियो का उपभोग करने वाले मालिको को सम्पत्ति-कर के सम्बन्ध में वरीयता दिये जाने का कोई कारण नही है।

सम्पत्ति-कर का कुछ भाग सामान्यतया उस समय छोड दिया जाता है जब कि सम्पत्तियाँ खाली हो अथवा उनका उपयोग न हो रहा हो। वर्ष में जब सम्पत्ति कुछ दिन लगातार खाली रहे, तब कुछ भी परिहार नही दिया जाना चाहिए तथा परिहार अधिक से अधिक शेष कर के आधे तक सीमित होना चाहिए।

बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता के पोर्ट ट्रस्टो की सम्पत्तियो पर सम्पत्ति-कर लगता है। विभिन्न निकायो के लिए प्रभार की दरें तथा दायित्व सम्बन्धी व्यवस्थाएँ भिन्न-भिन्न होती है। 'स्थानीय वित्त जाँच समिति' ने एकसार आधार लागू करने की सिफारिश की है। इससे काफी सुधार होगा। पोर्ट ट्रस्ट की सभी सम्पत्तियो पर उनके सकल-अर्जन के प्रतिशत के आधार पर नगर सम्पत्ति-कर लगाया जा सकता है। मूलभूत प्रतिशत ४ हो सकता है किन्तु अन्य सम्पत्तियो सम्बन्धी कर की दर में होनेवाली सामान्य वृद्धि अथवा कमी के प्रत्येक प्रतिशत के लिए १/४ प्रतिशत तक की वृद्धि अथवा कमी की व्यवस्था रखी जानी चाहिए।

नगर क्षेत्र में स्थित सम्पत्ति पर सभी राज्य सरकारें या तो सम्पत्ति-कर देती है या ऐसे कर के बदले में उदारतापूर्वक दिये जानेवाले अशदान। रेलवे सम्पत्तियो के अलावा उनको छोडकर, जिन पर १ अप्रैल १९३७ के तुरन्त पहले कर दिया जाना था, केन्द्रीय सरकार की सम्पत्तियो पर छूट प्राप्त है। उस तारीख के बाद ली गई अथवा बनी सम्पत्तियो के सम्बन्ध में भारत-सरकार अभी हाल तक स्थानीय कर देने से इनकार करती रही। १ अप्रैल, १९५४ से सेवा-व्यय के सम्बन्ध में उन्होने भुगतान करना स्वीकार किया। 'ख' भाग के राज्यो के मामले में २६ जनवरी १९५० से तथा 'ग' भाग के राज्यो के मामले में १८ मार्च १९५४ से करो से छूट प्राप्त है। प्रत्येक हालत में छूट उन सम्पत्तियों पर दी जाती है जिन पर सम्बद्ध तिथि पर ऐसे कर नही लगे थे।

कई देशो के सविधानो में केन्द्रीय सरकार को स्थानीय दरो से छूट देने की व्यवस्था है। किन्तु बहुत से मामलो में दरो के बदले में तत्सम्बन्धी सरकारो को भुगतान किये जाते हैं। भारत सरकार ने हाल ही में कुछ करो के बदले में स्थानीय निकायो को भुगतान करने की व्यवस्था की है। इन आदेशों से कुछ मात्रा में उदारता बरती जाती है।

विशेषकर व्यापारी तथा अर्ध-व्यापारी विभागो की सम्पत्तियो के सम्वन्ध में । सच तो यह है कि केन्द्रीय सरकार को रेल सम्बन्वी सम्पत्तियो तथा व्यापारी, अर्घव्यापारी तथा औद्योगिक उद्देश्यो के उपयोग में आनेवाली अन्य सम्पत्तियो के सम्बन्ध में पूरा अशदान देना चाहिए तथा ससद द्वारा आवश्यक और अनिवार्य कानून पास किया जाना चाहिए। अन्य सम्पत्तियो के सम्बन्ध में हाल ही में स्वीकृत नियम का अर्थ उदारता के साथ लगाया जाना चाहिए।

सेवा-करो से दो समस्याएँ खडी हो गईं। पहली है—क्या सामान्य सम्पत्ति-कर से छूट प्राप्त सम्पत्तियो को सेवा-करो से छूट दी जानी चाहिए। अधिकाश राज्यो में ऐसे कर दिये जाते है, यह अभ्यास सभी राज्यो में एक सा होना चाहिए। दूसरी समस्या है—क्या यह कर इस प्रकार लगाया जाये कि जिसके अन्तर्गत पूर्ण व्यय का समावेश हो जाये। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम वनाने की आवश्यकता नही है, और प्रत्येक नगर पालिका को अपनी दर स्वय निर्धारित करने देना चाहिए।

भूमि तथा भवनो पर लगनेवाला कर सभी राज्यो की नगरपालिकाओ की आय के मुख्य स्रोत के रूप में लगाया जाना चाहिए, और अपरोक्ष चुगी तथा सीमा-करो पर कम निर्भर रहना चाहिए। यह सभी स्थानीय निकायो द्वारा लगाया जाना चाहिए और नगरपालिकाओ सम्बन्धी कानून में यह न्यूनतम दर पर अनिवार्य रूप से लगाया जाने वाला कर होना चाहिए। इसे अनिवार्य कर देने से नगर प्राधिकारियो को कर लगाने में सहायता मिलेगी। एक प्रकार से अधिकतम दर निर्धारित करना वाछनीय है। कुछ राज्यो ने सम्पत्ति-कर तथा कुछ मामलो में राज्य सरकारो द्वारा आवश्यक समझी जानेवाली दर पर कोई भी कर लगाने के लिए नगरपालिका को वाघ्य करने के लिए अनुविहित अधिकार का उपयोग किया। वम्बई सरकार ने सभी नगरपालिकाओ को वार्पिक मूल्य का कम से कम २० प्रतिशत समेकित-कर लगाने की प्रेरणा दी, तथा कर की दर पर्याप्त स्तर पर न लाने वाली नगरपालिकाओ को दिये जाने वाले अनुदान समाप्त या कम कर के अपन आदेश लागू करने के प्रयत्न किये। अन्य सरकारें भी ऐसी ही कार्रवाई कर सकती हैं।

बम्बई तथा पजाब की राज्य-सरकारें शहरी अचल सम्पत्ति-कर लगाती है और प्राप्तियाँ राज्य के राजस्व में जमा करती हैं। इन दोनो राज्य-सरकारो को यह समझना चाहिए कि कर का सम्बन्ध राजस्व के स्थानीय क्षेत्र से है, तथा इन्हें कर की दर उस समय और उतनी मात्रा में कम करनी चाहिए, जब तत्सम्बन्धी नगर सस्थाएँ कर लगाना पहली बार शुरू करें, अथवा अपनी दरें बढायें। राज्य सरकारो द्वारा कर लगाया जाना बन्द करने पर ऐसा पाँच वर्षों में किया जा सकता है।

सम्पत्ति एक से अधिक करो की आधार है, तथा विभिन्न प्राधिकारियो द्वारा लगाये जानेवाले विभिन्न करो के बीच समन्वय की आवश्यकता है। एक सम्पत्ति के मालिको पर लगने वाला आयकर है। आयकर प्राधिकारी साधारणतया नगर प्राधिकारियो द्वारा किया गया मूल्य निरूपण स्वीकार कर लेते हैं किन्तु ऐसा करने के लिए वे बाध्य नही हैं। अन्यत्र दिये गये सुझाव के अनुसार राज्य भर के स्वतत्र अभिकरणो द्वारा नगर सम्पत्तियो के

मूल्य निरूपण किये जाने पर आयकर प्राधिकारियो को उनका मूल्य निरूपण साधारणतया स्वीकार कर लेना चाहिए।

जव तक राज्य सरकार सम्पत्ति-कर लगाना छोड न दे, तव तक राज्य सरकारो तथा नगर प्राधिकारियो के बीच समन्वय किया जाना चाहिए जिससे एक ही सम्पत्ति के कर-निर्धारण में लगे दो भिन्न प्राधिकारियो के फलस्वरूप कर-निर्धारण दो वार न हो जाय। छूट, रियायतो तथा कटौतियो में आवश्यक समायोजन करने की दृष्टि से साधारण सम्पत्ति-कर तथा आयकर के वीच भी समन्वय करना आवश्यक है। इस सम्वन्ध में 'सेन्ट्रल वोर्ड आफ रेवन्यू' को यह देखना चाहिए कि की गई कटौतियाँ वढा न दी जाये।

सदैव नई सम्पत्तियो के सदोष कर-निर्धारण की शिकायत रही है। नगर-प्रशासन के इस क्षेत्र में सुधार नही या वहुत थोडा हुआ है। आजकल नगरपालिका के अधिकारियो या कुछ राज्यो में स्वय पारिषदो द्वारा कर निर्धारण जवरदस्ती थोपे जाते है। कुछ राज्यो में राज्य सरकारें अपने अफसर उधार देती है। आजकल कर-निर्धारणो के सम्वन्ध मे अपील अधिकाश राज्यो में एक निर्वाचित सस्था के सामने की जा सकती और अक्सर सावधानी से किये गये कर-निर्धारणो से होने वाले लाभ अपील की अवस्था में ही लुप्त हो जाते है। कर-निर्धारण के लिए एक स्वतन्त्र अभिकरण होना चाहिए, शिल्पिक कार्यों के लिए अधिकारी विशेष रूप से प्रशिक्षित होने चाहिएँ तथा पुनर्विचार अथवा अपील सुनने के अधिकार नगरपालिका के पारिषदो में निहित नही होने चाहिए।

सुधार-सम्वन्धी कर तथा अंशदान

नगर-कर के सम्वन्ध मे सुधार-सम्वन्वी कर या अशदान नगर-आयोजन अथवा नगर विकास योजनाओ के कार्यान्वित किये जाने से शहरो की भूमि के मूल्यो में होने वाली वृद्धि पर लगने वाला प्रभावकारी प्रभार है। यह कर कुछ नगर-प्राधिकारियो द्वारा लगाया जाता है। कानूनी दृष्टि से यह कर वड़ी योजनाओ तक सीमित होता है और इसका विस्तार पुल के निर्माण अथवा पार्क के निर्माण जैसे छोटे सुधारो के लिए नही होता। व्यवहार में, सुधार सम्वन्धी प्रभार योजनाओ पर हुए व्यय तक सीमित रहता है, यद्यपि कानूनी व्यवस्था का उद्देश्य मूल्यो की सभी वृद्धियो को खपा लेने का है। छोटे सुधारो के लिए सुधार सम्वन्वी प्रभार का विस्तार करना व्यावहारिक कठिनाइयो से घिरा हुआ है। प्रक्रिया पेचीदी हो जायेगी और कुछ राजस्व भी प्राप्त न होगा। छोटी नगरपालिकाओ को भी मुकदमेवाजी तथा प्रक्रिया सम्वन्धी पेचीदगियो का सामना करना पड़ता है। सुधार सम्वन्वी प्रभार को अधिक से अविक योजना-कार्य के व्यय तक सीमित रखने का कोई कारण नही है। कम से कम इतना तो होना ही चाहिए। अविकतम की दृष्टि से योजना मूल्य में हुई वृद्धि का कम से कम ५० प्रतिशत प्राप्त करने का होना चाहिए। सम्वद्ध कानूनो की व्यवस्थाओ में भी सशोधन किये जाने चाहिए जिससे प्रभार कुछ अश तक योजना-कार्य से असवन्वित कारणो से हुई वृद्धि के कारण विवादास्पद न हो जाये।

अचल सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कर

मद्रास तथा आंध्र में इस कर को स्थानीय कर-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह राज्य के स्टाम्प शुल्क के अतिरिक्त लिया जाता है। यह पहले अचल सम्पत्ति के विनिमय पर नही लगता था। इसके कारण कर-अपवचन बढा और १९५० में विनिमयो पर शुल्क लगने लगा। अन्य राज्यो में यह शुल्क सामान्यतया नही लगता। स्थानीय निकायो के लिए और विशेषकर शहरी निकायो के लिए अत्यन्त उपयुक्त कर है। राजस्व भी इससे काफी प्राप्त होता है और सभी नगरपालिकाओ तथा नगर-निगमो को यह शुल्क लगाना चाहिए। अन्य स्थानीय प्राधिकारी संस्थाओ के लिए यह वैकल्पिक होना चाहिए।

भूमि-उपकर

भूमि-उपकर स्थानीय जिला बोर्डों के कर-राजस्व के मुख्य स्रोत है। यह उपकर सामान्यतया लगान के साथ राज्य सरकारो द्वारा लिया तथा स्थानीय बोर्डो को दे दिया जाता है। कभी-कभी ग्राम पचायतो को भूमि-उपकर में से विशेप गांवो से सम्बन्धित भाग मिलता है। कुछ राज्यो में पचायतें अपना अलग उपकर लगाती है।

कुछ राज्यो में प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए अलग उपकर लगाया जाता है या उपकर से होनेवाली आय का एक निश्चित भाग इसके लिए सुरक्षित कर दिया जाता है।

जमीदारी-उन्मूलन, भूमि-उपकर से सम्बन्धित कुछ विशेष बातो के लिए उत्तरदायी है। उत्तर प्रदेश में यह उपकर लगान में ही सम्मिलित कर दिया गया है तथा जिला बोर्डों को इसके बदले में क्षतिपूरक अनुदान दिये जाते हैं।

भूमि-उपकर जहाँ लगान के आधार पर लगाया जाता है, वहाँ यह निश्चित तथा सरलता से मालूम कर लिया जाता है। किन्तु पश्चिम बगाल और बिहार में भूमि-उपकर भूमि के वार्षिक भाटकीय मूल्य के आधार पर लगाया जाता है। भूमि-उपकर के स्थान पर लगान पर अधिक अधिभार केवल स्थानीय निकायो द्वारा ही लगाये जाने चाहिए। ये अधिभार, छोटे संक्रातिकाल को छोडकर, राज्य सरकारो द्वारा न लगाये जाने चाहिए।

भूमि-उपकर के अतिरिक्त कुछ राज्यो में विशेष रूप से सुरक्षित किये गये उपकर हैं। लाभ का सन्तुलन एक समेकित-उपकर पर निर्भर होता है तथा अलग-अलग सुरक्षित उपकरो का लगाया जाना तभी न्यायोचित होता है जब वे की जानेवाली वृद्धि की रुकावट को कम करें।

उपकर की दरें राज्यो में अलग-अलग हैं। रुपये पर ३ आन की न्यूनतम दर की सिफारिश की गई है। जिन राज्यो में उपकर नही लगाया जाता, उन्हें अब शुरू करना चाहिए।

अधिकाश राज्यो की भांति लगान वसूल करन वाले अभिकरणो को भूमि-उपकर भी वसूल करना चाहिए।

अन्य स्थानीय कर

चुगी तथा सीमाकर

सभी नगरपालिकाओ तथा नगर-निगमो के ४२ करोड रुपये के कुल कर-राजस्व में से ११ करोड रुपये सामानो पर लगने वाली चुगी तथा सीमा करो से प्राप्त होते है।

संविवान में चुगी शब्द का प्रयोग नही किया गया है किन्तु यह राज्यीय सूची की प्रविष्टि सख्या ५२ में आ जाता है। जव कि चुगी केवल सामानो पर लगती है, सीमाकर यात्रियो पर भी लगता है। चुगी उपभोग, उपयोग अथवा विक्री के सामानो पर भी लगती है तथा इन उद्देश्यो में न आनेवाले सामानो पर मिलनेवाली छूट तथा वापसी, चुगी प्रणाली की विशेषताएँ हैं। वापसी की प्रणाली में दोष आ सकते है तथा पजाव सरकार ने 'विना वापसी वाली चुगी' प्रणाली की खोज की है और पेप्सू सरकार ने उसी प्रणाली को आवश्यक परिवर्तन करने के वाद स्वीकार कर लिया है।

यह प्रणाली मार्ग में रहने वाले सामानो पर पहले से छूट देने तथा केवल अन्य सामानो पर ही चुगी लगाने पर आधारित है; यह साधारण चुगी से भिन्न सशोधित चुगी है।

चुगी तथा सीमाकरो की खूब आलोचना हुई है। इनके प्रभाव को स्थानीय रूप देकर तथा प्रशासन सम्वन्धी दोषो को दूर करके इन शुल्को को समय समय पर यथा सम्भव सुधारने के असफल प्रयत्न किये गये। कभी-कभी इसे स्थानीय उपभोग की वस्तुओ तक ही सीमित रखा गया। दरो मे सुधार किया गया। एक समय था जव सरकारी सम्पत्ति तथा उन वस्तुओ पर, जिन पर शुल्क लगना चाहिए था, छूट प्राप्त थी। संक्रमित सामानो के रखे जाने के लिए नगरपालिकाओ को गोदामो तथा अन्य सुविधाओ की व्यवस्था करनी पडती थी। स्थानीय कर-व्यवस्था की योजना में से शुल्को के दूर किये जाने के सम्वन्ध में इन उपायो से वहुत थोडी सफलता मिली। केन्द्र का दृष्टिकोण अव मुख्यत सीमा करो का अनावश्यक शोषण रोकने का है। 'स्थानीय वित्त जाँच समिति' ने सीमा करो को राज्यीय सूची मे हस्तान्तरित करने का अनुरोध किया है जिससे चुगी को पूर्णतया हटाकर उसके स्थान पर सीमा करो को प्रतिस्थापित किया जा सके।

स्थानीय स्तर के कर के रूप में चुगी सीमाकर की अपेक्षा स्थानीय कर-व्यवस्था की मद अधिक उपयुक्त ह। सीमा कर सक्रमित सामानो पर भी लगाया जा सकता है। प्रशासन की दृष्टि से यह अधिक सरल है क्योकि इसमें वापसी का प्रश्न नही उठता। करदाता की दृष्टि से भी यह लाभप्रद है क्योकि इसमें भुगतानो (अदायगियो) तथा वापसी का झगड़ा नही उठता। अधिकाश राज्य चुगी के स्थान पर सीमाकर लगाने केपक्षमें ही है। किन्तु सीमाकर केवल रेल द्वारा ले जाये जानवाले सामानो पर ही नही लगाया जा सकता, सडक द्वारा ले जाय जाने वाले समानो पर भी अनुरूप कर लगाये जाने चाहिएँ। सडक द्वारा ले जाये जानेवाले सामानो पर प्रभार लगाने की कुशल प्रणाली उस समय तक लागू नही की जा सकती जव तक सामानो का सड़क द्वारा यातायात सरकारी

अथवा अर्धसरकारी नियन्त्रण में नही आ जाता। आयोग का कहना है कि इसलिए सीमा-कर की उचित प्रणाली के लिए आवश्यक रेल तथा सडक यातायातो का एकीकरण कुछ ही क्षेत्रो में किया जा सकता है। भारत सरकार को उन सभी नगर-क्षेत्रों में मघीय सूची की प्रविष्टि के अन्तर्गत सामानो पर सीमाकर लगाने के पक्ष में विचार करना चाहिए, जिनमें सडक द्वारा ले जाये जाने वाले सामानो पर राज्य द्वारा समानान्तर-प्रभार लगाया तथा लागू किया जा सकता है। सघीय कर की प्राप्तियाँ तत्सम्वन्धी नगरपालिकाओ को दे दी जानी चाहिए।

चुगी का पूर्णरूप से उन्मूलन व्यावहारिक नही है। स्थानीय सस्थाओ की कर-प्रणाली में से चुगी दूर अवश्य की जानी चाहिए किन्तु वहुत जल्दी नही। एक सुविवाजनक क्षेत्रीय इकाई की कई नगरपालिकाओ के लिए इसको सीमाकर में अथवा विक्री कर पर लगनेवाले नगर अधिभार में वदला जाना अन्य सम्भव विकल्प है। पहला विकल्प काफी समय वाद ही कार्यान्वित किया जा सकता है और दूसरा विकल्प भी देर में ही कार्यान्वित किया जा सकता है। इसी वीच चुगी प्रणाली की वुराइयाँ दूर करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

इस सम्वन्ध में पजाब की 'बिना वापसी वाली चुगी' प्रणाली इस समस्या का सामाधान करती है।

चुगी-प्रणाली में निम्नलिखित सुधार किये जाने चाहिऐं—यह भार के आधार पर लगायी जानी चाहिए, मूल्य के अनुसार नही; सभी राज्यो में राज्य सरकारो द्वारा एक अनुसूची निर्दिष्ट की जानी चाहिए, भ्रष्टाचार तथा परेशानी दूर करने के लिए उच्चतर प्राधिकारियो द्वारा वसूली की समय समय पर तथा कुशलता के साथ देखभाल की जानी चाहिए, राज्य सरकारो को खाद्य-वस्तुओ पर लगने वाली चुगी की वर्तमान दरो में वृद्धि करने की अनुमति नही देनी चाहिए, तथा जहाँ सम्भव हो, वहाँ चुगी के स्थान पर सीमाकर के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

एक प्रकार का सीमाकर तीर्थयात्रियो पर भी लगता है। स्थानीय सस्थाओ तथा राज्य सरकारो द्वारा माँग की गई है कि यात्रा-कर का विस्तार तीर्थयात्रा के स्थानो तक किया जाना चाहिए, विशेषकर तीर्थयात्रा के ऐसे सभी केन्द्रो तक जिनसे दर्शनार्थियो को नागरिक सुविधाऐं देने के लिए कहा जाता है। सडक यातायात का उपयोग करनेवाले यात्रियों पर राज्य सरकारो को समानान्तर-कर लगाना पडता है। रेलवे बोर्ड को ऐसे मामलो में राज्य सरकारो की सिफारिशो पर सीमा-कर लगाने के उपयुक्त उपाय करने चाहिए।

लम्बी यात्रा अथवा दूसरे शब्दो में १५० मील तक की यात्रावाले यात्रियो पर कम दर पर सीमाकर लगाया जाना दर्शनार्थियों से नगरपालिकाओ के लिए कुछ अशदान लेने का एक उपयुक्त तरीका है। यह कर एक सगठित योजना के अन्तर्गत राज्यो द्वारा सडक से यात्रा करने वाले यात्रियो पर तथा केन्द्र द्वारा रेल से यात्रा करने वाले तथा

अन्य यात्रियो पर लगाया जायेगा। इस प्रकार का एक समन्वित सीमा-कर ५ लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरो में लगाया जाना चाहिए।

व्यवसाय-कर

१९३९ तक व्यवसाय-करो के सम्बन्ध में कोई सीमा नही थी। उसी वर्ष भारत-सरकार अधिनियम के एक सशोधन में कहा गया कि कोई भी नया प्रभार ५० रुपये से अधिक का नही होना चाहिए तथा वर्तमान प्रभार अधिक से अधिक उतने के होने चाहिए जितने की व्यवस्था केन्द्रीय विधानमडल करे। सविधान के अनुच्छेद २७६ के अन्तर्गत सीमा २५० रुपये तक बढा दी गई है। व्यवसाय-कर राजस्व का महत्त्वपूर्ण स्रोत नही है। कुछ राज्यो में यह सामान्य दर पर लगाया जाता है, जब कि मद्रास, आन्ध्र, पजाब तथा तिरुवाकुर-कोचीन मे वृद्धिशील दर पर।

कुछ राज्यो में स्थानीय सस्थाएँ 'परिस्थितियो तथा सम्पत्ति' पर कर लगाती है। यह सम्पत्ति-कर तथा व्यवसाय-कर का मिश्रण है। आसाम तथा मध्यप्रदेश में व्यवसाय-कर स्वय राज्य सरकारें ही लगाती है।

'स्थानीय वित्त जांच समिति' ने सुझाया है कि व्यवसाय-कर की सीमा १,००० रुपये वार्षिक प्रति व्यक्ति तक बढा दी जानी चाहिए। २५० रुपये तक की सीमा कम है और ५०० रुपये तक की सीमा पर्याप्त होगी। इसके फलस्वरूप सविधान में सशोधन करने की आवश्यकता है।

एक ही व्यवसाय से होनेवाली आयो में काफी अन्तर रहता है। इसलिए प्रत्येक व्यवसाय की प्रत्येक दो या तीन श्रेणियो के लिए सामान्य-दर अनुपयुक्त है। आय के अनुसार दूसरे प्रकार की अधिक श्रेणियाँ वाछनीय है। आय के आधार पर कर लगाया जाना बिलकुल वैध है तथा सभी राज्यो को ऐसा करना चाहिए। व्यवसायो, कारोबारो, नौकरियो, पेंशनो तथा विनियोगो से होनेवाली आय पर कर लगाया जा सकता है। कृषि-आय पर व्यवसाय-कर से छूट मिलती रहनी चाहिए।

बम्बई जैसे नगर निगमो के मामले में निगम की ओर से आय-कर-विभाग द्वारा व्यवसाय-कर लगाया तथा वसूल किया जाना वाछनीय होगा। इस सुझाव की सम्भावना पर विचार किया जाना चाहिए।

वाहन, पशु तथा नाव-कर

अधिकाश राज्यो में वाहन-कर का लगना नागरिक-कर व्यवस्था की एक सामान्य विशेषता है। केवल तिरुवाकुर-कोचिन में ही किसी भी स्थानीय सस्था को भी किसी भी प्रकार के वाहन पर कर नही लगाने दिया जाता। सभी नगरपालिकाओ तथा नगर निगमो को वाहन-कर से वार्षिक राजस्व के रूप में १ करोड ९ लाख रुपये प्राप्त होते है। केवल बम्बई में इससे होने वाली आय गौण है।

मोटरगाड़ी-कर लगाने का अधिकार वापस ले लिये जाने के फलस्वरूप होने वाली राजस्व की हानि की पूर्ति के लिए उडीसा को छोडकर सभी राज्य सरकारें स्थानीय सस्थाओं

को क्षतिपूर्ति देती है। क्षतिपूर्ति की राशि अधिकार की वापसी के पूर्व के तीन वर्षो के औसत राजस्व के आधार पर निर्धारित की जाती है। भूतकाल से यह एक निश्चित राशि के रूप मे चली आ रही है। इस राशि में वृद्धि करने की मांगे निरन्तर की जा रही है। अन्यत्र क्षतिपूर्ति के स्थान पर मोटरगाडी-कर से होनेवाली प्राप्तियो के एक भाग के प्रतिस्थापित किये जाने का सुझाव रखा गया है। केवल नगर-निगमो को ही चक्रि-कर जारी रखने अथवा लागू करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

मोटरगाडी व्यतिरिक्त वाहन-कर स्थानीय सस्थाओ के लिए सुरक्षित रखे जाने चाहिए तथा राज्य सरकारो को कुछ अपवाद कारणो तथा सक्रान्ति काल को छोडकर यह कर स्वय न लगाना चाहिए। यदि वे यह कर लगाती है, तो प्राप्तियां स्थानीय प्राधिकारियो को दे दी जानी चाहिए।

थिएटर-कर

कुछ राज्यो मे मनोरजन-कर के अतिरिक्त थिएटर अथवा प्रदर्शन-कर प्रत्येक तमाशे के लिए सामान्य-दर पर लगाया जाता है। जब कि दरें विशिष्ट तथा सामान्य है, विभिन्न-दरो के निर्धारण तथा थिएटरो अथवा तमाशो के वर्गीकरण द्वारा कुछ श्रेणीकरण हुआ है।

थिएटर-कर का प्रभाव मुख्यत थिएटरो के मालिको पर पडता है। मनोरजन-कर होने के कारण ही यह कर न्याय विरुद्ध नही माना जा सकता। जब तक थिएटर-कर की दरें काफी नीची है, दोनो कर लगाये जाने की गुजाइश काफी है। थिएटर-कर का विस्तार सभी राज्यो में नगरपालिकाओ तथा नगर निगमो तक किया जाना चाहिए।

पथ-कर

पशुओ तथा वाहनो पर लगने वाले पथ-करो का अधिकाश प्रगतिशील देशो में उन्मूलन कर दिया गया है। भारत में भी बहुत से राज्यो ने पथ-कर का उन्मूलन कर दिया है तथा कुछ राज्यो में पथ-कर अभी प्रचलित है। ५ लाख रुपये की लागत से अधिक के पुलो के सम्बन्ध में पथ-करो के लिए कुछ समय तक अनुमति दे दी जानी चाहिए, किन्तु निर्माण-व्यय के चुकता किये जाने के बाद बिलकुल नही।

समाचार-पत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों से अतिरिक्त विज्ञापनों पर लगनेवाला कर

इस प्रकार के कर मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता में लगाये जाते है। सभी बडी नगरपालिकाओ तथा नगर-निगमो को यह कर लगाने का अधिकार दे दिया जाना चाहिए।

भूल-सुधार

पृष्ठ ७५ की पक्ति ११-१२ में "मोटर स्पिरिट" शब्द निकाल दें।

पृष्ठ ८० पर "तम्वाकू के उत्पादन-शुल्क" के दूसरे पैरा के स्थान पर यह पढ़ें—

१९२४-२५ के कर जाँच आयोग ने विचार व्यक्त किया था कि तम्वाकू पर कर लगाने के लिए वहुत ठोस कारण है। सरकारी एकाधिकार का प्रश्न यह कहकर समाप्त कर दिया था कि यह वहुत वडा कारोवार है और एकड के हिसाव से शुल्क लगाने की पद्धति को प्रशासनिक दृष्टि से कठिन वताया था। इसलिए आयोग ने सिगरेटो के लिए नियमित उत्पाद शुल्क प्रणाली और अन्य प्रकार की तम्वाकुओ के लिए लाइसेंस देने की प्रणाली—इन दोनो के संयुक्तरूप का सुझाव दिया था।